# जान - ग्रन्थावली

## भाग - 3

## ( प्रेमाख्यान संग्रह)

210

**कथा कनकावती, कथा कौतूहली, कथा मधुकर मालती**



**2004**

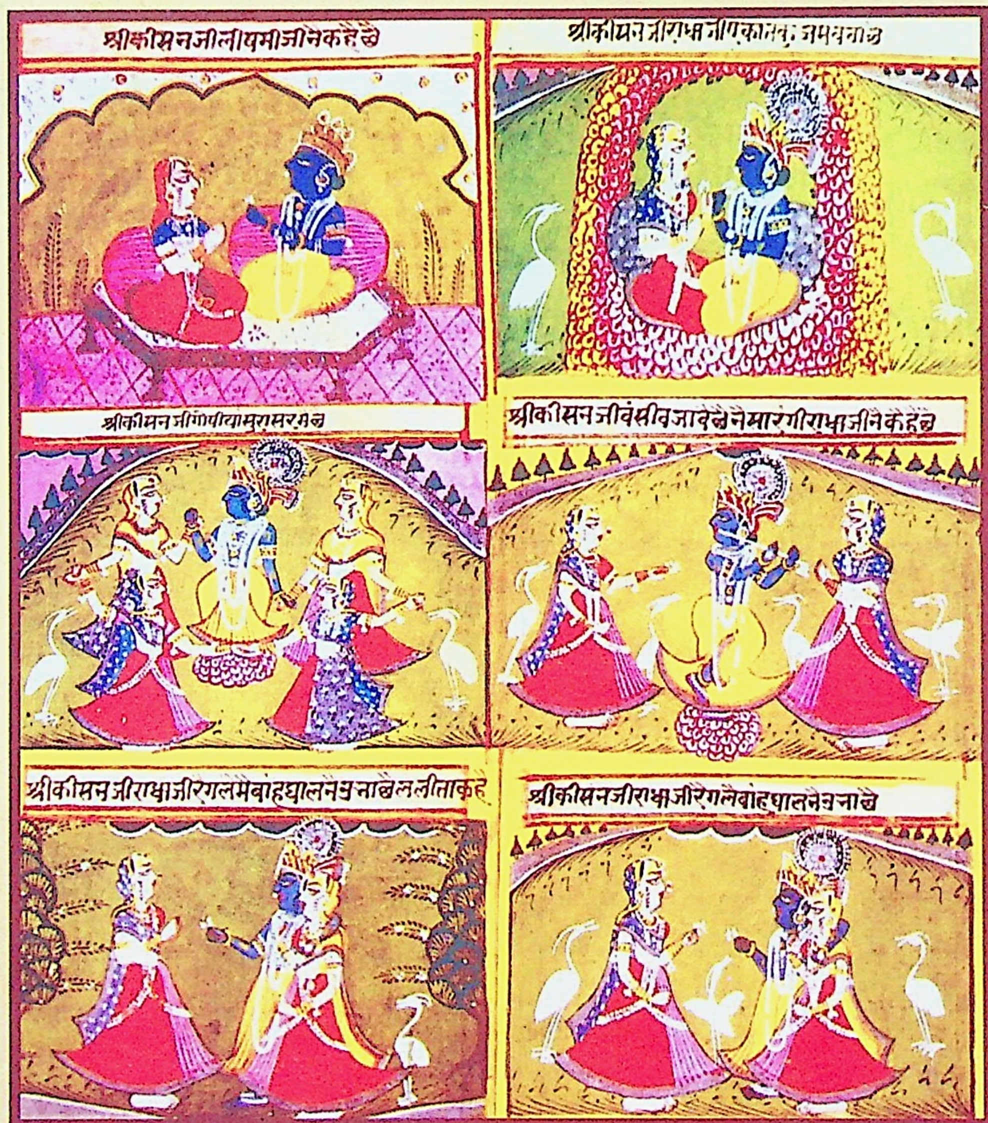
राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर

# जान - ग्रन्थावली

## भाग - 3

## ( प्रेमाख्यान संग्रह)

### कथा कनकावती, कथा कौतूहली, कथा मधुकर मालती



2004

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

जान-ग्रन्थावली

(भाग-3)

# प्रेमाख्यान-संग्रह

(कथा कनकावती, कथा कौतूहली, कथां मधुकर मालती)

*प्रधान सम्पादक :*

**वीना लाहोटी**, आर.ए.एस.

(निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर)

ग्रन्थाङ्क-210

प्रकाशक :

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

**Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur**

**2004**

*मूल्य :* **रु. 205.00**

**सम्पादक मण्डल :**

- ओम प्रकाश शर्मा
- मोहनलाल आचार्य
- ब्रजेश कुमार सिंह
- श्रीमती कलावती माथुर
- कमल किशोर सांखला

**अनुवादक :**

- डॉ. देवकुमार

प्रथमावृत्ति–500

मार्च, 2004


पी.डब्ल्यू.डी. रोड, जोधपुर (राज.)
फोन : 0291–2430244

मूल्य : रु. 205.00

*मुद्रक :* राजस्थान राज्य सहकारी मुद्रणालय लि., जयपुर
फोन : 0141–2751417, 2751352

# अनुक्रम

# प्रधान सम्पादकीय

जान न्यामत खाँ की परिगणना भक्तिकालीन अन्तिम कवियों में की जाती है। वस्तुतः जान का कर्तृत्व विविध-खण्डीय एवम् बहुविषयी है जिसका समेकित मूल्यांकन अद्यावधि भी प्रतीक्षित है।

हिन्दी साहित्य के विकास में जान के अलावा खुसरो, मुल्लादाऊद, कुतुबन, जायसी, मंझन, उस्मान, नवी, हुसेनअली, कासिमशाह, नूरमुहम्मद, निसार, ख्वाजाअहमद, रसखाँन, रहीम, नसीर, निजामी व जहीगबासी, मुकीमी, इब्न निशाती, तबई, इंशाअल्लाखां एवं गुलामअली प्रभृति मुस्लिम कवियों के अवदान की एक लम्बी शृंखला है जिसका असंदिग्ध- रूपेण साहित्यिक महत्व है।

हर्ष का विषय है कि हिन्दी साहित्य के इस बहुआयामी स्रष्टा का कर्तृत्व अब विद्वज्जनों के समक्ष आ सकेगा जिससे नीरक्षीर का पथ प्रशस्त होगा। प्रतिष्ठान पत्रिका के जान ग्रन्थावली विशेषांक 2003 में इस कवि के प्रणय-काव्यों में से कथा रूपमंजरी, कथा कामरानी एवं कथा तमीम अनसारी का अनुवाद प्रकाशित करवाया गया था। इससे पूर्व 1953 में जान विरचित दो ऐतिहासिक रचनाएं ''क्यामखाँ रासा एवं दीवान आलिफखाँ की पेड़ी'' मूल रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि सन् 1953 में प्रकाशित क्यामखांरासो एवम् वर्ष 2003 में प्रकाशित जान ग्रन्थावली प्रतिष्ठान पत्रिका विशेषांक को क्रमशः जानग्रन्थावली भाग-1 व 2 के रूप में मानकर विवेच्य प्रकाशन को भाग-3 के रूप में अधिमान्य किया गया है।

इसी की अनुसृति में ''कथा कनकावती, कथा कौतूहली एवं कथा मधुकर मालती'' का सानुवाद व आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। मुझे आशा है कि मध्यकालीन प्रणयाख्यानों के अनुसन्धित्सु विद्वज्जन, सामान्य साहित्य प्रेमी एवं विशेषरूपेण क्यामखानी मुस्लिम समाज के लोग पद्यबद्ध इन सरस रचनाओं का समानरूपेण रसास्वादन कर सकेंगे।

**बीना लाहोटी**
निदेशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर

दिनांक :

# प्राक्कथन

## मध्यकालीन हिन्दी प्रेमाख्यान एवं जान कवि

भारतीय साहित्य में प्रेमाख्यानों की अनवरत परम्परा वैदिक काल से ही दृष्टिगोचर होती है। यमयमी संवाद, पुरुरवा उर्वशी तथा श्यावाश्य की कथायें भारतीयं प्रेमाख्यानों की आदिकालीन[1] पृष्ठभूमि के रूप में विवेच्य है तो प्राकृत एवं अपभ्रंश में भी भविसय–त कहा, णायकुमार चरिउ, सुदंसण चरिउ, करकंड चरिउ आदि में प्रेम का स्वाभाविक पल्लवन देखा जा सकता है, फिर वो चाहे अपभ्रंश का संदेशरासक हो अथवा संस्कृत भाषागत दुष्यन्त शकुन्तला, नल दमयन्ती अथवा उषा अनिरूद्ध सभी में प्रेमदृष्टि सुविकसितरूपेण द्रष्टव्य है।

आलोच्य प्रेमाख्यानों को भाषागत दृष्टि से डॉ. अशोककुमार मिश्र[2] ने अवधी, ब्रज, राजस्थानी एवं दक्षिणी हिन्दी के नाम से चतुर्विध वर्गीकृत किया है। मैनासत, सत्यवती कथा, मृगावती, पद्मावत, चित्रलेखा, मधुमालती, रूपमंजरी, रूपावती, शशिमाला कथा, ज्ञानदीप एवं माधवानल कामकन्दला को अवधि के प्रेमाख्यानों में परिगणित किया गया है। राजस्थानी के प्रेमाख्यानों में ढोलामारू, कुतुबशतक, माधोचरित्र, माधवानल कथा, माधवानल कामकंदला, वेलिक्रिसन रूक्मणी री, बुद्धिरासो आदि कई रचनायें हैं।

राजस्थानी प्रेमाख्यानों पर डॉ. रामगोपाल गोयल[3] ने एक शोध प्रबन्ध में शताधिक काव्यों का परिचय दिया है। पुरातनग्रन्थमाला[4] में भी कई राजस्थानी प्रेमाख्यान प्रकाशित हैं। दक्षिणी हिन्दी के प्रेमाख्यानों में कुतुब मुश्तरी, सैफुल मुलूक, वदीउल जमाल, मैना सतवन्ती, युसुफ जुलेखा, कदमराव, पदमराव और शाह बहराम आदि कई प्रणय कथायें परिगणनीय हैं। जहाँ तक ब्रजभाषा के प्रेमाख्यानों का प्रश्न है उनमें छिताई चरित, उषाचरित्र, माधवानल कामकंदला, रसविलास, मधुमालती वार्ता, रसरतन, उषाचरित्र, माधवानल कामकंदला, रसविलास, मधुमालती वार्ता, रसरतन, उषाअनिरूद्ध विवाह तथा कवि जान के समस्त प्रेमाख्यान परिगणनीय हैं।

1 भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा–पं. परशुराम चतुर्वेदी

2 प्रेमाख्यान काव्य में भारतीय संस्कृति पृ–20

3 राजस्थान के प्रेमाख्यान, परम्परा एवं प्रगति

4 प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रकाशन सूची द्रष्टव्य है।

जान कवि की समस्त रचनाएं संवत् 1670 से 1721 अर्थात् ई. सन् 1613 से 1644 के मध्य प्रणीत हैं। डॉक्टर श्याम मनोहर पाण्डेय ने 21 प्रेमकथाओं[5] को ही मुख्यता प्रदान की है। डॉक्टर रामकिशोर मौर्य ने 28 रचनाओं को प्रेमाख्यानक माना है। कथा तमीम अंसारी, कथा अरदेसर पातिसाह, बांदीनावा तथा वलूकिया विरही को प्रेमकाव्य नहीं माना गया है।[6] इन प्रेमाख्यानों में सूफी दर्शन का सर्वथा अभाव है। प्रारम्भ में खुदा, रसूल हजरत मुहम्मद, चार दोस्त तथा शाहे वक्त की वंदना, फिरदौसी के शाहनामें व फारसी की मसनवियों में भी उपलब्ध है। इतना[7] अवश्य है कि इस प्रकार का मंगलाचरण सूफी प्रेमाख्यानों की भी विशेषता है किन्तु मात्र इस आधार पर जान कवि की रचनाओं को सूफी प्रेमाख्यानों में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है। किन्तु डॉ. शिवसहाय पाठक[8] प्रभृति विद्वज्जन जान कवि को सूफी के रूप में ही देखते हैं। डॉ. सहाय ने हिन्दी सूफी काव्य के विकास की रूपरेखा में जानकवि को शेख व उस्मान के बाद सूफी कवियों में स्थान दिया है।

इन प्रेमाख्यानों[9] में कथा कनकावति, कामलता, रतनावलि एवं मधुकर मालती को सूफी प्रेमाख्यानान्तर्गत परिगणित किया गया है पर इनमें सूफी दर्शन का नितान्त अभाव है।

इस कवि की विशेषता रचनाओं की पंक्तियों में द्रुतगामिता के रूप में द्रष्टव्य है जहां पंक्ति तत्क्षण बनती रहती है अर्थात् तन्निमित विचारजन्य किसी परिश्रम की अपेक्षा नहीं है। फिर भी उनकी रचनाओं को कोरी तुकबन्दी कहना भूल होगी क्योंकि स्थान स्थान पर सरस पंक्तियों का बाहुल्य काव्य में प्रौढ़त्व को इंगित करता है।

---

5 मध्ययुगीन प्रेमाख्यान पृ-112

6 जान कवि के प्रेमाख्यानों का आलोचनात्मक अध्ययन-1965 ई.

7 वही पृ.-112

8 हिन्दी सूफी काव्य का सामग्री अनुशीलन पृ. 76-77

9 मध्ययुगीन प्रेमाख्यान पृ. 113

# कथा कनकावती

## सारांश :

भरथनेर के निसन्तान नृप दम्पत्ति को नानाविध धर्म–कर्म-प्रयत्नादि से पुत्र रत्न की प्राप्ति होती है जिसका नाम परमरूप रखा जाता है। युवावस्था में एक दिन पररूप स्वप्न संदर्शन में एक अनन्य सुन्दरी का अवलोकन कर विरहावस्था को प्राप्त होकर उसका एक चित्र बनाता है। कुछ समय पश्चात् एक विप्र द्वारा बताये जाने पर कि वह सुन्दरी सिंहपुरी के राजा की आत्मजा है, राजकुमार योगी के वेष में वहां चला जाता है। भरथनेर के राजा प्रथमतः संदेशवाहक के माध्यम से कुंवर परमरूप का विवाह प्रस्ताव सिंहपुरी के शासक के पास भिजवाते हैं और ठुकराये जाने पर ससैन्य आक्रमण भी कर देते हैं। किन्तु उन्हें युद्ध में पराजय मिलती है। राजकुमार परमरूप भी युद्ध भूमि में घायल हो जाते हैं।

एक सन्यासी परमरूप को अपने आश्रम में ले जाकर उसे स्वस्थ कर कालांतर में कच्छप विद्या में पारंगत कर देता है। एक दिन विद्या निष्णात राजकुमार उसी विप्र के साथ पुनः सिंहपुरी अदृश्य रूप में आता है तथा विप्र के प्रयत्नों से उसका विवाह राजकुमारी कनकावती से हो जाता है। तत्पश्चात् दोनों भरथनेर आ जाते हैं। इधर जगपतिराय भरथनेर पर आक्रमण करता है और सारा नगर पानी में बह जाता है। राजकुमार परमरूप एवं कनकावति भी पानी में बहकर क्रमशः जगराय तथा जगपतिराय के यहां अलग–अलग पहुंचते हैं। अन्त में दोनों का मिलन हो जाता है।

**कथा कनकावती–एक विहंगम दृष्टि :–**

आलोच्य कथा के दोहे क्र.सं. 73 में जान कवि ने कथा का रचनाकाल निम्न प्रकार से प्रतिपादित किया है :–

**सोलह सौ पजहतरे, जहांगीर कै राज।**
**तीन द्यौस में जान कहि, यहु साज्यौ सब साज॥**

अर्थात् सम्राट् जहांगीर के शासनकाल में मात्र तीन दिनों में यह रचना निष्पन्न हुई। तत्पश्चात् संवत् 1778 की चैत्र शुक्ला अष्टमी को फतेहचंद ने इसकी प्रतिलिपि की। सम्पूर्ण काव्य 80 चौपाई, 73 दोहे व 8 सोरठों में निबद्ध है।

''सुमिरौं आदि अलख करतार, सिरज्यौ सांच सकल संसार'' आदि से सर्वप्रथम ईश्वर की स्तुति की गई है। तंदनन्तर अन्य रचनाओं की भांति मसनवी शैली का समाश्रय लेते हुये नवीरसूल, अवाबकर, हजरत उसमान एवम् हजरत अली आदि का वन्दन किया गया है। कवि ने अत्यन्त विनम्रता प्रदर्शन करते हुए सुधी जनों से यह अपेक्षा की है कि यदि इसमें कोई

त्रुटि हो तो सुधार कर पठन का यत्न करें क्योंकि उत्तम गुणों की उपेक्षा कर दुराग्रहपूर्वक दोष देखना मयूर की सुन्दरता की प्रशंसा त्याग कर उसके पैरों में दोष देखना मात्र है जो वास्तव में मूर्खतापूर्ण है।

**और भेद गुन छाडि कै, तकहु न भूलै षोर।**
**सकल रूप मूरिष तजै, चरण निहारे मोर।।**

कथा का सम्बन्ध स्पप्नसंदर्शन प्रेम से संबंधित है जहां राजकुमार परमरूप कनकावति को स्वप्न में देखकर उसकी प्राप्ति हेतु लालायित हो उठता है। वास्तव में देखा जावे तो हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानों में नायक–नायिका के मिलन पूर्व इस कथानक रूढि का समाश्रय लेकर भावी प्रेम को और अधिक गहरा बनाने का उपक्रम किया गया है। जानकृत कथा कनकमंजरी में नायक मधुसूदन स्वप्न में रतनमंजरी को देखकर उसके लिये व्याकुल हो उठता है। इसी तरह से रतनमंजरी भी स्वप्न में मधुसूदन को देखती है और उसकी प्राप्ति हेतु व्यग्र हो उठती है। जानकृत 'कथा कामलता' में नायक स्वप्नसंद्दष्ट नायिका का चित्र बनाता है और उसे राजपथ पर टंगवा देता है। जान के काव्यों के अलावा स्वप्नसंदर्शन रूढि का दर्शन जामीकृत युसुफ जुलेखा, ढोला मारू रा दूहा, हंसाअली, रसरतन, हंस जवाहिर, पुहुपावती, नूरजहां तथा प्रेम दर्पण प्रभृति प्रेमाख्यानों में द्रष्टव्य है।

एकादश प्रेमाख्यानों में प्रेमी को प्रिया की प्राप्ति अनेक विघ्नप्रत्यूहों से जूझने के बाद होती है। प्रायः बीहड़ वन, समुद्र यात्रा, युद्ध एवं कई अलौकिक एवं चमत्कारिक घटनाओं का सामना करना एक सामान्य बात है। मधुकर मालती में मधुकर एवं मालती दोनों को ही वर्षों तक एक के बाद एक विघ्न झेलने पड़े। समुद्र यात्रा, विदेशभ्रमण एवं निरन्तर युद्ध दोनों ही पात्रों को करने पड़े हैं। 'कथा कौतूहली' में भी राजकुमार सर्वंगी नायिका कौतूहली को प्राप्त करने हेतु साधुवेष बनाकर देशाटन करता है और कई विघ्नों को पार कर अन्त में नायिका को प्राप्त करता है। विवेच्य कथा 'कनकावती' भी ऐसी ही एक प्रणय कथा है जिसमें प्रेम प्रभाव को ही मूल रूप में दर्शाया गया है। राजकुमार परमरूप जब युद्ध के द्वारा नायिका को प्राप्त नहीं कर सका तो उसने कच्छप विद्या सीखी और फिर योग विद्या के सहारे कनकावती से उसका मिलन हो सका।

काव्य में विरहपूर्ण बारहमासे का भी अभिराम वर्णन किया है जो रीतिकालीन प्रवृत्तियों का स्पष्ट प्रभाव दर्शाता है। जब भरथनेर पर जगतपति राजा का भीषण आक्रमण होता है तब किले का आधा भाग बारूद से उड़ जाता है। फलस्वरूप कनकावती एवं राजकुमार परमरूप दोनों ही वियुक्त हो जाते हैं। कनकावती राजा जगत्पति के आश्रय में पहुंच जाती है और जगरूप उसे पुत्री मान लेता है। राजकुमारी भरथनेर राजकुमार के वियोग में दिन प्रतिदिन दौर्बल्य को प्राप्त हो रही है। राजकुमारी का वियोगपरक वारहमासा के कुछ पद्य द्रष्टव्य हैं।

**सावन**

पिक पापुन पावक पर जारै,
पीव पीव चातिग ध्यौ डारे।
मेरो मरम मोर कहा जानै,
सौर करे हि प्रानहि अकुलाने॥
मेघ मलार अलापहि पंषी।
नितवरषै जलधर मो अंषी॥

**भादवा**

भादौ काठौ रैन अंधारी,
पग लपटे रपटै नर नारी।
बहुरि उठै हूं ना उठि सधि हूं,
परी विरह का दौ पग तकि हूं।

**कार्तिक**

कातिग सीत मिटित नहीं,
पिय विन वौढे सौर।
रैन उजागर जान कहि,
मानहु कीन सषौर॥

यद्यपि बारहमासा वर्णन की प्रवृत्ति संस्कृत साहित्य में दृष्टिगोचर नहीं होती है तथापि अपभ्रंश काव्यों के माध्यम से इसका सम्भवतः हिन्दी साहित्य में प्रवेश माना जाना चाहिये। जायसी, मंझन, उस्मान, नूर मोहम्मद आदि ने बारहमासों के संदर्भ में अभिराम प्रकृति चित्रण किया है। जायसी का बारहमासा हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ बारहमासा माना जाता है। जानकवि ने वियोगिनी के भावों एवम् अनुभावों के साथ ही प्रकृति में तद्रूपता का स्थापन किया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता व्यंजना की सरलता तथा लोकजीवन की सरल शब्दों में सरस अभिव्यक्ति कही जा सकती है।

इस तरह हम देखते हैं कि इस काव्य में संयोग वियोग की काव्यगत परम्परा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। फिर भी एकान्तिक प्रेम की व्यंजना होने से इसे सामान्य प्रेमाख्यानक की ही संज्ञा दी जा सकती है। वस्तुतः इसमें तत्कालीन धार्मिक जीवन के कुछ स्फुट चित्र अवश्य मिलते हैं, चित्रकला के भी कुछ उल्लेख मिलते हैं फिर भी सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से इस कृति का विशेष महत्व परिगणनीय नहीं लगता है।

# कथा कौतूहली

## सारांश :

छविनेर के नृप जगरूप की राजकुमारी कौतूहली एवम् पुरी गांव के राजा चन्द्रसेन के राजकुमार सर्वंगी के मध्य पल्लवित प्रेमकथा ही 'कथा कौतूहली' का प्रतिपाद्य है। इतिवृत्तानुसार एक दिन छविनेर से समागत दो बणजारों के मुख से राजकुमारी कौतूहली के अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन सुनकर राजकुमार उस सुन्दरी को पाने के लिए अत्यधिक लालायित हो उठता है तथा अपने पिता से स्वीकृति लेकर छविनेर नगर में आ जाता है। कालांतर में वहां के माली से गठजोड़ कर उसके दत्तक पुत्र के रूप में उपवन में रहने लग जाता है। माली एवं मालिन उसे कौतूहलदे से मिलाने का वादा करते हैं। एक दिन सर्वंगी के मधुर गायन से प्रधान का पुत्र अभिभूत होकर उपवन में चला आता है। सर्वंगी के गायन से मुग्ध दीवान पुत्र पूरी रात्रि सुनता रहता है और सवेरे जाकर सारा वृत्तान्त अपने पिता को सुनाता है। दीवान के माध्यम से सारा वृत्तान्त राजा को मालूम होता है और एक दिन राजा भी उस उपवन में पधार जाते हैं।

माली पुत्र ने बाल भैरवी, गौडी, मारवा, गुनकरी, खमाज, हिंडोल, विलावल, तोडी, आसावरी आदि विविध रागों के गायन के साथ–साथ अभिराम नृत्य कला का भी प्रदर्शन किया एवम् समस्त साजों से विविध प्रकार की ध्वनियां निकालकर श्रोताओं को अभिभूत कर दिया। इसके पश्चात् सर्वंगी ने वैद्यक, तैरने की कला, मसिलेखन प्रयोग, काव्यसर्जन एवम् ज्योतिष आदि विविध विधाओं के प्रत्यक्ष प्रदर्शन से राजा को पूर्णतया अपनी ओर आकर्षित कर लिया। धीरे–धीरे राजकुमारी को भी सर्वंगी के इस कौशल की जानकारी मिलती है और वो उससे मिलने के लिए व्यग्र हो उठती है। मालिन के प्रयास से राजकुमारी कौतूहलदे एवम् सर्वंगी का गुप्त मिलन राजप्रासाद में हो जाता है। इसी बीच पश्चिम का राजा एक संदेशवाहक के माध्यम से अपने पुत्र हेतु राजकुमारी कौतूहली की याचना करता है किन्तु राजा द्वारा विवाह प्रस्ताव ठुकराये जाने पर पश्चिम प्रदेश का राजा छविनेर पर आक्रमण कर देता है। इसी बीच राजकुमारी को सर्वंगी के विषय में जानकारी मिल जाती है कि वह वास्तव में एक राज पुत्र है और गंजे माली को भेष कृत्रिम है। सेवकों के प्रयासों से सर्वंगी एवम् राजकुमारी का पुनः मिलन होता है। सर्वंगी के प्रयासों से छविनेर को विजय प्राप्त हुई और सर्वंगी ने अपना असली रूप राजा के समक्ष प्रकट किया। तत्पश्चात् दोनों का विवाह सम्पन्न होता है और दम्पत्तिगण पुरी गांव आकर अपने माता–पिता से मिलते हैं।

## समालोचना :

कवि ने संवत् 1675 (1618 ई.) में इस प्रणय काव्य की रचना की है। फतेहचंद ताराचंद ने इसकी प्रतिलिपि वि.सं. 1773 (1716 ई.) में की थी। पुष्पिका के अनुसार इस काव्य में सवईया 18, चौपाई 62, दोहा 85, छन्द 60, कविता 20 एवम् सोरठा 6 हैं जो कुल मिलाकर 228 बनते हैं। इस काव्य में दोहा एवम् चौपाई के अतिरिक्त लगभग 34 अन्य छन्दों का संयोजन है जिनके नामों में कवित छप्पय, रिल, गैणद, त्रोटक, धारी, वीजूमाल, भुजंगप्रयात, सवैया, भमका, भुजंगी, नराई, पवानी, कबला, तारी, पद्धड़िया, त्रिभंगी, चंदाणा, ताणी, विजोहा, रासा, रोउढक, धवल आरिल, मरिल, गांधणी, षंजा, चावर, सीमाण, लीलासिरषा, पद्धरी, चन्दामाला, पाइक, गतिक वधा तथा बाराई आदि परिगणनीय है।

काव्य का प्रारंभ मंगालात्मज मसनवी शैली में किया गया है जहां सर्वप्रथम निर्गुण अविनाशी परमात्मा के पश्चात् नवी मोहम्मद साहब का नमन किया गया है। इसके पश्चात् हजरत अबबकर, हजरत उमर, हजरत उसमान एवम् हजरत अली साहब के अनुकरणीय चरित्र एवम् आदर्श को नमन किया गया है।

काव्य प्रणेता ने सर्वत्र अहंकार एवम् स्वप्रतिष्ठा की स्थापना को साफ नकारते हुए विनम्रतापूर्वक विद्वज्जनों से अनुरोध किया है कि काव्य के दोष चतुर जन दूर कर संशोधन कर लें।

काव्य में सरसता एवम् सौष्ठव सर्वत्र विद्यमान है। विरहतप्ता कौतूहली के विरहप्रदर्शनार्थ विरहपूर्ण वारहमासा का प्रयोग कवि का प्रकृति प्रेम एवं वैदुष्य समान रूप से दर्शाता है। विरहतप्त राजकुमार सर्वंगी को मेघों का कठोर गर्जन रूचिकर नहीं लगता था। मयूरों की आवाज से उसका वियोग द्विगुणित हो गया था। वास्तव में प्रेम पथ में एकनिष्ठ होकर चलने वालों को इस प्रकार की परिवेदना सहनी ही पड़ती है। भुजंगप्रयात में यह छन्द पठनीय है।

**कठिन गाज घन की कुंवर ना सुहावै।**
**सुन केक केका दुगम अति विहावै।**
**ररत नामु कौलिग इही पंथ धावै।**
**विरह नेक की पीर तन कौ पिरावै॥**

राजकुमारी कौतूहलदे के लिए श्रावण मास अत्यन्त कष्टप्रद है। जहां यह अवसर नवयौवनाओं हेतु हिंडोले लेकर आया है वहां कौतूहलदे के लिए जीना ही दूभर हो गया है। गैणक छंद की छवि द्रष्टव्य है।

लग्यौ सांवन झूलि है घर घर हिंडोरा।
मोंहि दूभर जाइना सुख बिन्त पोषण प्रान।
हरे करे अरवुन पियरे जलद विरहु निधांन।
मोर अंबुय कोकिला दे तनहि पानक आनि॥

इसी तरह चंदाणा छंद में राजकुमार सर्वंगी का भी श्रावण मास में वियोग वर्णित है। इसी तरह से साल के बारहमासों में ही वियोगतप्ता कौतूहलदे की स्थिति विविध छन्दों में वर्णित की गई है।

डॉ. रामकिशोर[1] मौर्य के अनुसार यह एक संगीत प्रधान प्रेमाख्यान है। ऐसा लगता है कि कवि षट्रागों एवम् 36 रागनियों के शास्त्रीय रूप से पूर्णतया परिचित हैं। सर्वंगी ने राजा जगरूप के समक्ष भैरव, हिंडोल, विलावल, गौडी, खमाज आदि विविध रागों एवं रागनियों में गायन प्रस्तुत किया एवम् विविध साजों को बजाते हुए नृत्यकला का पूर्ण परिचय दिया। इतना ही नहीं वैद्यक विद्या, तीरन्दाजी, तैरने की विद्या, काव्यत्व, ज्योतिष, विविध प्रकार के खेलों में चौपड़, नरडे, शतरंज एवम् चित्रों का प्रदर्शन कर राजा को पूर्ण आप्यायित कर दिया। उपर्युक्त तथ्य इस कथन की पुष्टि करने के लिए पर्याप्त है कि हमारे जान कवि को संगीत, नृत्य, तीरन्दाजी, आयुर्वेद, ज्योतिष एवम् विविध खेलों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिज्ञान था।

काव्य के सामान्य अध्ययन से विदित होता है कि यह एक साधारण कोटि का प्रेमाख्यान है जिसे सूफी शैली में तो लिखा गया है किन्तु सूफी दर्शन की तात्विक अभिव्यक्ति काव्य में अपरिलक्षित है। प्रारम्भिक ईश्वरोपासनापश्चात् नवी एवम् गुरू नमन आदि सामान्यतः अपेक्षित सभी तत्व इस काव्य में दृष्टिगोचर होते हैं। प्रेमिका के अन्वेषण में छद्मयोगी बनकर कषायवस्त्र धारण करना भी संभवतः इसी पंथ की विशेषता है।

कथा कौतूहली के अलावा पुरन्दर कुमार चौपाई जैसे मध्यकालीन काव्य में राजकुमार पुरन्दर का योगी बनना, रस रतन, मृगावती, लखनसेन पद्मावती कथा, छिताई चरित एवम् माधवानल कामकंदला में नायक द्वारा प्रेमिका के अन्वेषणार्थ योगिक वेशभूषा धारण करने का उल्लेख मिलता है।

इस काव्य में सर्वंगी एवम् राजकुमारी का जो प्रेम एवं विरह का चित्रण है उसे कदापि आध्यात्मिक प्रतीकों से नहीं जोड़ा जा सकता है। इस तरह के अनेक वर्णन संस्कृत के कुमार संभव, रघुवंश के अलावा प्राकृत एवम् अपभ्रंश के बहुत से काव्यों में भी उपलब्ध हैं। इनके मूल में मांसलता एवं ऐन्द्रिय भावनायें ही अधिक मुखरित हुई हैं। संक्षेपतः यह काव्य लोकरंजनार्थ निबद्ध संगीत प्रधान रचना है जिसमें सांस्कृतिक जीवन के एक पक्ष संगीत एवम् नृत्य कला का विशद चित्रण हुआ है।

1. जानकवि के प्रेमाख्यानों में छन्द योजना–विश्वभारती पत्रिका खण्ड–7 अंक–4 जनवरी–मार्च, 1967 ई.

# कथा मधुकर मालती

## सारांश :

अयोध्या वास्तव्य श्री रतन सौदागर के आत्मज मधुकर एवम् उसके साथ पाठशाला में अध्ययनरत मालती की प्रणयकथा ही काव्य का इतिवृत्तात्मक आधार है। दोनों के पारस्परिक प्रेम में तब व्यवधान उत्पन्न हो जाता है जब मालती की नवजात युवावस्था से उसके पिता आशंकित होकर उसे घर पर ही किसी सुयोग्य गुरू से अध्यापन का मानस बना लेते हैं। दोनों की इस वियोगावस्था की अवधि भी सुदीर्घ नहीं होती है, मधुकर नानाविध प्रयत्नों व अपने गुरू के साहचर्य से मालती के घर पर अध्यापन में नियोजित होकर प्रणय केलि को पुनर्जीवन देने में सफल हो जाता है। दोनों के प्रणय में पुनः एक बार संकट उत्पन्न हो जाता है जब छद्मप्रणय केलि का परिज्ञान मालती के माता पिता को हो जाता है और मधुकर पुनः एकाकी हो जाता है। पश्चाद्वर्ती काल में मालती को चेरी आत्मजा जानकर मधुकर के माता पिता उसका विवाह अन्यत्र करने का मानस दृष्टिगत रखकर उसे व्यापार के बहाने परदेश भेज देते हैं। इसके पश्चात् तो एक के बाद एक घटित घटनाक्रमों में मालती एवम् मधुकर पर विपत्ति के पहाड़ गिरना शुरू होते हैं जिनकी एक अनवरत श्रृंखला है।

एक दूसरे देश के बादशाह का वजीर नवयौवनाओं के अन्वेषण में मालती को एक हजार स्वर्ण मुद्राओं के बदले क्रय कर अपने देश चला गया। इसी बीच विदेश में मधुकर के पिता का सहसा निधन हो जाता है और मधुकर अयोध्या आ जाता है और सारी स्थिति का ज्ञान हो जाने पर मालती की तलाश में प्रवास में जाने को तैयार हो जाता है। उस विदाई वेला में मधुकर की माता उसे 10 मूल्यावान् रत्न आवश्यक व्यय हेतु प्रदान करती है। मधुकर शीघ्र ही मावरा बहरीन आ जाता है जहां पर कि मालती को रखा गया है। वजीर के नौकर से उसे ज्ञात होता है कि वजीर नाना विध प्रयत्नों से मालती को आकर्षित करने में असफल रहने के कारण खिन्न है और उसे शीघ्र ही मार डालने का मानस रखता है। मधुकर जंगल में फाँसी पर चढ जाता है किन्तु विधाता को यह नामंजूर होने से पुनः जमीन पर गिर पड़ता है। इसी बीच बादशाह को मालती के अनिन्द्य सौन्दर्य के विषय में जानकारी मिलती है और मालती बादशाह के महल में भेज दी जाती है। बादशाह के प्रश्न के प्रत्युत्तर में मालती उसका प्रणय निवेदन ठुकरा देती है। मधुकर भी अब बादशाह के यहां जाना प्रारम्भ कर देता है। क्रोधित बादशाह एक दिन मालती को जान से मारने की कोशिश करता है किन्तु बादशाह की शाहजादी मालती को बचा लेती है और उसे अपने लिए मांग लेती है और उसे अपने ससुराल तुर्किस्तान ले जाती है। मधुकर भी छिप-छिपकर पीछे हो लेता है। शाहजादी का पति मालती के सौन्दर्य पर आसक्त होकर उससे प्रणय निवेदन करता है किन्तु असफल होने पर मालती को पानी में

बहाने की आज्ञा दे देता है। चार मल्लाह जो मालती को डुबोने के कार्य में नियोजित थे उसे एक आर्मीनियाई नागरिक को 100 स्वर्ण मुद्राओं के बदले विक्रय कर देते हैं। मधुकर भी उसी आर्मीनियाई नागरिक के साथ परिचियोपरान्त हो जाता है। वे जहाज की यात्रा में सिस्तान देश आ जाते हैं और वहां का वजीर मालती को छीनकर बादशाह की सेवा में ले आता है और आर्मिनाई नागरिक को कुछ मूल्य देकर विदा कर देता है। बादशाह जब मालती को अपने प्रति आकर्षित नहीं कर सका तब व्यथित होकर आदेश देता है कि आर्मिनाई नागरिक को पुनः यह बावरी नारि लौटा दो और हमारे पाँचरत्न वापस ले आओ। उक्त आर्मिनाई नागरिक के स्थान पर मधुकर कैद कर लिया जाकर नाना यातनाओं का शिकार होता है। एक दिन मधुकर को मछली खाते समय उसके पेट में से 10 रत्न मिल जाते हैं। उल्लेखनीय है कि ये वो ही रत्न थे जो मधुकर ने खो दिये थे और जो मार्ग व्यय हेतु उसकी माता ने उसे प्रदान किये थे। इसके बाद 5 रत्नों की बदौलत मधुकर मालती को प्राप्त कर नाव से चालीस दिन की लम्बी यात्रा शुरू करता है किन्तु एक दिन नाव जलभंवर में फंस जाती है और दोनों डूबकर अलग-अलग हो जाते हैं। मालती बहते-बहते जमीन पर आ जाती है जहां आखेटरत बादशाह की नजर उस पर पड़ती है और मालती अपनी पूरी व्यथा उन्हें निवेदन करती है। बादशाह के आदेश से मालती को मनुष्यों के क्षेत्र में पुनः भेजने के प्रयास में मालती एक अप्सरा के आवास पर पहुंचा दी जाती है। वहां अप्सरा का पुत्र मालती से प्रणय निवेदन करता है और असफल हो जाने पर जोर जबरदस्ती भी करता है। इसके पश्चात् परी की अनुकम्पा से मालती को मनुष्यों के क्षेत्र में भेज दिया जाता है। इसके आगे पुरुषवेश धारण कर मालती बगदाद देश में आ जाती है। किन्तु बादशाह के सैनिक उसे पकड़ लेते हैं। इसी तरह से मधुकर भी नानाविध कष्टों से जूझता हुआ अन्त में बगदाद शहर में सैनिकों द्वारा पकड़ लिया जाता है। दयालु बादशाह की मेहरबानी से दोनों का मिलन होता है और वे ससम्मान अपने देश को प्रस्थान करते हैं।

**समीक्षा :**

दोहा संख्या 35 के अनुसार जानकवि ने संवत् 1691 अर्थात् सन् 1634 में इस काव्य की सर्जना की थी। बाद में प्रतिलिपिकार श्री फतेहचंद ने संवत्1778 तद्नुसार सन् 1721 में प्रस्तुत काव्य की प्रतिलिपि तैयार की।

सम्पूर्ण काव्य के सम्यकावलोकन से पता चलता है कि काव्य में चौपाई एवं दोहों के बीच बीच में पवंगम छन्दों का भी अभिराम प्रयोग द्रष्टव्य है। कुल 35 दोहे एवम् 22 चौपाईयों में सम्पूर्ण काव्य निबद्ध है।

प्रारम्भ-आदि अगोचर सुमिर हौं, स्रिष्ट करन करतार'' आदि से सर्वप्रथम कवि ने ग्रन्थारम्भ में आदि अगोचर परमेश्वर का स्मरण किया है। इसके पश्चात् कवि ने मसनवी शैली का समाश्रय लेते हुए नबी पैगम्बर मोहम्मद साहब को अल्लाह पाक का प्रतिनिधि द्योतित किया है।

डॉ. अशोक कुमार[1] मिश्र ने ठीक ही कहा है कि किसी युग का काव्य जहां युगीन परिस्थितियों से जीवन रस ग्रहण करता है तो वह पूर्ववर्ती साहित्य परम्परा से भी प्रभावित होता है। नरपति नाल्ह का वीसलदेव रासो 11–13 शती, हंसाउली, चन्दायन, मलयसुन्दरी कथा, पृथ्वीराज वाग्विलास, सदयवत्स चौपई प्रबन्ध, विद्याविलास पाडड, नलदयमन्ती रास एवम् दवदेती कथा (1443 ई.) तक की सुदीर्घ यात्रा में 9 प्रेमाख्यानक मिलते हैं जिन्हें पूर्ववर्ती परम्परा में रखा गया है। आलोच्य काल में 93[2] के करीब प्रेमाख्यान उपलब्ध हैं जिनमें प्रथम उपलब्ध रचना लखमसेन पद्मावती कथा है जिसकी रचना 1459 ई. में दामो कवि ने की थी। इन समस्त काव्यों को अवधी ब्रज, राजस्थानी एवम् दक्षिणी हिन्दी प्रेमाख्यानों के रूप में वर्गीकृत किया है। हमारे आलोच्य कवि जान के प्रेमाख्यान ब्रजभाषान्तर्गत वर्गीकरण में परिगणित हैं। डॉ. रामकिशोर[3] मौर्य ने जान की 28 रचनाओं को प्रेमाख्यानक रूप में मान्यता दी है। आलोच्य मधुकर मालती को प्रेमकाव्य में ही उन्होंने परिगणित किया है। जान के प्रेम काव्यों की जानकारी हेतु प्रतिष्ठान[4] पत्रिका द्रष्टव्य है।

वस्तुतः कथा मधुकर मालती प्रेम की विशुद्ध भित्ति पर परिनिष्ठित एक प्राकृत प्रेमपरक काव्य है। मालती अनेक शक्तिशाली एवम् वैभव सम्पन्न पुरुषों एवम् देवताओं की प्रणय याचना ठुकराकर अपने प्रेम की अनन्य निष्ठा का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करती है। सूफी कवि वास्तव में प्रेम को बड़ा महत्व देते हैं। मृगावती, जायसी ग्रन्थावली (छन्द–11), ज्ञान दीपक (छन्द 11–2) मधुमालती, चित्रावली आदि पर विहंगम दृष्टि डाले तो प्रेम ही सृष्टि का मूल कारण है। संसार में उसी का जन्म एवं जीवन सफल है जिसके हृदय में प्रेम की ज्योति उत्पन्न हुई। इसी को उस्मान कहा गया है।

वास्तव में देखा जावे तो यह एक सतपरक प्रेमाख्यान भी हो सकता है जहाँ बार–बार झंझावत आते हैं और मालती के सतीत्व को विदीर्ण करने के अनवरत प्रयास किये जाते हैं। सर्वप्रथम बहरीन के शक्तिशाली वजीर व बादशाह मालती के सत को डिगाने के प्रयास में असफल हो जाते हैं। आर्मिनाई नागरिक, तुर्किस्तान के बादशाह, अप्सरा का पुत्र आदि कितने ही शक्तिशाली जन भी उसका सतीत्व खण्डित नहीं कर पाते हैं। 'छिताई वार्ता' में छिताई के प्रेम एवं सतीत्व दोनों का अनूठा चित्रण है। 'मेनासत' काव्य में भी मैना का सत्परक चित्रण अत्यन्त विलक्षण है।

1 प्रेमाख्यानक काव्य में भारतीय संस्कृति–पृ.17

2 वही पृ.–17

3 जान कवि के प्रेमाख्यानकों का आलोचनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् 1965 ई.)

4 प्रतिष्ठान पत्रिका : जानकवि विशेषांक : वर्ष, 2003

हिन्दी प्रेमाख्यानों[5] में प्रेम का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। सूफी प्रेमाख्यानों में मृगावती में राजकुमार, पद्मावती में रतनसेन, मधुकर मालती में मनोहर तथा चित्रावली में सुजान को अपार कष्ट झेलने पड़े थे। आलोच्य मधुकर मालती में नायिका के साथ–साथ नायक मधुकर को भी अपार कष्ट झेलने के बाद ही मालती प्राप्त हो सकी थी।

आलोच्य काव्य विषयवस्तु की दृष्टि से एक सामान्य कोटि का काव्य नजर आता है क्योंकि इसमें घटना बाहुल्य एवम् चमत्कारिता ने कथानक को विशृंखलित कर दिया है। उदाहरणार्थ सर्वप्रथम मालती को बहरीन, तत्पश्चात् तुर्किस्तान, आर्मिनाई सैनिक, सिस्तान देश, निर्जन प्रदेश, अप्सरा के पास एवम् बगदाद आदि विभिन्न लौकिक एवं अलौकिक स्थानों पर प्रेषित कर कथानक के तारतम्य को बिगाड़ दिया गया है।

तत्कालीन समाज में परिव्याप्त दास प्रथा के जगह जगह निदर्शन है तो सामाजिक जीवन की रूढ़ियों एवं ऊँच नीच के भेद को भी दर्शाया गया है। मालती चेरी की बेटी होने से ही मधुकर की पत्नी बनने योग्य नहीं मानी गई। जहां रूप सौन्दर्य के प्रति मूल में काम पिपासा की अनवरत शृंखला दिखलाकर मानव में व्याप्त पाशविकता दिखाई गई है वहीं बगदाद के बादशाह में शील एवं चरित्र का सुन्दर समन्वय दर्शाकर कवि ने यह मत प्रतिपादित किया है कि अच्छाई के बीच कभी भी समाप्त नहीं होते हैं। यह सत्य है कि घटना बाहुल्य एवम् चमत्कारिकता के सृजन से कथानक ऊहापोह हो गया है किन्तु छन्द, दोहा एवं चौपाईयों के सृजन एवम् अलंकारादि के प्रयोग से काव्य में निश्चित रूप से रस निष्पत्ति के सृजन से इन्कार नहीं किया जा सकता। मधुकर मालती[6] का प्रेम वर्षाकाल में वर्द्धमान नदी नालों के समान दर्शाया[7] गया है। और भी इसके निरूपण में कहा गया है कि द्वितीया तिथि से आरम्भ होकर नित्य बढ़ने वाली चन्द्रमा की कला के समान, रात दिन वर्षाकाल में बढ़ती सरिता के समान उनका प्रेम बढ़ रहा था। जान की दृष्टि में निरन्तर जो बढ़े वही प्रीति है जो घटती जावे उसे प्रीति नहीं कहते हैं।

संक्षेपतः कहा जावे तो विवाह से पूर्व प्राकृतिक प्रेम का जो बीजारोपण मधुकर एवं मालती के मध्य हुआ उसका ही निरन्तर पोषण काव्य में है–अनुप्रास, उपमा रूपक, निदर्शना एवं अर्थान्तर न्यास अलंकारों के अभिराम संयोजन से जहां काव्य काव्यत्व को प्राप्त हुआ है वहीं छन्द, दोहे एवं चौपाईयों के सृजन से प्रणेता का काव्यशास्त्रीय ज्ञान भी मुखरित हुआ है।

**ओ३म् प्रकाश शर्मा**

कार्यालयाध्यक्ष

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

5 मध्ययुगीन प्रेमाख्यान : डॉ. श्याम मनोहर पाण्डेय

6 मधुकर मालती दोहा सं. 8

7 मधुकर मालती, पवंगम छन्द सं. 3

# कथा कनकावती

**चौपई–1 :**

**सुमिरौं आदि अलख करतार। सिरज्यौ सांच सकल सैंसार।**
**मानस रचन भयौ जब चाव। तब बिरंचि यहु कर्‌यौ पसाव।।**

**अर्थ**–सर्वप्रथम मैं जान कवि जगत् का निर्माण करने वाले अदृश्य सर्वशक्तिमान् का स्मरण करता हूँ जिसने कि सम्पूर्ण संसार की रचना की है। परम ब्रह्म के मन में जब अपना रचना कौशल प्रकट करने की उमंग हुई तब उन्होंने यह दृश्यमान् जगत् बनाया।

**सुर अछिरतौं आदि पठाये। उन्हनि आइये भेद उठाये।**
**काटि सघन बन नग्र बसाये। खोदे कूप सदन सौंराये।।**

**अर्थ**–सुर और अप्सरायें तो आदि समय में ही संसार में भेजी गई। पश्चात् उन्होंने ही विभिन्न प्रकार के सघन वन और नगरों का निर्माण करते हुये कूप एवं सदन आदि बनाये।

**ज्यौं साहिब को आवन जानौं। आइ फरास बिछौना बानौं।**

**अर्थ**–जब विधाता ने संसार में कुछ कमी देखी तब उसने आकाश सदृश बितान वाला बिछावन तान दिया।

**दोहा–1 :**

**तबहिं राज मानस दयौं, सुर अछिरा गये लाज।**
**आज दई कि दया तें, जग मै रहे बिराज।।**

**अर्थ**–तब एक दिन मनुष्य को राज व्यवस्था सौंप दी। मनुष्य की सुन्दर राज–व्यवस्थाओं से देवता और अप्सरायें लज्जा प्राप्त कर पृथ्वीलोक से पलायन कर गये। विधाता की कृपा से मनुष्य आज तक भव्य रूप से युक्त होकर पृथ्वी पर सुशोभित हो रहे हैं।

**चौपई–2 :**

**देव–देवता सभै हंकारे। पेमु नाव सुनि डरपे सारे।**
**मानस लीनौ अति अनुराव। ताते सहत बिरह के ताव।।**

**अर्थ**–देव–देवता सभी पृथ्वी से दूर हो गये। वे जीव–जीव को ईश्वरीय प्रेम मिलना चाहिए, इस नियम से डर गये। देवता तो स्वयं ही भोग चाहते हैं। मनुष्यों में, जब स्वयं ही समस्त भोगों को

भोगने में आसक्ति होने लगी तब विधाता उनसे अप्रसन्न होकर दूर हो गया। इसी कारण से प्रायः मनुष्य को विरह के भाव सहने पड़ते हैं।

**पैम पीर पीर्‌यौ सैंसार। पेम उदधि (यहु) अपरमपार।**

**जिहिं घ.टि पेम सु कहा न बोलै। पैम भुलानौं घर–घर डौलै।।**

**अर्थ**–यह संसार जगत्–निर्माण कर्त्ता की रची हुई प्रत्येक रचना से प्रेम करने के लिये रचा गया है। मानव को अति संवेदनशील रह कर सभी की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता निहित समझनी चाहिए। इस प्रकार ईश्वर की सम्पूर्ण रची हुई रचनाओं से प्रेम करने में ही ईश्वर के प्रति प्रेम की सच्ची अनुभूति रखने के भाव वाला प्रेम का समुद्र गहरा और विस्तीर्ण है जिसमें इस प्रकार का प्रेम होता है वह ऐसा क्या नहीं कहता जिसे संसार का प्रत्येक जीव न समझ सकता हो और उसे पसन्द न करता हो। प्रेम में अपना आपा (घमण्ड) भुलाकर तो मनुष्य ऐसा हो जाता है कि वह संसार भर के जीव मात्र के सुख–दुख में संवेदना के साथ सेवाभाव से ज़ुट जाता है।

**राजा कौं भिछिक करि डारै। भिछिक राजा करि निसतारै।**

**अर्थ**–ऐसा 'प्रेम' जिसे भा गया हो वह राजा होते हुए भी भिक्षुक बनकर तथा भिक्षुक राजा बनकर अपनी स्वयं की आवश्यकता की पूर्ति हेतु माँग–जाँच करने को प्रस्तुत रहेगा। ['प्रेम' का राही मंसूर भी एक भिक्षुक था किन्तु जब उसने प्रजा को भूख से मरते हुए देखा तब राजा के समान साहसपूर्ण अभियान का नेतृत्व करके मात्र एक बाँस के डण्डे से अत्याचारी बादशाह के अनाज के गोदामों के ताले खुलवा दिये। उसने जो इलहाम जगाया वह प्रेम पंथ की सच्ची आवाज थी। उसकी उस आवाज से बादशाह के सैनिक भी उसके वशीभूत हो गये और अन्यायी बादशाह की एक न चली।]

**दोहा–2 :**

**भीतर राखै चीकनौं, बाहरि रूखै अंग।**

**भीख मगावे राज दै, अैसें पैम तंरग।।**

**अर्थ**–प्रेम–पंथ के अनुयायियों (शैव, भागवत एवम् सूफी धर्म) में शिष्ट मानवीय संवेदना से प्रेरित कर्तव्य–पालना वाली उमंग ऐसी रहती है जो अपनी वस्तुओं और अपने तन के प्रति भी शाश्वत नियमों की पालना करते समय मायामोह से अनासक्त होकर रूखा और निर्मम व्यवहार करने लगता है। किन्तु ऐसे प्रेम–पंथ का सचा अनुयायी अपना राजपाट तक व्यय करके शिष्ट

मानवीय जीवन के प्रेम पंथ का अनुसरण करने में भिक्षुक बनना भी पसन्द कर लेता है। वह आत्मानुशासन की पालना करता है।

**चौपई–3 :**

**दूसर सुमिरूं नबी रसूल। है बिरंचि रचना कौ मूल।**
**करनी वोरति हारे रोवत। यहु अधार तकिलै जल धोवत।।**

**अर्थ**–अब मैं जान कवि विधाता का स्मरण करने के पश्चात् हजरत मोहम्मद साहब का स्मरण करता हूँ जिनमें विधाता (अल्लाह–पाक) ने मूलभूत नियमों को प्रकाशित किया था। मनुष्य अपने कृकृत्यों से दुःख को प्राप्त करता है और रोता है। हजरत मोहम्मद साहब ने शिष्ट एवं स्थायी सुख का आधार अच्छा आचरण बताया है। अच्छे आचरण से मनुष्य अपने बुरे कर्मों के प्रभाव को धोकर दूर कर सकता है।

**मोहि अधार मुहंमद नांव। ताकैं पल–पल बलि बलि जांव।**
**चारि मीत करि पीति बनाई। सुरंग ठांव तिन्हं की विधि गाई।।**

**अर्थ**–मेरे इस काव्य का आधार हजरत मोहम्मद के पतित–पावन नाम के स्मरण वाला प्रेरणादायी स्रोत (सोता या चश्मा) है। मैं सम्पूर्ण हृदय से उनके पावन चरित्र और उपदेशों की पालना के लिये समर्पित हूँ। चार अत्यन्त सहायक मित्र खलीफा हुये हैं जिन्होंने पाखण्ड रहित शुद्ध प्रीति का मार्ग उपदेशित किया है। सर्वश्रेष्ठ परमपद तक पहुँचाने वाले निःश्रेयस्करी आचरण ग्रहण करने हेतु सरल एवं सहज उपदेश इन चारों खलीफाओं ने मानव जाति के कल्याण के लिये प्रदान किये हैं।

**अबाबकर उमर उसमान। अली बली दुर्जन की हान।**

**अर्थ**–हजरत अबाबकार, (अबूबक्र) हजरत उमर, हजरत उसमान और हजरत अली ये ऐसे प्रभावशाली चार खलीफा हुए हैं जिन्होंने दुष्टजनों का प्रबल विरोध करके उन्हें निष्प्रभावी किया तथा सम्पूर्ण मानवों के लिये शिष्ट मानवीय जीवन जीने का मार्ग सुगम किया।

**दोहा–3 :**

**वाही कौ जीवन सुफल, साचौ वहै सुचेत।**
**धन धन सेवक 'जान' कहिं, जासौ साहिब हेत।।**

**अर्थ**–जान कवि कहते हैं कि सच्चे अर्थों में उसी मनुष्य का जीवन सार्थ माना जा सकता है जो कि मिथ्या ज्ञान के वश में न होकर शिष्ट मानवीय जीवन की चेतना (संज्ञापूर्वक) धारण करके विधाता की प्रसन्नता के लिये तन–मन और धन का व्ययन समर्पण भाव से करता हो।

**चौपई–4 :**

**कहित जान कबि चित मैं आनी। ढूंढि बांधि हूं सुलप कहानी।**
**लिखत हाथ नाहिन अकुलावै। पढ़त नहीं रसना अरसावै।।**

**अर्थ**–कथा कनकावति की इस काव्यमयी रचना के आरम्भ में कवि जान यह कह रहे हैं कि जैसे यह कथा चित्त में सहज में आ रही है उसे मानव समाज को उपदेशित करने के लिये यथा–योग्य संशोधन के साथ स्वल्प कलेवर का प्रयोग करके ग्रथित की है। इसके लिखने में हाथ कष्ट नहीं मानता है। इसको बोलकर या गाकर पढ़ने में जीभ आलस्य नहीं करती है।

**ढूंढि लही यहु कथा पुरांनी। ज्यौं जानी तिहिं भांति बखांनी।**
**भाषा आनी जो मुंख आई। ग्वारे री हूं मनसा धाई।।**

**अर्थ**–इस प्रस्तुत कथानक में भारतीय मानव समाज में पुराने समय से ही चली आ रही कथा को आधार बनाया है और अपने हृदय के अनुभूत सिद्ध भावों के साथ संशोधित करके यह रचना बनाई है। मुख में जो सहज भाषा आ गई है उसे ही प्रयुक्त कर दिया है। यह एक ग्वाले की भी समझ में आने योग्य काव्य है। अतः यह लोक–काव्य की रचना है।

**कीनौ बुधि परवान विचार। जहां खोरि सो लेहु सुधार।**

**अर्थ**–इसमें बुद्धि विवेक से कल्याणकारी प्रभावशीलता भर दी है। सुधीजन अपनी बुद्धि के अनुसार इस रचना में यदि कोई त्रुटि पावें तो सुधार करके पढ़ने का कष्ट कर लें।

**दोहा–4 :**

**और भेद गुन छाड़ि कैं, तकहु न भूलैं षोर।**
**सकल रूप मूरिख तजै, चरण निहारै मोर।।**

**अर्थ**–कृपया उत्तम गुणों की उपेक्षा करके दुराग्रहपूर्वक दोष इसमें नहीं देखें। मयूर की सुन्दरता की प्रशंसा त्याग कर केवल उसके पैरों के दोष की चर्चा करना तो मूर्खता का ही कार्य कहा जायेगा।

चौपई–5 :

सुन्यौ सबद धरि राजा येक। सेवहिं ताकौं राइ अनेक।

राजा भरथ नांव तिहिं जानहु। बहु राजनि कौ राजा मानहु।।

**अर्थ**–मेरे शब्दों को अब आप हृदय में धारण कीजिये। मैं एक राजा के विषय में कह रहा हूँ। उस राजा का नाम भरथ था। वह अनेक राजाओं का स्वामी राजा था।

ताकैं राजनीति की नीत। धरमातमा न करै अनीत।

महला बहुत महल मैं छाजत। तरनी पटरानी पद राजत।।

**अर्थ**–वह राजा राजनीति शास्त्र के नियमों के अनुसार प्रजा–पालन करता था। वह राग–द्वेष से वियुक्त तथा निर्मल आत्मा के अनुशासन में रहकर कार्य करता था। वह अनीतिपूर्वक व्यवहार नहीं करता था। उसके महल दुनियाँ के सुन्दर महलों में श्रेष्ठ शोभा वाले समझे जाते थे। एक तरूणी (अवस्थावाली) रानी पटरानी के पद पर शोभा प्राप्त कर रही थी।

भरथनैर नगरी को नांव। मन इंच्छा सोई सभ ठांव।

**अर्थ**–उसकी नगरी का नाम भरथनेर था। उस नगरी की बसावट में मनवाच्छित उद्यान, हाट, सरोवर आदि समस्त शोभा सम्पन्न सुविधायें परिव्याप्त थीं।

दोहा–5 :

नीके नीके धौर हर, गढ संपूरन गाढ।

भारौ गारौ राइ मन, भूदर हूं तें बाढ।।

**अर्थ**–सुन्दर–सुन्दर धवलगृहों से सम्पन्न उस नगरी के गढ़ में विशेष मजबूती थी। राजा का हृदय पर्वत के सदृश–विशाल था।

चौपई–6 :

बड़डे बड़डे हाथी भारे। दल मोरन गढ फोरन हारे।

तरूने ताते तुरी अपार। धावत देखै लजै बयार।।

**अर्थ**–उस राजा भरथ के पास विशाल आकार वाले हाथी भारी संख्या में थे। उसके ये हाथी शत्रु सेना के असंख्य दलों को युद्ध में पराजित कर उन्हें पीछे मुड़ने को विवश कर देते थे। उसके ये अतुलित शक्ति सम्पन्न हाथी शत्रुओं के बड़े से बड़े किलों को ध्वस्त कर दिया करते

थे। उसके पास तरूण अवस्था वाले अति वेगशाली घोड़े थे जिनकी तीव्र चाल को देखकर वायु भी पराजित होकर लज्जा की अनुभूति करती थी।

**अनगन दल रजपूतनि सोहै। कोह चढ़े लंका गढ कोहै।**
**ग्यांनी गुनी सयाने पंडित। संपूरन बिद्या नहिं खंडित।।**

**अर्थ**–उसकी सेना में अनेक अधीनस्थ राजाओं के दल अपने–अपने रंग–रूप में सुशोभित होते थे। यदि उसका सैन्यदल एक बार लंका जैसे मजबूत किले पर भी आक्रमण कर दे तो उसे भी ध्वस्त करने की सहज क्षमता से युक्त थे। उस भरथनेर नगरी में सम्पूर्ण विधाओं में पारंगत अनेक ऐसे ज्ञानी, गुणी और अनुभवी पंडित (विद्वान्) थे जिनकी विद्या (खंडित) असफल नहीं होती थी।

**अनगन बाग सरोवर सोहै। बोलि बोलि पंछी मन मोहै।**

**अर्थ**–उस नगरी में अगणित बाग और सरोवर थे जो कि विभिन्न पक्षियों की भाँति–भाँति की मनोरम मधुर कल ध्वनियों से सम्पन्न थे।

**दोहा–6 :**

**चहू वोर सरिता बहै, बीचि भरथ को गांव।**
**बनि ठनि रह्यो बनावर्‌यौ, आंनद दैनी ठांव।।**

**अर्थ**–चारों ओर से एक सरिता बह रही थी, उसके बीच में वह भरथनेर बसा हुआ था। यह नगर समस्त सुख–सुविधाओं से सम्पन्न था। यह एक रमणीक नगर था।

**चौपई–7 :**

**विधिना दीनी छ्छि अपार। पैं सुत बिन दुचितें नरनार।**
**पुन्यिदान करि है दिन राति। पूत चाव बिथुर्‌यौं मन गाति।।**

**अर्थ**–विधाता ने राजा भरथ को अपार सम्पदा प्रदान कर दी थी किन्तु उसके कोई पुत्र न होने से वे स्त्री–पुरुष दुःखपूर्ण चिन्ताओं से ग्रस्त रहा करते थे। वह राजा रात और दिन पुण्य–दान के कार्यों को किया करता था। उसके मन और तन में पुत्र को प्राप्त करने के प्रति अतीव उमंग व्याप्त रहती थी।

**मागत मागतं बिधना टूठ्यौ। होइ दयाल दयाधन बूढ्यौ।**
**पूत लह्यौ ससिते उजियारौ। चिंता को तम भाज्यौ सारौ।।**

अर्थ–राजा के निरन्तर पुत्र को मांगते रहने पर अन्ततः दयालु विधाता ने उसके सेवा भाव से संतुष्ट होकर, उसे अपनी दया से आप्लावित कर दिया। राजा ने प्रभु की कृपा से चन्द्रमा से अधिक उज्जवल पुत्र प्राप्त किया। अब उसके चित्त से, चिन्ताओं का अंधेरा दूर हट गया।

**पंडित बहुत सयाने टेरे। अति हुलास सौ आये नेरे।**

**अर्थ**–पुत्र का भविष्य–फल जानने के लिये राजा ने अनेक अनुभवी पंडितों को बुलवाया। वे ऐसे पण्डित बड़े उत्साह के साथ राजा के यहां आ गये।

**दोहा–7 :**

**हरषाये पंडित निरषि, कुल कौ मंडन होइ।**
**सिध निध गुन ग्यांन सौं, अैसौ और न कोइ।।**

**अर्थ**–पण्डितों ने जन्म–लग्न आदि देखकर भविष्य–फल बताया कि यह पुत्र कुल की शोभा बढ़ाने वाला होगा। आठों प्रकार की सिद्धियों और नौ प्रकार की निधियों को प्राप्त करने में सफल रहेगा। गुण और ज्ञान की सम्पन्नता के कारण संसार भर का अन्य कोई मानव इसकी समता प्राप्त नहीं कर सकेगा।

**चौपई–8 :**

**परम रूप धर्‌यौ नाव विचार। परम रूप दीनौ करतार।**
**परम उमंग भयौ सब नगरी। परम पुन्य ह्वै पौरी सगरी।।**

**अर्थ**–भली–भांति विचार करके राजकुमार का नाम परमरूप रखा गया। विधाता ने उसे परम–पूर्ण–सुन्दर रूप प्रदान किया था। सम्पूर्ण नगरी में अत्यन्त उमंग भर गई। राजभवन परम सौभाग्य सम्पन्न हो गया।

**परम गुनी जन बैठे बार। परम बजै बाजे रसु ढार।**
**परम उछाह महोछे कीज़ै। परम दान सब काहू दीजै।।**

अर्थ–इस समय दूर–दूर से बुलाये गये गुणी व्यक्ति राजभवन में एक साथ बैठकर शुभकामनायें कर रहे थे। उत्तम स्वर की ध्वनियों से मंगलदायक रस बरसाने वाले श्रेष्ठ–वाद्य बज रहे थे। परम उत्साह के साथ राजकुमार के जन्म का महोत्सव मनाया जा रहा था। सभी को यथा–योग्य वस्तुओं का दान दिया जा रहा था।

परम निरत पातुर दिखरावहि। परम नाच नटुवा उपजावहिं।

**अर्थ**—इस मांगलिक अवसर पर नर्तकियां उत्तम प्रकार से नर्तन कर रही थी। नट कलाकार भी श्रेष्ठ प्रदर्शन कर रहे थे।

**दोहा—8 :**

जेतक बाढै बरिष मैं, और लरिकय कोइ।

तेतौं बाढै मांस में, पल पल बड्डो होई।।

**अर्थ**—कोई सामान्य प्रकार का लड़का जितनी लम्बाई—चौड़ाई एक पूरे वर्ष में प्राप्त करता है, उतनी आकार वृद्धि वह राजकुमार, एक माह में ही प्राप्त कर रहा था। वह प्रति—पल, वृद्धि प्राप्त कर रहा था।

**चौपई—9 :**

षेमकुसर सौ बड्डौ भयौ। महा ग्यांन तन बिधना दयौ।

अैसो पण्डित और कबीसुर। भैटे ग्यांन जाइ टरि ईसुर।।

**अर्थ**—वह राजकुमार कुशल—क्षेम के साथ अब बड़ा हो गया। विधाता ने जैसा बड़ा आकार दिया था वैसा ही महान् ज्ञान भी उसे दिया था। बड़े—बड़े विद्वान् और कवीश्वर जब उसके साथ ज्ञान वार्त्ता करते थे, तब उसके प्रश्नों का उत्तर उनके वश के बाहर हो जाता था।

समझ बूझ कौ सागर भारौ। बुधि कौ सूर हरनि अंधियारौ।

मति निरमल गति निरमल सोहै। रति निरमल पति निरमल कोहै।।

**अर्थ**—वह राजकुमार समझबूझ में बुद्धि का अनंत सागर था। अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करने में वह बुद्धि रूपी सूर्य के समान था। उसकी बुद्धि अज्ञान के मल से रहित तथा स्वच्छ थी। उसकी गति दोषों से रहित थी। अतः सभी के लिये रंजनकारी होकर सुशोभित होती थी। उसकी प्रीति ग्राह्य कर्मों को करने में थी। वह निर्मल विवेक—बुद्धि का स्वामी था।

रंग अनंग संगतन राजै। अंग अंग मै निफुनि बिराजै।

**अर्थ**—अब अवस्था के अनुरूप उस राजकुमार के तन में, यौवन के साथ—साथ अनंग ने शोभा वृद्धि कर दी थी। अब उसका अंग अंग चारूता से देदीप्यमान हो रहा था।

**दोहा–9 :**

**कौन ग्यांन में नारिनर, तीनों लोक अचंभ।**

**आछै आछै मुख फिरैं, पाछै काछै दंभ॥**

**अर्थ–**तीनों लोकों के नर और नारियों में यह राजकुमार आश्चर्य का विषय बन गया था। जो उसके पीछे से अपने अच्छे रूप–गुण पर दंभ रखते थे ऐसे श्रेष्ठ जन भी जब उसके सम्मुख होते थे तब अपने को उससे हीन कोटि का मानकर अपना सा मुँह लेकर वापिस लौट जाते थे।

**चौपई–10 :**

**येक नार देखी उनि सपनै। भूलि गयौ सुधि ना तन अपुनै।**

**दोइ मास नहि आंखि उघाऱी। बकि बकि उठि है प्रान–पियारी॥**

**अर्थ–**राजकुमार परमरूप ने (एक समय) सपने में एक नारि देखी। वह उसको ऐसी भा गई कि उसे अपने तन की सामान्य क्रियाओं को आत्मानुशासन से संचालित करने का भी ध्यान नहीं रहा। इसी प्रकार स्वप्न में दिखाई दे रही उस स्त्री को देखने में लगे रहकर राजकुमार ने दो माह तक आँख ही नहीं खोली। वह प्राण–प्यारी स्त्री के संबंध में प्रलाप करता रहता था।

**राजा कौ चिंता भई भारी। भूले भोजन पान–सुपारी।**

**बैद सयानें बहुते टेरे। चषि न उघारी अहुटे फेरे॥**

**अर्थ–**अपने पुत्र की इस प्रकार की अवस्था का समाचार प्राप्त करके राजा भरथ को अत्यधिक चिंता हो गई। वह चिन्ता के कारण भोजन तथा पान–सुपारी आदि खाना भी भूल गया। राजा ने बहुत से वैद्य और अनुभवी गुणीजनों को बुलाकर राजकुमार को दिखाया। उन सबके प्रयत्नों से भी राजकुमार ने आँखें नहीं खोली। पलकें खोलने में बल–प्रयोग करने पर राजकुमार ने अपनी पुलतियाँ फेर ली।

**आपुनु कंवर जियहि समझावै। चष मूंदै कछु हाथ न आवै।**

**अर्थ–**तत्पश्चात् राजकुमार ने स्वयं अपने मन को समझाया कि मात्र आँखें बन्द करके पड़े रहने से मनोरथ सिद्धि नहीं हो सकेगी।

**दोहा–10 :**

**नैन खोलि बैठो भयौ, छयौ ध्यान चित नारि।**

**नेहु नयौ बिधना दयौ, लयौ बिरह–बिसतारि॥**

**अर्थ**–तत्पश्चात् राजकुमार नेत्रों को खोलकर बैठ गया। उसके चित्त में, स्वप्न में देखी हुई नारी का ही स्थान व्याप्त रहा। विधाता ने उस राजकुमार को नारि के प्रति नेह के इस नये बंधन को दे दिया और उस राजकुमार ने उस स्वप्न में देखी नारी के वियोग को चित्त में विस्तृत कर लिया।

**चौपई–11 :**

**कुंवर चितेरा येक बुलायौ। सोवत देष्यौ हौ सु बतायौ।**

**जैसौ रूप कुंवर उहि भाष्यौ। चित्र चितेरे आगै राख्यौ॥**

**अर्थ**–राजकुमार ने एक चित्रकार को बुला लिया और स्वप्न में देखी गई नारी के विषय में (उसके रूप–रंग और हाव भाव के विषय में) बता दिया। कुंवर ने जिस तरह का रूप उसको बताया था, उसका एक चित्र बनाकर चित्रकार ने राजकुँवर के सामने रख दिया।

**रैन दिना उहि चित्रहि जोवै। जल अंसुवनि कर मलि मलि धोवै।**

**चित्रहिं देखन आवै जोई। मनुष न होइ अपछरा कोई॥**

**अर्थ**–वह राजकुमार रात दिन उस चित्र को देखता रहता था। उसकी आँखों से आँसूओं का जल टपक कर चित्र पर पड़ता रहता था। चित्र को देखने के लिये जब भी कोई व्यक्ति आता था, तब चित्र को देखकर उसके मुख से यही शब्द वर्णित होते थे कि यह नारि मनुष्य जाति की न होकर किसी अप्सरा से उत्पन्न है।

**चाचर भयौ चराचर सारैं। यहै बात है बूढै बारैं।**

**अर्थ**–उस नारि की सुन्दरता की चर्चा सम्पूर्ण चराचर जगत् में हो गई। समस्त आबालवृद्धों में उस नारी की सुन्दरता की चर्चा होती रहती थी।

**दोहा–11 :**

**नींद भूष तिसना मिटी, ध्यान–कथा ही गौंन।**

**सपुनौ देषैं यौं भयौ, परगट गति है कौन॥**

**अर्थ**–राजकुमार की नींद, भूख और प्यास मिट गयी। ध्यान भी उच्चाटित हो गया। स्वप्न में जब उस नारि को देखने का जब ऐसा प्रभाव पड़ा, तब फिर यदि वह सुन्दरी प्रकट हो गई तब फिर उसकी गति में कितना भारी परिवर्तन होगा।

**चौपई–12 :**

**येक बिप्र ताकौ उति साहर। वहु फुनि गयौ निकट धौराहर।**
**काहूं कुंवरहि जाइ जनायौ। देषन चित्र बिप्र इक आयौ।।**

**अर्थ**–उस शहर में एक विप्र का ससुराल था। जब उसने उस नारि के रूप के चित्रण करने वाले संवाद को सुना, तब वह विचारपूर्वक धवलगृह के निकट पहुँचा। किसी प्रतिहारी ने राजकुमार को जाकर यह बताया कि एक विप्र उस स्वप्न सुन्दरी के चित्र को देखने के लिये आया है।

**कुंवर बुलाइ चित्र दिषरायौ। देषत ही बंभना मुसकायौ।**
**काहे हंस्यौ विप्र कहि सांच। केहूं बुझे बिरह की आंच।।**

**अर्थ**–कुंवर ने उसको धवलगृह में बुलाकर चित्र को दिखाया। चित्र को देखते ही उस ब्राह्मण ने ऐसी मुस्कान प्रकट की कि मानो वह उस स्वप्न सुन्दरी को पहचानता हो। तब राजकुमार ने विप्र से पूछा कि तुम यह सब सच–सच बता दो कि तुम हँसे क्यों? मुझे उस स्वप्न सुन्दरी से मिलने के लिये कोई उपाय बताओ जिससे यह विरह की अग्नि शांत हो सके।

**नेहु–अगिन जारत है छाती। कबहूं सीरी ह्वै है ताती।**

**अर्थ**–उस स्त्री के प्रति प्रेम की अग्नि प्रज्ज्वलित होकर मेरे हृदय को जला रही है। क्या कभी हृदय की तपन ठंडी हो सकेगी ?

**दोहा–12 :**

**हूं रोगी तूं बैद है, धमनी ऊपर धाव।**
**बेदन नेहु अगाध है, भैंटन मूरि बताव।।**

**अर्थ**–राजकुमार कहता है कि मैं रोगी हूँ और तुम वैद्य हो क्योंकि तुम इस स्वप्न सुन्दरी का पता जानते हो। मेरी धमनी अगाध प्रेम एवं वियोग के संताप से प्रभावित होकर ऊपर को उठकर तीव्रगति से दौड़ रही है। तुम बोलते क्यों नहीं हो। इस सुन्दरी से भेंट करवा देने वाली, उसका पता, निशान रूपी जड़ी बूटी स्वरूप उपचार बता दो।

**चौपई–13 :**

**तोहै चतुरानन की सौंह दिवाऊं। चतुरभुजा चाषि तीन मिलाऊँ।**
**सिंध सुता अज पुत्री आन। हौंस भई जीव बेगि बषान।।**

**अर्थ**–हे ब्राह्मण! तुझको ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों की शपथ दिला रहा हूँ। इस प्रकार राजकुमार के कहने पर वह विप्र करने लगा कि वह तो सिंधुराज की पुत्री है। इतना कहने पर राजंकुमार कहने लगा कि मेरे मन में बड़ी उमंग उत्पन्न हो गई है।

**और सौंह बन फल–सुत तोहि। जो़ तूँ सांच न भाषे मोहि।**
**पंडित कह्यौ कोस सै चार। सिंधपुरी है नगर अपार।।**

**अर्थ**–और तुझको तेरे पुत्र, वन्य फल और फसलों की शपथ है कि तूँ सच–सच ही बोलकर बताना। तब पंडित ने बताया कि यहाँ से चार सौ कोस अर्थात् 960 किमी. की दूरी पर एक अपार विस्तार वाला सिन्धुपुरी नाम का नगर है।

**बसिबौ है तिहि नगर ऊज्यारैं। ब्याह्यौ हूंहइ नगर तिहारैं।**

**अर्थ**–मैं उस उज्ज्वल नगर का ही निवासी हूँ और आपके इस भरथनेर नगर में मेरा विवाह हुआ है।

**दोहा–13 :**

**सिंध तहां को राइ है, दल बल ताहि अपार।**
**छबि–सागर रानी तिइनि, तिलक–रची करतार।।**

**अर्थ**–वहाँ का राजा सिंधराज है। उसके पास अपार दल–बल है। उसकी रानी का नाम छबिसागर है, जो कि रूप–सौन्दर्य और गुणों में संसार की नारियों की श्रेणी में तिलक भूत है।

**चौपई–14 :**

**तिह सागर तें निकसी रंभा। जंघ अंग ना रंभा षंभा।**
**तिहि सागर तें निकस्यौ चंद। देखत होंहि तराइन मंद।।**

**अर्थ**–जिस प्रकार समुद्र से अप्सरा रंभा उत्पन्न हुई है जिसके जंघा आदि अंग कदली के खम्बे सदृश लुभावने हैं। उसी समुद्र से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है जिसकी शोभा के समक्ष तारागणों की कान्ति फीकी पड़ जाती है। उसी प्रकार से सिन्धुराज की रानी छबिसागर भी श्रेष्ठ रूप–रंग और गुणों के साथ सिन्धु नगर में उत्पन्न हुई है।

**अधर पियूष धरे सौ नारी। कनकावति सुता तिंहिं प्यारी।**

**देषत रहै जु वाकौ देषे। सब काज जग होहि अलैषै।।**

**अर्थ**—उसके अधरों में अमृत भरा पड़ा है। उसी रानी छबिसागर से यह कनकावती उत्पन्न हुई है जो कि उन्हें अति प्यारी है। जो कोई उसे एक बार देख ले उसके द्वारा जग के अन्य कार्यों की अनदेखी कर दी जाती है।

**बहुत कहा छबि करूं बषानि। सिंधु सुता ऊहुये वस मानि।**

**अर्थ**—उस कनकावती की सुन्दरता का वर्णन करना तो असम्भव है किन्तु इस सिन्धुसुता को अपने वश में हुआ ही समझो। बस इतना ही में कह सकता हूँ।

**दोहा–14 :**

**लाष दरस जौ होहिं मुहि, मुष मुष रसना लाष।**

**तोऊ बाँटे लाषवे, असुतति सकत न भाष।।**

**अर्थ**—लाखों वर्षों तक मैं निहारूं और मेरे एक लाख मुखों में एक लाख रसनायें भी क्यों न हों फिर भी मैं उसके सम्पूर्ण रूप–रंग और शुभ गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ।

**चौपई–15 :**

**सो तैं सपुनै देषी रानी। चित्र देषि तबहिं पहिचानी।**

**कुंवर धाइ बिप्र पग गहे। बचन जिवावन केतै कहै।।**

**अर्थ**—विप्र कह रहा है कि, ''हे राजकुमार! तुमने स्वप्न में वही कनकावती देखी है। क्योंकि ज्यों ही चित्र देखा, त्यों ही मैं उसे पहचान गया हूँ। कुंवर ने शीघ्रता पूर्वक विप्र के पैर पकड़ लिये और कहा कि तुमने वास्तव में जीवन–दाई वचन कहे हैं।

**नातौ करहु बीच है आपु। हरहु अबहिं बिरहा संतापु।**

**पंडित कह्यौ सुनहु मन आछै। बैराजें सभ जाकें पाछै।।**

**अर्थ**—अब आप मध्यस्थ बनकर हमारे बीच सम्बन्ध पक्का करवा दीजिये। अब शीघ्र ही हमारे विरह–संताप को दूर कर दीजिये। पंडित ने कहा कि अब मैं सिन्धु प्रदेश के उस राजा के विषय में आपको बता रहा हूँ जिसकी आज्ञा का सिंधुराज सहित सभी राजा अनुसरण करते हैं। यह बात आप अच्छे मन से सुने। मेरी बात को अन्यथा प्रकार से कहा हुआ नहीं समझें।

**है जगपति ताहि कौ नाम। जाकैं डरू कांपहिं नर बाम।**

**अर्थ**—उस प्रदेश के बलशाली राजा का नाम जगत्पति है जिसके नाम से प्रदेश का प्रत्येक स्त्री पुरुष डर से काँपता है।

**दोहा–15 :**

**चढत अहेरै जौ कभूं, पुर पुर चिंता होइ।**
**डरि डरि अरि घर थर तजैं, निरभै रहें न कोइ।।**

**अर्थ**—जब कभी वह राजा जगपति अपने महल से सैन्यदल साथ लेकर आखेट खेलने निकलता है, तब प्रत्येक नगर में चिंता व्याप्त हो जाती है। उसके शत्रु डर से अपनी स्थल–भूमि के स्थाई निवास को भी त्याग कर पलायन कर जाते हैं। कोई भी निर्भय होकर नहीं रहता है।

**चौपई–16 :**

**जौ लौ वाकी अग्या न होइ। तौ लौं ब्याहु न करि है कोइ।**
**बिन अग्या जो करि है ब्याहि। नगरहि जावे मारै ताहि।।**

**अर्थ**—जब तक उस राजा की आज्ञा प्राप्त न हो जाये, तब तक कोई पुरुष किसी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता है। यदि कोई पुरुष किसी स्त्री से उस राजा जगपति की आज्ञा के बिना विवाह कर लेता है तो वह उस पुरुष को या तो नगर से बाहर निकाल देता है अथवा उसे मार डालता है।

**नैकु रूप जामैं कछु पावै। ताकौं ब्याहि धाम लै आवै।**
**जो के रूप जित आइसु दैहै। वैसोई निरूप कोऊ लै है।।**

**अर्थ**—वह राजा यदि किसी स्त्री को रूपवती जान लेता है तब वह उससे विवाह करके उसे अपने महल में रख लेता है। जिस किसी को रूपवती पायेगा, उस स्त्री को वह अपनी आज्ञा से बुलवा कर निरखता–परखता है।

**जो कनकावति को बहु हेरे। दूर न होइ रहै नित नैरे।**

**अर्थ**—यदि वह उस कनकावति को देख ले, तो वह उसे अपने पास रख लेगा और कभी भी उससे दूर नहीं होगा।

दोहा–16 :

बलि–बलि दैहै सरब अंस, पल–पल तजै न संग।
वाही कैं रंग–रंग रहै, करि राखै अरधंग।।

**अर्थ**–वह सम्पूर्ण प्रकार से उस कनकावती पर न्यौछावर हो जायेगा। पल–भर को भी वह कनकावती को छोड़ेगा नहीं। वह उसी के रंग में रंग जायेगा और उसको अपनी अर्द्धाङ्गिनी बना कर रख लेगा।

चौपई–17 :

कुंवर बेग परधान बुलायौ। यों कहि राजा पास पठायौ।
दुख देखत जाकै लये भारी। लहीअ बात ताकी अब सारी।।

**अर्थ**–राजकुमार ने अपने प्रधानमंत्री को बुला लिया और इस प्रकार कहकर राजा भरथ के पास भेजा कि, ''आप कुँवर की पीड़ा को दूर करने हेतु जिस कारण और उपाय की खोजकर रहे थे उस विषय में पूरी बात का पता अब चल गया है।''

बांभन कौ मिलिबौ सभ गावौ, जगपति हु को भेद जनावौ।
करि दल बल चलउ गउ पाई, कै ब्याहै कै लेहि छिड़ाइ।।

**अर्थ**–पुनः राजा को विस्तार से उस ब्राह्मण का मिलना तथा उसके द्वारा कनकावती एवम् उसके माता–पिता का जो कथन किया है–उसे उन्हें बता दो। पुनः राजा जगपति के संबंध में भी सम्पूर्ण बल आदि के रहस्य बता दो। राजा से कहो कि सैन्य–दल के सम्पूर्ण बल को लेकर सिंधराज के गढ़ पर पहुँचे और बातचीत के माध्यम से या तो विवाह की रीति से कनकावती को ले आयें अथवा कनकावती को छीन कर ले आयें।

जौ न चलहु तौ हम ही चलि हैं, अपने ही पाँवो दल दलि हैं।

अर्थ–यदि आप न चलें तो, राजकुमार ही, अकेले सैन्य–दल के साथ सिन्धु नगर चले जायेंगे और सैन्य दल के पाँवों तले विरोधियों को कुचल कर कनकावती को ले आयेंगे।

दोहा–17 :

आइस देहु न चलहुजौ, आइस रीति गहेहु।
मोर पषाजो ना करौ, मोरू पषा कर लेऊ।।

**अर्थ**–मेरी ओर से राजा से निवेदन करे कि यदि नहीं चलना चाहते हैं तो मुझे वहाँ जाने की आज्ञा प्रदान कर दे। यदि मेरी परवाह (चिन्ता) न हो तो मोरपंखों की झाडू हाथ में धारण कर तथा राज–पाट को छोड़कर सन्यासी हो जावे।

**चौपई–18 :**

**कैतौ लाइ बिभूत हि छोरूं। ह्वै कै भूत अभूत हि जोरूं।**

**पाग त्यागि जूरी सौ जोइ। जोरि जुरै जगदीस विहोइ।।**

**अर्थ**–राजकुमार का कथन यह है कि–या तो मैं (विभूति) भस्म शरीर पर लपेट कर घर–बार छोड़ दूँगा अथवा भूत बन कर महाभूतों को अभूतों से मिला दूँगा। अपनी राजवंश की पगड़ी को उतार कर तथा भिक्षुक बन कर कनकावती से मिलने चल पड़ूंगा। जगदीश जो सुझायेंगे वह मैं अङ्गीकार कर लूँगा।

**आवध छाडि लेऊं कर बीन। बीन लेऊं मति हो परबीन।**

**हरन चाम कांधै पर धरौं। हरन धाम ही की रटि ररौ।।**

**अर्थ**–अथवा क्षत्रियोचित शस्त्रादि त्याग करके सीधे सन्यास–आश्रम में प्रवेश करके, हाथ में बीन धारण कर लूँगा तथा अपनी मति को प्रवीण बना लूँगा। मृग के चर्म को कंधे पर लटका लूँगा और हिरण्यधाम के परम पद पर पहुँचने के लिये चल पड़ूँगा।

**षपर हाथ लेऊ इह चांइ। जिन केहूं खपर पग जाइ।**

**अर्थ**–अथवा फिर स्वेच्छया खप्पर लेकर उस मार्ग पर चल पड़ूँगा जो कि मुझे मेरे रब (ईश्वर) से मिला सकेगा।

**दोहा–18 :**

**पिता कह्यौ यौ पूत सौ, जोग लहौ जिन भूल।**

**कोतिग मेरे देषि तू, फल अनूस्यौं मूल।।**

**अर्थ**–पिता राजा ने अपने पुत्र राजकुँवर के लिये यह वचन कहे कि भूल कर भी योग–सन्यास ग्रहण मत करना। मैं ऐसा कौतूहलपूर्ण कार्य करूँगा जिससे मनवांछित फल की सिद्धि हो जावेगी।

**चौपई–19 :**

**राइ बहुत नीसान दिवाये, भाई बंधू भै बुलाये।**

**बहु तुरंग बहु हाथी मद के, गढ़ टूटे तोरे जिन रद के॥**

**अर्थ**–राजा भरथ ने कनकावती को ले आने का लक्ष्य बनाकर विशाल सैन्य–समूह एकत्रित किया। बहुत से सैनिकों के दल तैयार किये गये। प्रत्येक दल के पास पृथक्–पृथक् निशान (जुझारू आवाज वाले बड़े बड़े ढोल) थे। राजा भरथ ने अपने समस्त भाई–बन्धुओं को सेना के सहित बुला लिया था। इनकी सेवा में बहुत घोड़े थे। अनेक मदस्रावी श्रेष्ठ हाथी थे जिन्होंने अपने दाँतों से अनेक बार बहुत से किलों के फाटकों को तोड़कर गढ़ो को जीतना आसान कर दिया था।

**पाषर बहुत संजोव अपार। लीने रथ भरि कोरि मन गार।**

**बहुत हुतासन लीनी राई। धीन देइ तौ देऊं उड़ाई॥**

**अर्थ**–अनेक प्रकार के कवच और लड़ाई के काम में प्रयुक्त होने वाली वस्तुयें, अनेक रथों एवं करोड़ों गाड़ियों में भरकर ले जायी जा रही थी। राजा भरथ ने बहुत बड़ी मात्रा में बारूद भी साथ में ले ली थी। उसने यह भी विचार कर लिया था कि यदि कनकावती के पिता राजा सिन्धुराज ने बातचीत के माध्यम से अपनी पुत्री, राजकुमार के लिये देना स्वीकार नहीं किया तो हम बारूद का प्रयोग करके उसके यहाँ भारी तबाही (विध्वंस) मचा देंगे।

**बली सबल दल चल्यौ रिसाइ। जहां निकसै सो देस डराइ।**

**अर्थ**–वह बली राजा एक सशक्त सैन्य–दल को साथ में लेकर, पूरे उत्साह के साथ चल पड़ा। वह जिधर से भी निकला उधर क देश के निवासी–जन अत्यन्त भयभीत हो गये।

**सोरठा–1 :**

**देस देस में रौर, ठौर ठौर के डरतु हैं।**

**भरथ राइ सिर मौर, दौर करी है कौन पर॥**

**अर्थ**–प्रत्येक देश में शोर हो गया कि श्रेष्ठ बली राजा भरथ ने आखिर किस देश पर हमला करने के लिये यह अभियान प्रारम्भ कर दिया है। स्थान–स्थान के निवासी सर्वत्र भयभीत हो रहे थे।

**चौपई–20 :**

**बांभन जादू कह्यौ कनकावत। परमरूप तुब काजै आवत।**

**प्रगट करी जु मन में उपजी। सभै गनाई जो जो बितई।।**

**अर्थ**–राजकुमार के संदेशवाहक विप्र ने राजा सिन्धुराज के राजभवन में राजकुमारी कनकावती के पास पहुँचकर उसे प्रलोभित करने के उद्देश्य से कहा कि राजकुमार परमरूप भरथनेर से तुमसे विवाह करने के लिए आ रहा है। और भी समयानुसार राजकुमार के सुन्दर रूप–वैभव आदि के विषय में मनोहर बातें, उसने राजकुमारी कनकावती से कही।

**सुनत रूप कनकावत तई। लगन नऊ तन निंद्रा गई।**

**भूख प्यास दोऊ बिसराये। परमरूप तन मन मै छाये।।**

**अर्थ**–उससे प्रभावित होने के कारण कनकावती के हृदय में राजकुमार परमरूप को प्राप्त करने के लिये एक नई लगन उत्पन्न हो गई। अब वह राजकुमार की प्रतीक्षा में घड़ियाँ गिन–गिन कर समय व्यतीत करने लगी। वह खाना–पीना भूल गई। उसके तन और मन पर परमरूप को प्राप्त करने का आकर्षण आच्छादित हो गया।

**पिता मोहि जगपति सौं ते डरि है। काहू भांति विवाह न करि है।**

**अर्थ**–राजकुमारी यह भी कह रही थी कि मेरे पिता सिन्धुराज सबल एवं अत्याचारी राजा जगपति से डरते हैं। अतः मेरा विवाह राजकुमार परमरूप से नहीं करेंगे।

**दोहा–19 :**

**जिन बिरंच सभ जग रच्यौ, हौ ध्यावत हौं ताहि।**

**सभ राइन कौ राइ है, बली बली ते आहि।।**

**अर्थ**–अब कनकावती अपना विश्वास प्रकट करती है कि वह ईश्वर पर भरोसा करती है और राजकुमार को प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करती रहेगी। कनकावती कहती है कि मैं उस सर्वशक्तिमान् का ध्यान करती रही हूँ जिसने कि समस्त जगत् की रचना की है। वह ईश्वर समस्त राजाओं में श्रेष्ठ राजा है। वह बली से बली राजा से भी अधिक बलशाली है।

**चौपई–21 :**

**नगर माउ कछु सोर जनायौ। प्रबल सबल दल चलि कै आयौ।**

**भरथराइ पठये प्रधान। राजा सिंध सुनहु धरि कॉंन।।**

**अर्थ**—सिन्धु नगर में काफी शोर उत्पन्न हो गया कि कोई प्रबल राजा सेना लेकर इधर आ गया है। राजा भरथ ने सिन्धुनगर के समीप पहुँचकर अपने प्रधान सेनापतियों को यह बताकर, राजा सिन्धुराज के पास वार्ता हेतु भेज दिया कि उनसे मेरी तरफ से यह निवेदन करना कि, ''हे सिन्धुराज! यह बात ध्यानपूर्वक सुनलो।

**मेरौ पूति तिहारी धीय। करहु मिलाप होइ सुख जीय।**

**तनया देहु सोच कै आप। दुहूवोर कौ मिटै संताप॥**

**अर्थ**—मैं अपने पुत्र परमरूप राजकुमार के लिये, तुम्हारी पुत्री कनकावती का हाथ माँग रहा हूँ। इनका मिलाप करवा दो और सुखपूर्वक मैत्रीभाव के साथ राज करते रहो। आप सोच–विचार करके अपनी पुत्री ब्याह दो तो हमारा और आपका दोनों का ही दुःख दूर हो जायेगा।

**समझु देषि मनमाहिं विचार, केहूं रसहि न पूजे रार।**

**अर्थ**—मन में विचार करके, निष्कर्षतः तुम यह समझ लो कि मैं प्रेमपूर्वक ब्याह की रीति से, तुम्हारी कन्या लेना चाहता हूँ। यदि तुम प्रेम से कन्या नहीं दोगे तो हम संघर्ष करके, यह कार्य पूरा कर लेंगे।

**दोहा–20 :**

**हौं चलि आयौ दूरि तें, लये बिना नहिं जाऊं।**

**जौ रस माहिन देहि तूं, तो अनरस पर आऊं॥**

**अर्थ**—राजा भरथ ने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया कि मैं इतनी दूर भरथनेर से चलकर तुम्हारी कन्या कनकावती को लेने आया हूँ। इस कारण से, इसे साथ लेकर ही वापिस जाऊँगा। यदि तुम प्रेम की रीतिपूर्वक, कन्यादान नहीं करोगे तो मैं घातक युद्ध कर डालूँगा।

**चौपई–22 :**

**राजा सिंध सुनत यहु बात। सिंध जेम भभकात रिसात।**

**कहा भरथ जो ऐसे कहै। मौ दल जलतें गरि गरि बहै॥**

**अर्थ**—राजा सिन्धु ने यह सुनकर, सिंधु (समुद्र) के समान तूफानी आक्रोश प्रकट करते हुए कहा कि राजा भरथ की ऐसी मजाल क्या है? वह किस बूते पर युद्ध की धमकी देता है। मेरे पास समुद्र के समान असंख्या–अथाह सैन्यदल है। उस सैन्यदल की अपार लहरों में–उस भरथ का सैन्य दल गलकर (नेस्तनांबूद होकर) बह जायेगा।

बचनन बोलन किन्हूँ बुलायै। ऐं हौ ब्याहन कौ उठि धायै।

बरस्यो बार बरयों बरू चाहें। बार घटै इहं बुरें उमाहैं।।

**अर्थ**–सिन्धुराज ने सोचकर विचार व्यक्त किये। मैंने भरथ को विवाह हेतु बचन देकर बुलाया नहीं जो कि वे इतनी दूर से ब्याह के लिए शीघ्रता से आ गये हैं। इस प्रकार से विवाह कर देने से हमारा मान घट जायेगा।

ऐसी बातन भिक्षुक मानै। हौ तो राजबंस जग जानै।

**अर्थ**–भिक्षुक भी इस प्रकार अचानक अपनी कन्या को किसी को नहीं दे सकता है। फिर हम तो जग–विख्यात राजवंश में जन्में राजा हैं।

**दोहा–21 :**

जाइ कहौ यौ भरथ सैं, फिरि अपनै घरि जाइ।

कै लरिबै कौ ठाट ठरि, ज्यौं ब्याहन की चाहि।।

**अर्थ**–उस राजा ने, भरथ राजा के प्रधानों से अपना संदेश भिजवाया। उसने इस प्रकार कहा– कि तुर सब जाकर अपने राजा भरथ से कर देना कि वह वापिस लौटकर अपने घर को चले जायें। यदि नहीं चाहते हैं और ब्याह करने की चाह रखते हैं तो लड़ने की तैयारी के साथ यहाँ ठहर सकते हैं।

**चौपई–23 :**

करि संजोव पाषर भये ठाढे। दहूं बोर पाइन के गाढ़े।

मानस मानस धोरा धोरा। हाथी हाथी सौ ऊंवा डोरा।।

**अर्थ**–अब युद्ध की तैयारी हुई। दोनों ओर के शूरवीर सैनिक हाथ में ढाल–तलवार और कवच पहनकर युद्ध हेतु आमने–सामने खड़े हो गये। फिर इस प्रकार से युद्ध आरम्भ हो गया कि पैदल सिपाही तो पैदल सिपाहियों से तथा हाथी सेना की टक्कर हाथियों की सेना के साथ भली–भांति होने लगी।

दुहूं वर जुध करत बिराजै। आवध सेती आवध बाजै।

असि स्यौं असि बाननि स्यौं बान। कुंतनि कुंत पर्‌यौ घमसान।।

**अर्थ**–दोनों ओर के सैनिक पूर्ण कौशल के साथ युद्ध कर रहे थे। भाले–बल्लम चलकर भाले

बल्लमों से टकरा रहे थे, अर्थात् भाला चलाने वाले सैनिक भाला चलाने वाले सेनिकों पर प्रकार कर रहे थे।

**छुरी छुरी मुदगर स्यौं मुदगर। जंन जंन प्रस्तर स्यौं प्रस्तर।**
**हल हल दुस फोटहि दुसफोट। मूसर मूसर करि हैं चोट॥**

**अर्थ**—छुरी चलाने वाले सैनिक, विपक्षी सेना के छुरीधारी सैनिकों पर प्रहार कर रहे थे। मुद्‌गर चलाने वाले सैनिक मुद्‌गर धारी सैनिकों से भिड़ रहे थे। हल जैसे आकार के आयुधधारी सैनिक, ऐसे ही आयुधों को लेकर युद्ध करने वाले सैनिक उसी प्रकार के सैनिकों को उसी विधि से विस्फोट करके एक दूसरे को भारी हानि पहुँचा रहे थे। मूसलधारी सैनिक मूसलधारी सैनिकों से युद्ध कर रहे थे।

**गोफन स्यौ गोफन मिल्यौ, मिल्यौ कुठार हिं कुठार।**
**लगी धारियाल धार सौं, कंपन कंपन मार॥**

**अर्थ**—गोफन से पत्थर बरसाने वाले, गोफन चलाने वाले सैनिकों को अपने कौशल से पराजित करने में निरत थे। कुठार लेकर युद्ध करने वाले सैनिकों से कुठारधारी सैनिक युद्ध कर रहे थे। धारदार आयुधों से लड़ने वाले सैनिक उसी प्रकार के सैन्यदल से लड़ रहे थे। कमानी के कम्पन से प्रहार करने वाले सैनिक भी कौशलपूर्वक युद्ध कर रहे थे।

**चौपई–24 :**

**दंडायुध दंडायुध खोली। गदा गदा गोली सौं गोली।**
**मुस्टक मुस्टक, नीकी बाजै। कटारी कटारी छाजै॥**

**अर्थ**—दण्डायुद्ध धारण करने वाले सैनिक भी युद्ध कर रहे थे। गदाधारी सैनिक गदाधारी सैनिकों पर प्रहार कर रहे थे। बन्दूक चलाने वाले भी गोलियाँ चला–चला कर युद्ध कर रहे थे। ऐसे भी पहलवान सैनिक थे जो दूसरे पहलवान सैनिकों के साथ मुट्‌ठी (घूंसे) मारने की कला से लड़ते थे। एक विशेष दाँतेदार कछारी (कटारी) रखने वाले सैनिक दूसरे कछारी चलाने वाले सैनिकों से युद्ध कर रहे थे।

**दंड दंड, जमधर सौ जमधर। आंकस आंकस तोमर तोमर।**
**गोलक गोलक, चापनि चाप। करपात्रनि करपात्रनि आप।।**

**अर्थ**–दण्डधारी सैनिक दण्डधारी सैनिकों से युद्ध कर रहे थे। अंकुशधारी सैनिक अंकुशधारी सैनिकों से युद्ध कर रहे थे। तोमर (भाला सरीखा) आयुध लेकर लड़ने में प्रवीण सैनिक, तोमर सैनिकों से युद्ध कर रहे थे। बड़े–बड़े गोले गोले फेंककर प्रहार करने वाले सैनिक भी युद्ध कर रहे थे। धनुर्धारी सैनिक भी धनुर्धारियों से युद्ध कर रहे थे। करांतो को लेकर युद्ध करने वाले सैनिक भी करांतधारी सैनिकों से युद्ध कर रहे थे।

**फरस फरस, पासनि स्यौ पास। सकति सकति उपजाति है नास।**
**भाला भाला आपुन मांहि। चक्र चक्र लगि लगि चमकांहि॥**

**अर्थ**–फरसे वाले सैनिक फरसे वाले सैनिकों से युद्ध कर रहे थे। नागपाश आदि आयुधों से लड़ने वाले सैनिक भी, दूसरे पक्ष के ऐसे ही सैनिकों से युद्ध कर रहे थे। शक्तिं नामक आयुधधारी सैनिक शक्तिधारी सैनिकों से भीषण युद्ध करके भारी विनाश कर रहे थे। भाले वाले, अपने सरीखे भालाधारी सैनिकों के साथ युद्ध कर रहे थे। चक्र फेंककर चलाने वाले, दोनों पक्ष के सैनिकों में भी युद्ध हो रहा था। चक्रों से दूसरे चक्र जब टकराते थे, तब प्रकाश चमक उठता था।

**दोहा–23 :**

**बज्र बज्र गुरजन गुरज, कुदाली कुदाल।**
**तिरसूलन तिरसूलन स्यौं, कांतहि कांति धमाल॥**

**अर्थ**–बज्रधारी सैनिक विपक्ष के बज्रधारी सैनिकों से युद्ध कर रहे थे। कुदाली वाले सैनिक, कुदाली वाले सैनिकों के साथ युद्ध कर रहे थे। त्रिशूलधारी सैनिक, त्रिशूल लेकर लड़ने वालों के साथ युद्ध कर रहे थे। कांता लेकर लड़ रहे सैनिक, अपने विपक्ष के कांता लेकर लड़ने वाले सैनिकों से युद्ध कर रहे थे।

**चौपई–25 :**

**भरथ पर्‌यौ ह्वै कै धनु धाई। परधाननि तब लयौ ऊंचाई।**
**भरथ राइ सुधि–बिधि बिसरानी। लैके चले पुरहि अगवानी॥**

**अर्थ**–युद्ध क्षेत्र में राजा भरथ के हाथ से धनुष गिर गया तथा वे घायल होकर गिर पड़े, तब उनके प्रधान सेनापतियों ने उन्हें संभाल कर उठा लिया। भरथ राजा मूर्च्छित हो गये। अब उनकी सेना के लोग राजा भरथ को लेकर भरथनेर नगर के लिये वापस लौट कर चल पड़े।

राज सिंध दै फिरि निसांन। मनहुं ऐन घन की घंहरांन।

हरिष हुलास पुरी जब छाई। धाम धाम में बंटी बधाई।।

**अर्थ**—राजा सिंधुराज ने विजय का सूचन निशान (नगाड़ा) बजवा दिया। वह इस प्रकार की ध्वनि से बज रहा था जैसे कि मानो मेघों का गर्जन हो रहा हो। पूरी सिन्धु नगरी में हर्ष का उत्साह भर गया। घर–घर में शुभ बधाईयाँ बाँटी जाने लगी।

कनक जेम कनकावती तई। भलै दई गति ऐसै भई।

**अर्थ**—कनकावती स्वर्ण के समान स्थिर शोभा के साथ वहीं स्थित रही। विधाता ने जैसा शुभ समझा वही 'गति' प्रतिफलित हुई।

**दोहा–24 :**

चिंत बढ़ी कनकावती, गयौ अनंद विवाह।
मानहुं बीती सीत रित, ऊपजी ग्रीषम दाह।।

**अर्थ**—युद्ध के परिणाम से कनकावती की विवाह की प्रत्याशा समाप्त हो गई। उसके हृदय में जो विवाह की आशा से आनंद भर गया था वह समाप्त हो गया। वह मन में ऐसा अनुभव करती थी जैसे कि मानों शीत ऋतु रूपी मिलन का समय समाप्त हो गया है और वियोग रूपी संताप देने वाली ग्रीष्म ऋतु का समय आ गया है।

**चौपई–26 :**

आइ सन्यासी सोध्यौ आरन। परम रूप पायौ दुष दारन।
उठहि ऊठाइ और ठां गयौ। परम उपाय कर्‌यौं कछु नयौ।।

**अर्थ**—परमरूप राजकुमार युद्ध में घायल हो गया था। राजकुमार परमरूप का उपचार करने में सक्षम एक सन्यासी ने उसे देख लिया और राजकुमार को उठाकर अपने स्थल पर ले गया। उसने कुछ नये ही उपाय से ऐसी चिकित्सा की कि राजकुमार परमरूप के शरीर पर एक भी घाव शेष नहीं रहा।

थोरे ही द्यासनि के माही। येक घाव मनौ लाग्यौ नाहीं।
येक ठांव लै आयौ ताहि। जहां सन्यासी आवन माहि।।

**अर्थ**—थोड़े ही दिनों में राजकुमार ऐसा स्वस्थ हो गया जैसे कि मानों उसके शरीर पर एक भी घाव नहीं लगा हो। इसी समय नगरवासियों ने एक अन्य सन्यासी का उस नगर में आना सुना।

**करिकै दीनै बसन भगोहै। बीन हाथ चित्त प्रान पगो है।**

**अर्थ**–प्राणदाता ने साधु सन्यासी के अनुरूप वस्त्र राजकुमार के लिये भी उपलब्ध करा दिये और हाथ में एक बीन दे दी। राजकुमार परमरूप ने राजा सिन्धुराज से अपने प्राणों को बचाने के लिये एक बीन धारी साधु का छद्म भेष धारण कर लिया। फिर उसने विरह की ध्वनि वाले राग के साथ बीन बजाना प्रारम्भ कर दिया।

**दोहा–25 :**

**कनकावती धुनि बीन मै, रही रसनि चित पाग।**
**और राग सौं राग है, इही राग सो राग।।**

**अर्थ**–राजकुमारी कनकावती ने अपने धवलगृह में जब बीन की ध्वनि सुनी, तब उसका चित्त भी उसी लय के अनुरूप भावित होकर समरस हो गया और वह संसार के अन्य रागों से विरत होकर वियोग के राग में रम गई।

**चौपई–27 :**

**बिप्र बुलाइ कह्यौ यौ रानी। परमरूप गति कौन बिहांनी।**
**बेगि सूरति लै आवहु पांडे। भाग संपूरन आहि कि षांडै।।**

**अर्थ**–कनकावती ने मध्यस्थता करने वाले उस विप्र को बुलाकर इस प्रकार कहा कि राजकुमार परमरूप की युद्ध में क्या दशा बनी है, इस बात का पता लगाकर मुझे समाचार देने आओ। तुम यह देखो कि मेरा परम सौभाग्य परमरूप राजकुमार जीवित है अथवा मेरा भाग्य खण्ड–खण्ड होकर नष्ट हो गया है।

**बांभन जाइ लोथ सभ देखि। कुंवर नाहि कर भलै परेषि।**
**आइ कह्यौ आनंद मन माहि। लोथनि लोथ कुंवर की नाहीं।।**

**अर्थ**–इसके पश्चात् वह विप्र उस स्थल पर पहुँचा जहाँ युद्ध हुआ था। वहाँ उसने समस्त शवों का निरीक्षण किया। वहाँ उसने यह निश्चय कर लिया कि मरे हुए लोगों के शवों में राजकुमार का शव नहीं है। इसके पश्चात् वह विप्र वापस लौटकर कनकावती के पास आया और कहने लगा कि आप अपने मन में आनन्द धारण कीजिये क्योंकि शवों में राजकुमार परमरूप का शव नहीं है।

**कनकावत हूं मन समझावै। जीवंत बच्यौ यहै लष पावै।**

**अर्थ**–अब करकावती भी अपने मन को समझाने लगी कि मैं जहाँ तक निष्कर्ष निकालती हूँ मुझे यही समझ में आता है कि राजकुमार जीवित है।

**दोहा–26 :**

**पंडित अब तू गहर तजि, साहर कौ पग धार।**
**परमरूप अहि नगर मैं, आहि कि नाहिं निहार॥**

**अर्थ**–कनकावती ने विप्र से कहा कि तुम इस धवलगृह में ठहराव त्यागकर शहर में खोज करने जाओ और जगह–जगह इस बात का निरीक्षण करो कि राजकुमार परमरूप इस नगर में विद्यमान है अथवा नहीं।

**चौपई–28 :**

**बांभन चल्यौ आयौ उहि देश। बो देख्यौ सो मेले भेस।**
**कहौ कौन गति कैसे भंईया। भरथ राइ कौं गयौ ललईया॥**

**अर्थ**–ब्राह्मण कनकावती के पास से प्रस्थान करके सीधा भरथनेर पहुँचा। वह मैला वेश धारण किये हुये था। वह राज़ा भरथ से राजकुमार परमरूप के समाचारों को जानने की इच्छा से उनके पास महल में पहुँचा। उसने अन्य लोगों से समाचार पूछे। तब भरथ राजा के विषय में लोगों ने बताया –

**अबके अनगन दल बल जौरे। सिंध पुरी कै पति हि मरोरै।**
**सुनत बचन चिंता भई पांडै। भये मलिन मुष मानहु डांडै॥**

**अर्थ**–कि अब वे फिर से पूरी तैयारी करके राजा सिंधुराज पर हमला करके उसे पराजित कर देंगे। इस प्रकार के वचनों को सुनकर ब्राह्मण को बड़ी चिन्ता हुई। वह शीघ्र राजा भरथ के पास पहुँचा।

**जाइ राइ को कियौ जुहार। लोथन कौ सब दयौ विचार।**

**अर्थ**–उसने भरथ राजा को यह शुभ समाचार बताया कि सिन्धुनगर में हुए उस रणक्षेत्र में जाकर मैंने समस्त शवों का निरीक्षण भलीभाँति कर लिया है। उन शवों में राजकुमार परमरूप का शव नहीं है।

**दोहा–27 :**

**भरथ राइ आनंद भयौ, सुनत कुँवर को नाम।**
**यहै बहुत जीवत बच्यौ, बहुरि मिलावै राम॥**

**अर्थ**–कुँवर से संबंधित इस शुभ समाचार को जानकर राजा भरथ अत्यन्त आनन्दित हुये। उन्होंने कहा कि कुँवर जीवित बच गया है तो इससे हमें संतोष है। अब हमें यह आशा बंधी है कि रामजी की कृपा से कुंवर फिर से मिल सकेगा।

**चौपई–29 :**

**पुन्य दान दैहे ब्रिध बाल। जिन करतार मिलावै लाल।**
**रातद्यौंस दिस दिस जन दौरै। चरन चपलि चलि हैना हौ़रे॥**

**अर्थ**–राजा भरथ रात–दिन वृद्धों से लेकर बच्चों तक की उम्र के सब मनुष्यों को दान–पुण्य की रीति से वस्त्र–भोजन और आवश्यक वस्तुयें देते रहते थे। वे दान–पुण्य इसी निमित्त करते थे कि शायद दान–पुण्य करने से उनका पुत्र पुनः मिल जावे। उस राजा के नियुक्त व्यक्ति रात–दिन गाँव–गाँव व नगर–नगर में विभिन्न स्थलों पर राजकुमार की खोज में बिना थके तीव्र गति से दौड़ रहे थे।

**रैन दिना राजा पुनि रानी। परमरूप की कहैं कहानी।**
**अलख निरंजन ही नित ध्यावैं। यहै चिन्ता अंगज कब पावै॥**

**अर्थ**–राजा और रानी रात–दिन पुत्र की ही बातें करते रहते थे। वे निरन्तर परमात्मा का चिन्तन इसी आशा में करते रहते थे कि उनकी कृपा से उनका पुत्र कभी लौट कर आ जायेगा।

**नींद भूष तिसना बिसरानी। देषन कौ अषियाँ ललचानी।**

**अर्थ**–राजा और रानी की आँखें अपने पुत्र को देखने को इतनी ललचा रही थी कि उन्हें भोजन और पानी की भी चिन्ता नहीं थी।

**दोहा–28 :**

**जोई भिछुक आइ है, ताकी लेहि संभारि।**
**आनि जिंवावाहि चौंपसौं, नीकी विधि ज्यों नार॥**

**अर्थ**–जो भी घूमने फिरने वाला भिक्षुक आता था उसकी राजा और रानी बड़ी संभाल करते थे।

उसको बड़े उत्साह एवम् आदर के साथ भोजन कराते थे। क्योंकि घर–घर घूमने वाले भिक्षुकों से कोई भी समाचार छिपा नहीं रहता है। देश–देश के एवम् नगर–नगर के, गाँव–गाँव एवम् गली–गली के हर प्रकार के समाचारों को जानने के लिए–भिक्षुकों से पूछ कर पता लगाया जा सकता है।

**चौपई–30 :**

**बांभन आइ, बात कही सारी। ऊतहूं नाहिन प्रान अधारी।**

**कनकावत चखि आँखू ढारे। पांडे षांडें भाग हमारे।।**

**अर्थ**–ब्राह्मण ने राजा भरथ को कनकावती के समाचार बताते हुए कहा कि कनकावती राजकुमार को अपने प्राणों का आधार मानती है। वह मुझसे कहती है कि बिना राजकुमार के मेरा सौभाग्य खण्डित हो जायेगा। वह राजकुमार के वियोग में आँसू बरसाकर संतप्त होती है।

**तुम हूँ ब्रह्मण कौ जापित साध। हरि हरि नाम बिसन आराध।**

**सगुन साधि कै देहु पयानौ। जिन कहुं वा पावहुं जग रानौ।।**

**अर्थ**–आप भी ब्रह्मा, विष्णु और महेश का आराधन कीजिये और मुझ ब्राह्मण को राजकुमार को खोजने के उद्देश्य से प्रस्थान करने की अनुमति प्रदान कीजिए। संभव है कि मैं राजकुमार को कहीं न कहीं ढूंढ़ लूँगा।

**बिप्र हिं नींद न भूष न प्यास। परमरूप ही कौ आभास।**

**अर्थ**–विप्र ने वहाँ से प्रस्थान किया। उसे न तो नींद आती थी और न हीं भूख और प्यास सताती थी।

**दोहा–29 :**

**फिरत फिरत बहु द्यौस लौं, चलि आयौ इकि गांव।**

**सागर ग्यान गंभीर गुन, सुन्यौ सन्यासी ठांव।।**

**अर्थ**–बहुत दिवसों तक राजकुमार की खोज में घूमते–घूमते इसी क्रम में ब्राह्मण एक गाँव में पहुँचा। उस स्थल पर कोई ज़ान का सागर, गंभीर गुणों का धारणकर्त्ता सन्यासी विद्यमान है। ऐसा उस ब्राह्मण ने लोगों के मुख से सुना।

चौपई–31 :

महापुरुष सभ कोई मानैं। अस्ट सिद्ध नौ निधि हिं जानैं।
कला बहतरि हूँ पहिचानीं, जो निज बात सु सगरी जानी।।

**अर्थ**–उस सन्यासी को कोई व्यक्ति तो महापुरुष मान रहा था तो कोई अष्ट सिद्धि और नौ निधि का स्वामी मान रहा था। कोई कहता था कि उसकी मैंने यह पहचान कर ली है कि वह सन्यासी बहुत कलायें जानता है और जो भी व्यक्तिगत रहस्य की बातें हैं, उनको भी प्रकट कर बताने की उस सन्यासी में योग्यता है।

व्याकरनी बेदी ज्योतषी। बैदक अमर तरक सभतषी।
ग्यांनी ध्यानी बानी ईस। जानी मानी सेव जगीस।।

**अर्थ**–वह सन्यासी वेद, व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, कोष, तर्कशास्त्र का ज्ञाता है और न्यायशास्त्री है। उस सन्यासी के विषय में, ब्राह्मण ने लोगों के मुख से यह भी सुना कि वह ज्ञानी, ध्यानी और वाणी का ईश है। वह जानकार है, आदरणीय है तथा जगदीश की सेवा करने वाला है।

सुनि पंडित चित्त भयो उछाह। महा मिलन को बढ्यौ ऊमाह में।

**अर्थ**–ऐसे सन्यासी के विषय में सुनकर ब्राह्मण के चित्त में उत्साह भर गया और उसमें सन्यासी से मिलने की विकट उत्कण्ठा जागृत हो गई।

दोहा–30 :

जाइ जुहार्‌यौ चौंप सौ, कुंवर निहार्‌यौ पास।
चिंत चटपटी मिटि गई, ऊपजी हरिष हुलास।।

**अर्थ**–ब्राह्मण जब उस सन्यासी के कथित स्थल पर पहुँचा तब वहाँ उसने कुंवर को देखा। कुँवर की समीपता प्राप्त करके उसने बड़े उत्साह से प्रणाम किया। उसकी पीड़ादायी समस्त चिन्ता दूर हो गई। उसके हृदय में एक नयी स्फूर्तिदायक प्रसन्नता जागृत हो गई।

चौपई–32 :

बांभन फूल्यौ अंगन माइ। सन्यासी डरू कछु न लषाइ।
कुंवर देखि बांभन को हरष्यौ। ग्रीसम तपति धरा धन बरस्यौ।।

अर्थ–अब ब्राह्मण के अङ्गों में नयी शक्ति का संचार हो गया। उसे अब सन्यासी से मिलने में कोई संकोच नहीं हो रहा था। कुंवर भी ब्राह्मण से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वियोगरूपी ग्रीष्म से जलते उसके हृदय रूपी धरा स्थल पर मानों मेघों ने वर्षा कर दी हो, ऐसा आनन्द उस अवसर पर भर गया।

**ध्यान सदन सन्यासी पैठ्यौ। कुंवर आय पंडित ढ़िग बैठ्यौ।**

**बाभन भाषहु सांची बात। सुरति हमारी है उन गात।।**

अर्थ–इस समय सन्यासी तो ध्यान समाधि साधने के लिये वहाँ एक कक्ष में स्थित था। इसलिये कुँवर आकर ब्राह्मण के पास बैठा हुआ था। कुँवर ने ब्राह्मण से पूछा कि तुम सच–सच बताओ कि क्या कनकावती हमारा स्मरण करती है?

**सोवत तुम्ह, तुम्ह ही, जो जागी। परमरूप रट, रसना लागी।**

अर्थ–ब्राह्मण ने उत्तर देते हुए बताया कि वह सोते और जागते समय निरन्तर तुम परमरूप को ही सम्पूर्ण प्रीति के साथ रटती रहती है।

**दोहा–31 :**

**ऊन ही की मनसा सुनै, अति उपज्यौ मन चाव।**

**हा हा पंडित मिलन को, अब कछु करहुं उपाव।।**

अर्थ–राजकुमार तो मन लगाकर ब्राह्मण के मुख से वर्णित होने वाली कनकावती की ही बातों को सुनता रहा। उसके मन में उसकी बातों को सुनने का भारी चाव बना हुआ था। राजकुमार ने यह भी कहा कि पण्डितजी! मैं, दुखी हूँ। कनकावती से मिलने का कुछ उपाय कीजिये।

**चौपई–33 :**

**सुनंहु कुंवर बतियां धरि कांन। सन्यासी यहु देत न जान।**

**या कौं हनै बनै सभ बात। धर लै जाइ उठाऊ घात।।**

अर्थ–ब्राह्मण ने कहा, ''है कुँवर! मेरी बात को ध्यान से सुनो। यह जो सन्यासी है, जिससे तुम विद्या सीखते हो, इससे छुटकारा प्राप्त करने के लिये तुम इसको जान से मार डालो। इसको मार डालने से सब कार्य पूरे हो सकेंगे। इसे जमीन पर पटक कर इस पर प्रहार करके मार डालो।

**कुंवर आंगुरी दीनी दांतन। भूल न बोल बिप्र इह भांतन।**

**सन्यासी है भरथ समान। जिहि मौकौं दीनों ज्यौ दान।**

**अर्थ**—पण्डित की बातों को सुनते ही, राजकुमार ने असहमति और आश्चर्य से, अपनी अंगुली दाँतों से काटी और कहा—"हे पण्डित जी! भूलकर भी इस प्रकार की बातें न करें। यह सन्यासी मेरे पिता भरथ के समान है जिन्होंने मुझे जीवन दान दिया है।

**ज्यौं लौ सन्यासी की आव। तौ लौ पाती लै लै धाद.**

अर्थ—देखो जितनी अवधि में यह सन्यासी समाधि से उठ कर यहाँ आवे, उस समय से पूर्व ही, मेरी लिखी हुई चिट्ठी लेकर, तुम तीव्र चाल से प्रस्थान करके, कनकावती को समाचार पहुँचा दो।

**दोहा—32 :**

**सन्यासी आइस न दै, जोग मिलन किम होइ।**

**अकी अग्या भंग ह्वै, रंगन पावै सोइ॥**

**अर्थ**—सन्यासी जब तक स्वेच्छापूर्वक, मुझे यहाँ से जाने की आज्ञा नहीं दे दे, तब तक मैं कनकावती से मिलने के लिये प्रस्थान करना उचित नहीं समझता हूँ। प्राण—दाता सन्यासी की आज्ञा का उल्लंघन करके जाने से गुरूद्रोही होने पर पृथ्वी के तत्व मेरे तन का पोषण करना बन्द कर देंगे।

**चौपई—34 :**

**कुंवर, विप्र कर पठई पतियाँ। तामै लिषीं आपुनी बतियां।**

**प्रथम तूं, सूबत मैं देखी। तब ही तें हिरदै अवरेषी॥**

**अर्थ**—कुँवर ने विप्र के हाथ से, कनकावती के पास अपनी प्रीति के विरह की पीड़ायें लिख भेजी थी। उसने चिट्ठी में लिखा था कि प्रथमबार मैंने तुझको सोते समय स्वप्न में देखा था। तभी से तुझे हृदय में प्रियतमा का स्थान दे दिया है।

**सोवत, जागत, बैठे षरैं, रह्यौ ध्यान तेरे ही धरै।**

**पेम लगि तोहि ब्याहन आयौ। राजपाट तुव काज गंवायौ॥**

**अर्थ**—सोते समय, जाग्रत अवस्था में, बैठे समय अथवा खड़े रहने की अवस्था में मेरे ध्यान में

सदैव तूँ ही अवस्थित रही है। तुझसे अथाह प्रेम था। इसी कारण मैं पिता को साथ लेकर तेरे घर तक ब्याह करने के लिये आया था। अभी तक मैंने तुम्हारे कारण राज–पाट सब त्याग दिया है।

**भयौ दयाल मोहि अभिनासी। त्रारन ते लग्यौ संन्यासी।**

**अर्थ**–इस सन्यासी ने मुझे नष्ट होने की दशा में देखकर दयालुता से त्राण दिया है। अतः मैं अपने तारक इस पिता के अधीन इसकी आज्ञा की पालना में समय व्यतीत कर रहा हूँ। तुझसे मिलने का ही चाव है।

**दोहा–33 :**

**है घायल धर पर पर्‌यौ, मीत न सेवक पास।**

**सन्यासी आवत नहीं, तो हो तौ ज्यौ नास।।**

**अर्थ**–राजकुमार ने कहा – मैं जब सिन्धुनगर के युद्ध क्षेत्र में घायल होकर पृथ्वी पर पड़ा हुआ था। उस समय मेरे समीप न तो कोई सेवक था और न हीं कोई प्रियजन ही था। मैं सर्वथा असहाय अवस्था में था। यदि सन्यासी आकर मुझे बचाने का उपाय नहीं करता तो मेरे प्राणों का नाश हो जाता।

**चौपई–35 :**

**जप तप गह्यौ संजम सुभाव। तोहि मिलन बिन और न चाव।**

**राज रीति तजि गह्यौ सन्यास। तुव कारन नित करूं उपास।।**

**अर्थ**–अब मैंने जप–तप अङ्गीकार कर लिया है। अपने स्वभाव में प्रयास पूर्वक संयम साधना का आधान कर दिया है। राज के व्यवहार को त्यागकर सन्यास–धर्म को आचरण में ग्रहण कर लिया है। अब मैं तुमसे मिलने को साध्य बनाकर नित्य उपवास करता हूँ।

**ते इक बरस करि हे ग्यारस। मोहि बरत नित आइन आरस।**

**ग्यांन ध्यान जप सुमिरन तेरौ। यहै सुझाव भयौ है मेरो।।**

**अर्थ**–इस प्रकार से एकादशी आदि के व्रत–उपवास करते हुए एक वर्ष पूर्ण हो गया है। मुझे कभी भी आलस्य बाधित नहीं कर पाता है। ज्ञान, ध्यान और जप में एकमात्र साध्य तेरा ही स्मरण मैं करता रहता हूँ।

**द्रिग मूंदे देषत छबि तेरी। उघर परे तूं ही दै हेरी।**

**अर्थ**—मैं नेत्रों को बन्द कर लूँ, तब भी तेरी छबि दिखाई पड़ती है। यदि मेरी आँखें खुली होती हैं, तब भी तुझे ही खोजती रहती है।

**दोहा–34 :**

**बातैं ताती बिरह की, पाति जरत न काहि।**
**आछिर भीजैं पैम जल, बांचत साचै ताहि॥**

**अर्थ**—इस चिट्ठी में मैं विरह के सन्ताप की तप्त बातें लिख कर प्रेषित कर रहा हूँ, परन्तु यह चिट्ठी जलती क्यों नहीं हैं? इसका कारण यह हो सकता है कि अक्षर लिखते समय प्रेमाश्रुओं से भीगते रहे हैं, अतः समस्त दशा तुमको द्योतित हो जायेगी।

**चौपई–36 :**

**पाती लै पांडै उठि धायौ। कनकावती के नेरे आयौ।**
**पहिलै तौ सभ भाषी बतियां। पाछै दई कुंवर की पतियां॥**

**अर्थ**—राजकुमार की चिट्ठी लेकर मध्यस्थता कर रहा ब्राह्मण राजकुमारी कनकावती के पास पहुँच गया। उसने सर्वप्रथम तो राजकुमार के सम्पूर्ण समाचार मुख से बोलकर बता दिये। तत्पश्चात् राजकुमार के द्वारा भेजी हुई चिट्ठी उसको दे दी।

**पढ़ि कनकावती अति हरसाई। उतावली मूरति चैन दई दिषराई।**
**सरस्यौ मनु बिरवा मुरझान्यौ। तपति मिटी तिय गात सिरान्यौ॥**

**अर्थ**—कनकावती राजकुमार की चिट्ठी पढ़ कर अत्यन्त हर्षित हो गई। उसकी शक्ल पर चैन के भाव स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। उसका मुरझाया हुआ मन रूपी वृक्ष हरिया गया। उस नारि का संताप दूर हो गया। उसके मन और तन में ठण्डक (शांति) आ गई।

**जीवत रह्यौ तौ छै है मिलबौ। मुर्छित कलीं होइं अति षिलिबौ।**

**अर्थ**—यदि आगे जीवन रहेगा तो तुमसे मिलना अवश्य होगा और मिलन की दशा में मुरझाई हुई. कली (तुम्हारा) का (स्त्री रूप में) पूर्ण विकास अवश्य हो सकेगा।

**दोहा–35 :**

**कबहू सुख कबहूं दुःखी, जो जरम्यौ जग मांहि।**
**पूरब ह्वै कबहूँ पछिम, येकन दिसतर छांहि॥**

अर्थ—इस संसार में जो जन्मा है वह कभी दुःखी होता है और कभी वह सुख प्राप्त करता है। छाया रूपी दुःख सदा एक दिशा में नहीं रहता है। वह कभी पश्चिम दिशा में तो कभी पूर्व में जाता है। (सुख दुःख चक्र के आरों की भांति उपर नीचे स्थिति प्राप्त करते हैं)।

**चौपई—37 :**

**ऊलिटि लिखी पांडे कर पाती। नेहु तोहि छायौ मुहि छाती।**
**नेहु तिहारे नींद गंवाई। भूख न प्यास न कछू सुहाई।।**

अर्थ—राजकुमारी कनकावती ने चिट्ठी के जबाब में एक चिट्ठी लिखकर राजकुमार को दे आने के उद्देश्य से उस ब्राह्मण के हाथ में प्रदान कर दी। इस चिट्ठी में कनकावती ने राजकुमार के लिये लिखा कि तुम्हारा स्नेह मेरे हृदय में व्याप्त रहता है। तुम्हारे प्यार के कारण मैंने नींद का त्याग कर दिया है। भूख लगती नहीं है। प्यास भी नहीं लगती है। कुछ भी रूचिकर नहीं लगता है।

**अपनौ नेहुं न काहे बरज्यों। क्यों पठवौ काढिन को धर ज्यौ।**
**हम तौ कछु अपराध न कीनौ। बहुर पाप काहे हम दीनों।।**

अर्थ—आपने अपने प्रेम को रोका क्यों नहीं था। अपनी चिट्ठी में अपना हृदय रख कर क्यों भेजा? तुम्हारे हृदय को देखकर मेरा हृदय भी निकला जा रहा है। हमने तो कोई अपराध भी नहीं किया था फिर भी आपने हमको पाप करने वाला क्यों समझा है।

**जैसे तुम्ह जप कर हु हमारौ। तेसै सुमिरन आहि तुम्हारौ।**

अर्थ—जिस रीति से तुम हमारा जाप करते हो, उसी प्रकार से मैं भी तुम्हारा स्मरण करती रहती हूँ।

**दोहा—36 :**

**भैटें बिना न होइ रंग, तैसी हम तुम रीति।**
**हरदी चून बिछोह तैं, षार तैसै तबहु पीति।।**

अर्थ—जब तक हमारा और तुम्हारा मिलन नहीं होगा तब तक हम तुम एकाकी ही रहेंगे। जब तक शोभाजनक स्नेह का लाल रंग उत्पन्न नहीं होगा तब तक हम एक दूसरे से वियुक्त हैं। हल्दी और चूना जब तक वियुक्त रहते हैं तब तक हल्दी पीत वर्ण की रहती है और जब हल्दी और चूना दोनों मिल जाते हैं तब उनका रंग शोभा सम्पन्न 'लाल वर्णीय' हो जाता है।

चौपई–38 :

पंडित लै पाती हित साषी। जाइ कुंवर कैं आगै राषी।
कुंवर दयौ आदर सनमान। मनहु छत्रपति को फुरमान।।

अर्थ–ब्राह्मण अपने हित में सहायक साक्षी कनकावती की लिखी उस चिट्ठी को लेकर कुंवर के पास पहुँचा। उसने कुँवर को कनकावती की चिट्ठी दी। कुँवर ने कनकावती की उस चिट्ठी को ऐसा सम्मान दिया जैसे मानों वह किसी छत्रपति (बादशाह) का शासकीय आज्ञापत्र हो।

अधरन धरि के सिर पर चाढि। नेहुं महा चौंप मिलिबे की बाढी।
बहुंर षोलि कै बांची पाती। नेहुं नांव सुनि हरषी छाती।।

अर्थ–उस चिट्ठी को पहले प्यार से अधरों पर रख कर सिर पर रख लिया। अब राजकुमार के हृदय में कनकावती से मिलने की महान् लालसा उत्पन्न हो गई। इस पश्चात् उसने चिट्ठी पढ़ना प्रारम्भ किया। स्नेह नाम पढ़ते ही उसका हृदय हर्ष से भर गया।

रंग पतंगइ कंठी ईठी। द्वै मन मिले त होइ मंजीठी।

अर्थ–कण्ठी और ईंट का मिश्रण मिलने से पतङ्गई रंग बनता है। उसी प्रकार दो मन जब मिलते हैं तब मजीठ का स्थिर रंग उत्पन्न होता है।

दोहा–37 :

बतियां पतिया मै करैं, कैं पंडित कैं मुष।
परगट अरगढ ना मिलै, तौ लो नाहिन सुष।।

अर्थ–अब तक प्रेम की बातें या तो चिट्ठियों में लिखकर अभिव्यक्त की गई थी या फिर मध्यस्थता करने वाले पण्डित के मुख कथन से वर्णित हुई थी। प्रेमीजन जब तक प्रकट होकर आमने–सामने होकर नहीं मिलें तब तक वास्तविक सुख मिलना नहीं कहा जायेगा। ऐसा भी पत्र में कनकावती ने लिख दिया।

चौपई–39 :

ठाढौ भयौ कुंवर कर जोरि। सन्यासी देष्यो तब बोरि।
कहा कहत काहि धौरे बाल। इंछा होइ सुभाषु लाल।।

**अर्थ**—इसके पश्चात् एक अवसर पर सन्यासी की और कुंवर ने खड़े होकर और हाथ जोड़कर अपेक्षा से जब देखा, तब सन्यासी ने उसकी ओर देख पूछा—''हे बालक तेरे मन में क्या है? जिसे तू कहना चाहता है। हे लाल! तेरी कोई इच्छा है तो वह भली–भांति बता।''

**तुम जानहु हूँ राजा नंदन। केहूं रहै छपावौ चंदन।**
**तुम्ह को सभ जगु आवै बंदन। पहिचानै परिहै दुःष दंदन।।**

**अर्थ**—राजकुमार ने सन्यासी से कहा, ''तुम जानते हो कि मैं एक राजा का पुत्र हूँ। जिस प्रकार चंदन को सुगन्ध के कारण छिपाकर नहीं रखा जा सकता है उसी प्रकार से राजा के पुत्र को छिपाकर नहीं रखा जा सकता। वह तो प्रकट हो जाता है। आपको जगत् भर के लोग वंदन करने आते हैं। वे सभी जन यह जानते हैं कि आपकी कृपा से मनुष्यों को दुःखों के द्वन्द्व सहन नहीं करने पड़ने हैं।

**भैद दुरै सौ बात बतावहु। कछप विधि मोकौ सिषरावहु।**

**अर्थ**—मेरे राजकुमार होने का भेद छिपा रह सके, ऐसी इन्द्रिय संयम वाली जो 'कच्छप–विधि' है (वह सहज रूप से अभ्यास के द्वारा किसी युक्ति से मुझे सिद्ध हो सके) वह मुझे सिखा दीजिये।

**दोहा–38 :**

**तंत्र मंत्र औ कछप विधि, कंवरहि दयो सिषाइ।**
**हरष हुलास आनंद चित, फूल्यौ आंग न माइ।।**

**अर्थ**—जब सन्यासी ने आवश्यक 'तंत्र–मंत्र और कच्छप–विधि' कुंवर को सिखा दी। तब वह हर्ष से आनन्दित हो गया। उसके अंग हर्ष से फूले नहीं समाते थे।

**चौपई–40 :**

**केतिक दिन पाछै सन्यासी। भले काल नगरी के बासी।**
**तबहि कुंवर और पंडित दोऊं। पैठे नगर जु सोइ सुहोऊ।।**

**अर्थ**—बहुत दिनों तक कुंवर ने सन्यासी से जप–तप–संयमपूर्वक 'कच्छप–विधि' का अभ्यास करते–करते कौशल प्राप्त कर लिया। तभी उन सन्यासीजी का स्वर्गवास हो गया। तब वह पण्डित और राजकुमार दोनों सिन्धु नगर में गये।

बांभन अपने घरि लै गयौ। जीवन बिधि बिधि कीनौ नयौ।

रैन भये दोऊ भये संगा। कछप मंत्र साधिकै विधि अंगा।।

**अर्थ**—वह ब्राह्मण राजकुमार परमरूप को अपने घर ले गया। उन दोनों ने अपनी जीवनचर्या नवीन एवं विशेष प्रकार की बना ली। किसी दिन एक समय रात्रि में राजकुमार और ब्राह्मण दोनों ने साथ–साथ 'कच्छप विधि' से अपने अंगों को नियन्त्रित कर लिया।

चले जाहि बहु लोगन माही। काहू की डिढ आंवहि नाही।

**अर्थ**—अब, वे ऐसे ढंग से लोगों के बीच में जाकर व्यवहार करते थे कि उनके असली रूप का पता लोगों को नहीं चल पाता था।

**दोहा–39 :**

संगी दोऊ रंग मैं, अंग ही अंग ऊमंग।

बरषा बरषी हरिष की, चित मै चौप तरंग।।

**अर्थ**—वे दोनों साथी योगी थे। उन दोनों के सम्पूर्ण अंगों में एक समान उमङ्ग भर गई थी। उनके हृदय में हर्ष था। उसकी वर्षा से उनके अङ्ग–प्रत्यङ्ग सरस हो गये थे। उनके चित्त में उत्साह की लहरें उच्चलित हो रही थीं।

**चौपई–41 :**

चढ़े जाइ दोऊ धौराहर। ठाढे करे कुंवर तब बाहर।

बांभन कह्यौ कुंवर है ठाढौ। सोच भयौ कनकावत गाढ़ौ।।

**अर्थ**—वे दोनों ऊँचाई पर स्थित कनकावती के धवलगृह पर चढ़ कर पहुँच गये। राजकुमार तो द्वार पर ही ठहरे रहे। ब्राह्मण कनकावती के पास जा पहुँचा। ब्राह्मण ने कनकावती से कहा– ''राजकुमार परमरूप बाहर द्वार पर खड़ा है।'' यह सुनकर कनकावती को अपार आश्चर्य हुआ।

ठांव ठांव मनुषन की मूरत। तुम कैसे के आयै धूरत।

आवन की बिधि सबै जनाइ। कछप मंत्र की सकति जनाई।।

**अर्थ**—राजकुमारी की समझ में नहीं आ रहा था कि जब स्थान–स्थान, चप्पे–चप्पे पर गुप्तचरों एवं सकर्तता सैनिकों द्वारा यह निरीक्षण किया जाता रहा है कि कोई भी अजनबी व्यक्ति

धवलगृह के मुख्यद्वार तक प्रवेश प्राप्त नहीं कर सके, तब भी ये दोनों जने, उन सबकी आँखों में धूल झोंक कर यहाँ मेरे पास तक आने में किस तरह से सफल हो गये हैं। ब्राह्मण ने अपने बिना रोक–टोक के यहाँ तक पहुँचने का वृतान्त राजकुमारी को स्पष्ट कर दिया। उसने ग्रहण की हुई 'कच्छप–विधि' के मंत्र की शक्ति का प्रभाव समझाया।

**सुनि पांडे, हौं, निरम(ल) गंग। बिन बिवाहि क्यौ बेठ्यौ संग।**

**अर्थ**–राजकुमारी कनकावती ने ब्राह्मण से कहा कि ''मैं गंङ्गा के समान निरमल हूँ। गङ्गा तपस्या के परिणामस्वरूप कुल के पूर्वजों का उद्धार करने की नीयत से, अवतरित हुई थी और गंङ्गा का स्नान भी बड़ी मर्यादाओं का पालन करने के पश्चात् ही करना सार्थक होता है। गङ्गा विषयक सोच के साथ मैं जीवन धारण करूंगी और सांस्कृतिक मर्यादाओं के निर्वाह के साथ ही विवाह करूँगी। उसी के पश्चात् कुँवर के साथ संयोग फलित करना चाहूँगी।''

**दोहा–40 :**

**बिन ब्याहै ढिंगु बैठि हु, जौ कहा कहूँ करतार।**
**कुल निकलंक कलंक ह्वै, गुरु को लागै गार।**

**अर्थ**–राजकुमारी ने स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया–बिना विधि–विधान का पालन किये, मात्र नफ्स के वशीभूत होकर केवल क्षुद्र कामनाओं की पूर्ति वाले सुख की प्राप्ति हेतु उतावली होकर यदि मैं अपने प्रियतम से मिलन करूँगी तो निश्रेयस की अवाप्ति में सहायक विधाता को कैसे अनुकूल कर पाऊँगी। मेरे तपस्यापूत कुल को कलङ्क लग जायेगा। भविष्य में मेरे कुल के लोगों पर कोई यह विश्वास नहीं करेगा कि इस कुल के लोगों को शिष्ट मानवीय जीवन के मूल्यवान् आचरणों को कष्ट कहकर भी पालन करने का अभ्यास कराया जाता है। मेरे माता–पिता व पूर्वजों की शिक्षाओं को उनके आचरण एवं उनकी सुकीर्ति को गालियाँ एवं धिक्कार–वचन सदैव सुनने को मिलते रहेंगे।

**चौपई–42 :**

**दी, पग–बीचि, बिप्र धरियौ। आनि अंचर जोरे अपने पान।**
**फेरे दये महामन चाव। पढ़ै बेद पूरन अनराव॥**

**अर्थ**–ऐतत्पश्चात्, विप्र ने राजकुमार का धवलगृह में प्रवेश करवा कर उसका विवाह कनंकावती के साथ विधि–विधान के साथ इस प्रकार सम्पन्न कराया–कनकावती और राजकुमार दोनों के

बीच अब जीवन संगी बनने के साथ ही एक पग भी जीवन पथ पर चलेंगे तो वे विहित मर्यादा का पालन करेंगे, इस सम्बन्ध में दोनों से बचन–विश्वास उद्घोषित करवाये। अपने हाथ से दोनों के वस्त्रों के छोर (कोर) बंधन में मंत्र–विधानपूर्वक जोड़ दिये। उन दोनों ने बड़े उत्साह से अग्नि के फेरे साथ–साथ पूरे किये। उस ब्राह्मण ने सस्वर विधिपूर्वक वेद का पाठ पढ़ा।

**तिहुवनि कै मन महा ऊमाह। रीति भांति सब कीनी ब्याह।**
**वै दोऊं है बैठे संग। पंडित घर को चल्यौ ऊमंग।।**

**अर्थ–**इन तीनों के मन में महाउत्साह (महोत्सव) था। इन्होंने विहित अनुशासन का पालन करते हुए माङ्गलिक विधि सहित विवाह कर्म का अनुष्ठान सम्पन्न कर लिया। वे दोनों तो एक–दूसरे के होकर वहीं बिराज गये। पण्डित तब अपना कार्य पूरा करके पूर्ण उत्साह के साथ, सिन्धुपुरी में ही जहाँ उसका घर था, वहाँ चला गया।

**दरस मयंक बने परजंक। भरि है अंक हुलास निसंक।**

**अर्थ–**राजकुमार परमरूप और राजकुमारी कनकावती ने एक दूसरे को अत्यन्त चाह से देखकर उत्साह से परस्पर आलिङ्गन में बाँधकर पलंग पर आश्रय लिया। अब वे निःशङ्क भाव से आनन्द में भरे हुये एक दूसरे को आलिङ्गन में बांधते रहेंगे (ऐसा अधिकार भी उन्हें मिल गया है)।

**दोहा–41 :**

**कीला काम कलोल कल, अति आनंदन होइ।**
**तन मन मिलि येकै भये, रहे कहन कौं दोइ।।**

**अर्थ–**राजकुमार और कनकावती ने काम कल्लोल अति आनन्द के साथ कीं। दोनों के तन और मन मिलकर एक हो गये। उन दोनों ने ऐसा समात्मभाव प्राप्त कर लिया कि वे कहने भर को दो रह गये थे।

**चौपई–43 :**

**अधर–अधर, उर सौं उर लाये। बहुत दिनन की तपति सिराये।**
**दुःख अनंत जो पाछै पायौ। परस न तनक सभै बिसरायौ।।**

**अर्थ–**दोनों जनें अधर से अधर और हृदय से हृदय को मिलाते थे। उन्होंने बहुत दिनों की, पूर्व की वियोगजन्य तप्तता को शान्त किया। पूर्वकाल में उन्होंने जो अनन्त वियोग कृत संताप प्राप्त किया था, उसको परस्पर स्पर्श के द्वारा सम्पूर्ण रूप से भुला दिया।

चातिक स्वाति लहैं अति फूले। पाछे को बकिबौ सभ भूलै।
भोर भये चक्कइपति पावै। निस की बिथा सभै बिसरावे॥

**अर्थ**–चातक पक्षी जब स्वाति–नक्षत्र की बूंद का पान करके संतुष्ट हो जाता है तब वह वियोगावस्था में किये गये विलाप को भूल जाता है। सबेरा होने पर चकवी जब अपने प्रिय चकवाक को प्राप्त कर आनन्द में डूब जाती है तब बिगत निशा के समस्त संताप का स्मरण करने में एक पल भी प्राप्त सौभाग्य के कण का नाश नहीं करती है।

यौं पियतें उपजत सुख नारि, स्वात लहैं कदली घनसारि।

**अर्थ**–सच्चे प्रियतम से साध्वी स्त्री ऐसा वास्तविक स्थाई सुख प्राप्त करती है, जैसा कि 'कदली' प्रियतम बूँद को प्राप्त करके परिणाम में कपूर के रूप में शुभ परिणाम प्राप्त करती है।

**दोहा–42 :**

परस दरस ससि सरिस पति, चषि चकोर भई सांत।
धन कमोदनी जान कहि, फूली आंग न मांत॥

**अर्थ**–अपने पति राजकुमार का शशि के सदृश दर्शन और स्पर्श प्राप्त करके कनकावती रूपी चकोरी के चक्षुओं को अपार शान्ति मिली। जान कवि कहते हैं कि कनकावती उसी भांति आनन्दित हुई जिस प्रकार कमोदिनी चन्द्रमा के दर्शन एवं किरणों के स्पर्श से प्रसन्न होकर विकसित होती है। कनकावती प्रसन्नता से ऐसी विकसित हुई कि फूले नहीं समा रही थी।

**चौपई–44 :**

केतक दिन तौ बीतें येहूं। भेद मिलन न ऊघर्‌यौ केहूं।
येक रेन यहु तिहुंवनि ठानी। भरथ नगर की मनसां आंनी॥

**अर्थ**–इसी मिलन की सुखप्रदायिनी अवस्था में उन दोनों के अनेक दिन सहज ही व्यतीत हो गये। इन दोनों के मिलन का भेद किसी को भी पता नहीं चला। एक दिन ब्राह्मण, राजकुमार और कनकावती ने विचार कर भरथ नगर को पहुंचने का निश्चय कर लिया।

देव देवता अपने साधे। मंत्र–जंत्र नीकैं आराधे।
उतर चलै धौराहर छाड़ि। काहू देखि न दीनी आड़ि॥

**अर्थ**–प्रस्थान से पूर्व अपनी यात्रा की निर्विघ्न समाप्ति के लिये भली–भांति देवी–देवताओं का आराधन किया और मंत्र तंत्र की साधना पूरी की।

**चलत चलत सलिता ढिग आये। करिकैं पार नग्र कौं धाये।**

**अर्थ**–तत्पश्चात् वे तीनों धवलगृह को छोड़कर इस विधि से प्रस्थान कर गये कि किसी ने भी उनको नहीं देखा। चलते–चलते तीनों ही सिन्धुनगर के चारों और बह रही सरिता के किनारे जा पहुंचे। ऐतत्पश्चात् उसको पार करके भरथनगर की ओर तीव्र गति से चल पड़े।

**दोहा–43 :**

**पार किये तें प्रान मैं, उपज्यौ चैन अपार।**
**बिरहा दयौ बहाइ कैं, आनंद न कर धार॥**

**अर्थ**–सिन्धुनगर के चारों ओर बह रही सरिता को जब उन तीनों ने पार कर लिया तब उनके मन में अपार चैन भर गया था। आनन्द की धाराओं के प्रवाह में इन्होंने विरहकाल में प्राप्त हुए दुःख के स्मरण को बहाकर दूर कर दिया।

**चौपई–45 :**

**नगर पैठि बांभन गयौ(ठायौ) साहर। ये अपने दोऊ धौराहर।**
**जाइ तात माता पग परसे। नीरस दरसन दोऊ तरसे॥**

**अर्थ**–अब चलकर चब वे भरथनगर तक पहुँच गये और उन्होंने नगर के द्वार के अन्दर प्रवेश कर लिया। इसके पश्चात् ब्राह्मण तो अपने श्वसुर के घर में चला गया। दोनों (राजकुमार और कनकावती) धवलगृह में पहुँचे। इन्होंने (राजा) पिता और माता (रानी) के चरणों को छुआ। इनके दर्शन के बिना वे दोनों नीरस जीवन धारण कर रहे थे।

**परमरूप कौ परसे दरसन। नीरस पल पल लागे सरसन।**
**हरष हुलास ऊमाह नगर में। दमका बरसैं डगर डगर में॥**

**अर्थ**–राजकुमार का दर्शन एवं स्पर्श प्राप्त करके वे पूर्व में नीरसता से सूखे माता–पिता पल–पल आनन्द प्राप्त करने लगे। सम्पूर्ण नगर में हर्ष और उत्साह भर गया। गली–गली एवं राजमार्गों आदि में रूपयों आदि का दान होने लगा। राजा ने कोष से रुपये निकाल कर लुटाये।

**गावहिं गांइन महाबिराजैं। पंच सबद हूँ बाजैं छाजैं।**

**अर्थ**–गायन करने वालों की धूम से अपूर्व शोभा हुई। पंचशब्द, कीर्तन आदि से महोत्सव की शोभा सज रही थी।

दोहा–44 :

सुख ही मैं दिनकर ऊगै, सुख ही मैं छिपि जाइ।
ये सुखिया सुख ही रहै, दुःख षिन सुरति न आइ॥

अर्थ–अब तो भरथनगर के धवलगृह में सूर्य, सुख की अनुभूति वाला ही उदित और अस्त होता था। मिलन–संयोग के कारण सुख ही सुख था, पूर्व के दुःख की स्मृति क्षण भर को भी प्राप्त नहीं होती थी।

चौपई–46 :

राजा सिंध बात सुनि पाई। काहू कनकावती दुराई।
सोर पर्यौ नगरी में भारी। ठांव ठांव सोधहिं नर नारी॥

अर्थ–सिन्धुपुरी में राजा सिन्धुराज ने यह बात सुनी कि किसी ने कनकावती को गायब कर दिया है। सम्पूर्ण नगरी में इस बात की चर्चा का शोर हो गया। समस्त नर और नारी कनकावती की खोज में लग गये।

राजा कह्यो 'भरथपुर' जै हों। उतते सुरति भलै यहु पै हौ।
जोगी ह्वै है मानस धाये। भरथनेर तैं सुधि लै आये॥

अर्थ–राजा ने अपने गुप्तचरों को निर्देश दिये कि तुम लोग यदि भरथपुर में जाकर खोज करोगे तो कनकावती का पता भली–भांति जान सकोगे। राजा सिन्धुराज की गुप्तचर सेना के लोग जोगी का वेष धारण कर तीव्रगति से भरथनेर में पहुँचकर कनकावती के विषय में जानकारियाँ एकत्रित करने में निरत हो गये।

कुंवर भांति जिहिं लैकैर गयौ। सभ राजा कौ ब्यौरौ दयौ।

अर्थ–उन्होंने राजकुमार और राजकुमारी कनकावती के सम्पूर्ण वृत्तान्त की जानकारी ले जाकर राजा सिन्धुराज को इस प्रकार बताई।

दोहा–45 :

'कच्छप–विधि' कर कुंवर कैं, तातें छप्यौ छपाव।
करि हैं काम–कलोल सुष, सरस्यौ गुरु–पसाव॥

**अर्थ**—राजकुमार परमरूप ने 'कच्छप–विधि' का आश्रय लेकर चुपके से सिन्धुपुरी के धवलगृह में प्रवेश प्राप्त कर लिया और इस विधि से वह कनकावती को यहाँ से उड़ा कर ले जाने में सफल हो गया था। गुरू से 'कच्छप–विधि' सीखकर उसके प्रसार के परिणामस्वरूप राजकुमार और कनकावती आज भरथनगर में काम–केलि कर रह हैं।

**चौपई–47 :**

**राजा चढि जगपति ढिंग आयौ। जाइ सीस पाइन कौं नायौ।**

**सांची बात जु होइ बिहानी। जगपति सौं सभ कही कहानी।।**

**अर्थ**—राजा सिन्धुराज घोड़े पर सवार होकर राजा जगपति के पास पहुँचा और उसके चरणों में अपना शीर्ष झुका कर प्रणाम किया। उसने वह सब घटित वृत्तान्त सचाई के साथ जगपति महाराज को बताया।

**जगपति भरम्यौ मानत साधन। करि विवाह आयौ मन राषन।**

**राजा जगपति सिंध सौ टूट्यौ। मानस भेज नगर उहि लूट्यौ।।**

**अर्थ**—जगपति ने उसके कथन को प्रामाणिक नहीं माना। वह भ्रमित रहा। महाराज जगपति–सिन्धुराजा से कुपित हो गया। उसने सैन्य–दल भेजकर सिन्धुपुरी को लूट लिया।

**सिंध राह तौ संकट दीनौ। भरथनेर हूँ कौ मन कीनौ।**

**अर्थ**—महाराजाधिराज जगपति ने सिन्धुराज को तो अपार संकट दिया ही, साथ में उसने भरथ नगर पर आक्रमण कर देने का मानस बना लिया।

**दोहा–46 :**

**पलका पर पग ना धरौं, यहै कर्‌यौ चित नेम।**

**भरथनैर मारौं नहि, जौ कनकावत पेम।।**

**अर्थ**—जगपति ने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि यदि मुझे कनकावती से प्रेम है तो अब मैं जब तक भरथनेर का विनाश नहीं कर दूंगा, तब तक राजसी पलंग पर सुख से विश्राम नहीं करूंगा।

**चौपई–48 .**

**देस देस के राजा टेरे। आये सभै दूर औ नेरे।**

**बड़े–बड़े राजा भये कोर। पल मैं राषैं अरिहिं मरोर।।**

**अर्थ**—महाराजाधिराज जगपति ने भरथनेर पर आक्रमण करने के लिये दूर और समीप के सभी राजाओं को बुलावा भेज दिया। बड़े–बड़े राजा, उसकी आज्ञा पाकर वहाँ पहुँच गये। अब इतनी सशक्त सेना इकट्ठी हो गई कि ये सब पल–भर में बड़े से बड़े शत्रुराजा को पराजित करने में सक्षम थे।

**औ बलवंत बड़े–बड़े जोधा। गढ़हि ऊषारहि आयें क्रोधा।**

**दे नीसान चढ्यौ छत्रपति। है दल, गैदल, पैदल अति॥**

**अर्थ**—इनके पास बलशाली ऐसे बड़े–बड़े योद्धा थे जो क्रोध करके धावा करें तो किले को उखाड़ कर फेंक दें। हमला करने की घोषणा, निसान (नगाड़े पर) प्रहार करके प्रसारित कर दी, उसके पश्चात् छत्रपति जगपति भरथनगर पर आक्रमण करने चल पड़ा। उसकी सेना में अति की संख्या में अश्व, हाथी और पैदल सेना थी।

**मग मैं नगर जु आइ लगानौ। आइ मिलै कै पर्‌यौ भगानौ।**

**अर्थ**—सेना के मार्ग में जो भी नगर आया वहाँ का राजा या तो सेना सहित अधीनस्थ बन कर साथ हो गया अथवा प्राण बचाकर पलायन कर गया।

**दोहा–47 :**

**दुंदभ भादौं घघन घन, घोर घोर घरराय।**

**जिहि अरि कैं सिरि बाजि है, सौ तिन ज्यौं बहि जाय॥**

**अर्थ**—इस सेना के नगाड़े भाद्र मास के घनों के समान घोर रव (ध्वनि) के साथ गम्भीर नाद कर रहे थे। जिस अरि राजा के ऊपर ये युद्ध के बादल जा बरसेंगे वह राजा तिनके के सदृश बह जायेगा; ऐसा अनुमान लगाना सहज था।

**चौपई–49 :**

**कुंजर कारे कारे भारे। झरना जेम झरैं मतवारे।**

**घोर पवन गवनतें आगर। जातवंत औ रूप उजागर॥**

**अर्थ**—राजा जगपति की सेना में अपार ऐसे हाथी थे जो कि घोर पवन की गति से भी तीव्र गमन कर रहे थे एवम् अति बलशाली थे। उनका आकार प्रकार बहुत शोभा सम्पन्न था, वे डील–डौल में भारी, काले वर्ण के एवम् मदमस्त थे जिनके गण्डस्थलों से मद झरने के समान झर रहा था।

**रज–बादर मैसूर छपायौ। धंसिंक चली धर चित्त धरकायौ।**

**निस–दिन भेद न पावै कोऊ। कोला सेस कसमसे दोऊ।।**

**अर्थ**–ऐसी विशाल सेना के चलने और पृथ्वी की रज उड़ने से आकाश में बादल छा गये, जिनमें सूर्य (का प्रकाश) छिप गया। भारी सेना के वजन के दबाव से धरती धंसक उठती थी; सबके चित्त (धड़क उठते थे) घबराते थे। सूर्य का प्रकाश रज के सर्वत्र व्याप्त हो जाने से समाप्त हो गया और दिन है अथवा रात है इसका निर्धारण कठिन हो गया। पृथ्वी पर विशाल सेना के भार के बढ़ जाने से पृथ्वी को धारण करने वाले शेषनाग एवं वराह भगवान् भी कष्ट से कसमसाने लगे थे।

**हांक–धाक धक–धक अति छतियां। ना दिन चैन नींद नहीं रतियां।**

अर्थ–सेना के शूरवीरों की हांक और उनकी धाक से सभी शत्रुओं की छाती में डर के कारण तीव्र गति से श्वास चलने से हृदय में धड़कन अति तीव्र हो गई थी। उनकों न तो दिन में ही चैन मिल पाता था और न रात को ही चैन प्राप्त होता था।

**दोहा–48 :**

**इंद लोक सु रहूं डरे, भू लोक मैं रौर।**

**नाग लोक हूं थर हर्‌यौ, करी कोन पर दौर।।**

**अर्थ**–इस विशाल सैन्य–समूह को देखकर इन्द्रलोक में सुख भोग रहे देवता भी डर गये। पृथ्वी लोक और आकाश (अन्तरिक्ष–चन्द्रलोक आदि) में भी भयावह कोलाहल व्याप्त हो गया। नागलोक भी थरथरा उठा। सभी चिन्तित थे कि न जाने कब किस पर आक्रमण होगा।

**चौपई–50 :**

**जात जात सलिता नीराने। नाव बैठिकैं पार लगानें।**

**परबल दल ऊतरयो चहूं फेरे। बैठे भरथनगर कों घेरे।।**

**अर्थ**–चलते–चलते यह सेना जब भरथनगर के समीप पहुंची तब उस नगर के पहले ही मार्ग में चारों ओर से एक नदी का घेरा परिव्याप्त मिला। इस सेना के लोगों ने नावों में बैठकर नदी को पार किया। तत्पश्चात् भरथनगर को चारों ओर से घेर कर सैनिकों ने मोर्चाबन्दी पूरी कर ली।

**भरथ राइ जो आँखि उघारी। घेरि लेई है नगरी सारी।**

**भरथ पास पठये प्रधान। जौ इच्छा घट राषत प्रांन।।**

**अर्थ**–उधर प्रातःकाल में जब भरथराज ने आँखे खोली, तब उसे यह पता चला कि भरथ नगर को शत्रु की सेना ने पूरी तरह से घेर लिया है। महाराजाधिराज जगपति ने अपने प्रधान सेनापतियों को राजा भरथ के पास भेजकर कहलाया कि यदि शरीर में प्राणों को धारण करने की इच्छा रखते हो,

**जौ चाहत सोउ सुख सेज। पूत–बधू दोऊ गहि भेज।**

**अर्थ**–और सुखपूर्वक पलंग पर विश्राम करना चाहते हो तो अपने पुत्र और उसकी भार्या को गिरफ्तार करके हमारे पास भेज दो।

**दोहा–49 :**

**पठइ देहुं इन दुहनि कौं, जिन हि रिसावहि मोहि।**

**जो कछु जिय सौं रोस है, दोस न देहूं तोहि।।**

**अर्थ**–राजा का आज्ञापरक संदेश यह था कि इन दोनों (परमरूप और कनकावती) को मेरे पास भेज दो। और अन्यथा प्रकार से विपरीत कार्य करके मुझे कुपित नहीं करे। मेरे हृदय में जो भी गुस्सा है वह इन दोनों के प्राप्त होने से बिल्कुल भी शेष नहीं रहेगा। तत्पश्चात् मैं तुमको दोष मुक्त कर दूँगा।

**चौपई–51 :**

**हौं जगपति जगत सभ जानै। तु सु कहा जौ आंन न मानै।**

**लषमन, ह्वै रावन ज्यौं मारौं। हनवंत ह्वै लंका ज्यौं जारौं।।**

**अर्थ**–राजा जगपति ने धमकी भी भिजवाई–''मैं तो प्रबल महाराजाधिराज जगपति हूँ, जिसको सम्पूर्ण जगत् जानता है, तूं तो मेरे समक्ष ऐसा निर्बल है कि तुझे मेरे आज्ञा बचनों की मर्यादा का पालन करना पड़ जायेगा। तुझे मैं इस प्रकार मार सकूँगा जिस प्रकार रावण ने लक्ष्मण को परास्त कर जमीन पर डलवा दिया था। हनुमान् ने जिस प्रकार लंका को जला दिया था उसी प्रकार मैं तुझे उजाड़ दूँगा।

**कान्ह होइ मधु मुर ज्यौ मारूं। सेस भयें ना थिर छोरूं।**

**मदन भये ह्वै ईस जराऊं। हरि भये अष्टपाद ह्वै धांऊ।।**

अर्थ—कृष्ण ने जिस प्रकार मधु एवं मुर दैत्य को मार डाला था उसी भांति मैं तुझे मार डालूँगा। शेषनाग के समान मैं युद्ध में दृढ़ता का त्याग नहीं करूँगा। कामदेव को जिस प्रकार महादेव ने जला दिया था, उसी भांति तुझे नष्ट कर दूँगा। अगर तूं शरभ बनके आयेगा तो मैं विष्णु के रूप से रक्षा करूँगा।

**बादर भये पवन ह्वै फांरू। पात भये फागन मैं डारूं।**

अर्थ—मैं सूर्य बनकर अग्नि की प्रलयङ्कारी प्रचण्ड ज्वालायें बरसाता हुआ तुझे अत्यधिक सन्तप्त कर डालूँगा। पवन जिस प्रकार बादलों को तितर–बितर करके प्रभावहीन कर देता है उसी भांति मैं भी तुझे उजाड़ दूंगा। जिस प्रकार फाल्गुन का महीना पत्तों को पवन में उड़ा देता है, उसी प्रकार मैं तुझ पर आक्रमण करके तुझे यत्र–तत्र उड़ा दूंगा।

**दोहा–50 :**

**नागलोक मेंहि जो दुरहि, तो षनि काढूं तोहिं।**
**उडे गर द्यौं सुर लोक हूँ, दई दयौ बलु मोहि।।**

अर्थ—तूं पलायन अथवा छिपकर अपना अस्तित्व बचाने की सोच रहा हो तो व्यर्थ है, क्योंकि तूं भागकर यदि नागलोक में भी छिपना चाहेगा तो भी मैं तुझे खोदकर निकाल लेने में सक्षम हूँ। यदि तूं ध्रुव अथवा देवलोक में भी जाकर छिपने की सोच रहा है तो व्यर्थ है। क्योंकि विधाता ने मुझे ऐसी सामर्थ्य दी है कि मैं तुझे वहाँ से पकड़ लाऊँगा।''

**चौपई–52 :**

**भरथ कह्यौ सुन जगपति मूरिष। मेरे चरन अचल ज्यौं धूरिष।**
**तेरे डर पायें ना डरि हौं। पीठ न द्यौं सनमुष ह्वै लरिहों।।**

अर्थ—राजा भरथ ने (अपने प्रधानों के माध्यम से) संदेश भिजवाया कि, ''मूर्ख जगपति! ध्यान से सुनले, मैं भी शक्तिशाली हूँ। मेरे राज्य–बल के चरण भी इतने अचल हैं जितने ध्रुवऋषि अपने आकाश में उत्तर दिशा की स्थिति में अचल रहा करते हैं। तेरे धमकाने से मैं भयभीत नहीं हो सकूँगा। मैं सामना करके युद्ध करूँगा। पीठ दिखाकर पलायन नहीं करूँगा।

**तूं जगपति राइन कौ राज। बडौ भयौ चढ़ि आयौ आज।**
**जौ जीतूं तो अमर कहाऊं। पग न डिगन दूं नहिं ले जाऊँ।।**

**अर्थ**—तूं राजाओं का भी राजा है। तू महाराजाधिराज जगपति कहलाता है। तूं तो यश में बढ़ा-चढ़ा है। आज तूं आक्रमण करने आया है। अपने राज्य की सुरक्षा करते हुये यदि मरता हूँ तो मैं अमर हो जाऊँगा। यदि मैं जीत गया तब तो और भी श्रेष्ठ फल होगा। मैं युद्ध के मार्ग से अपना पग डिगने नहीं दूँगा।

**पूत बंधू कौ बांधि न दैं हो। कहा सोम पंचन मैं पैहौ।**

**अर्थ**—मैं अपने पुत्र और बान्धवों को बांध कर तेरे हवाले नहीं कर सकूँगा। मेरे कुल के पांच पंच मुझे धिक्कार कर जाति से बाहर कर देंगे। वे मुझे अपने साथ पंक्ति में बैठाकर सोम का पान नहीं करेंगे अर्थात् मुझे आदरपूर्वक सोम भरा प्याला पान करने हेतु नहीं देंगे। तात्पर्यार्थ यह है कि जाति से बाहर निकाले जाने पर जीवन धारण करना इस प्रकार से युद्ध में मर जाने से भी ज्यादा बुरा है।

**दोहा-51 :**

**जौ लौ नासिक स्वांस है, जौ लौ घट में प्रान।**
**तौ लौ पूत न धौं बधू, लरहि तो देहुं निसान।।**

**अर्थ**—जब तक मेरी नासिका में श्वासोच्छवास एवम् शरीर में प्राण है तब तक राजी-राजी समझौता करके न तो अपना पुत्र तुझे सौपूंगा और न वधु ही तुझे सौपूंगा। यदि तूं लड़ने के लिये कहे तो मैं तैयार हूँ। तेरी इच्छा का पता चलते ही युद्ध का द्योतक निसान (धौंसा) मैं बजवाने को सहर्ष तैयार हूँ।

**चौपई-53 :**

**दुहूं वोर बाजे नीसान। चलि है नालि बंदूकै बान।**
**वै गढ़ ऊपरि ये गढ़ तरै। महा छछोह कोहं सौ लरे।।**

**अर्थ**—दोनों और की सेनाओं ने निशान बजाकर युद्ध आरम्भ कर दिया। तोपें, बन्दूकें और बाण चलने लगे। राजा भरथ की सेना के सिपाही गढ़ के ऊपर थे। महाराजाधिराज जगपति की सेना गढ़ की तलहटी में मोर्चा-बन्दी करके युद्ध रत थी। दोनों ओर के योद्धा क्षुब्ध थे और क्रुद्ध होकर वेग से लड़ते थे।

**कुहक बान नालिन के गोले। ते अनगन अनबन अनतोले।**
**राइ रिसाइ सुरंग दिवाई। नेक अगनि लागे भभकाई।।**

**अर्थ**–अनगिनत संख्या में अनेक प्रकार की तोलों (बजन) के बाण और गोले चल रहे थे। जगपति राजा ने क्रुध होकर किले में बारूद की सुरंग बिछवा कर तनिक सी अग्नि प्रज्ज्वलित करवा दी थी।

**रूद्र रूप वै महा डरावन। अचल चला वन अडिग डिगावन।**

**अर्थ**–उसी का महाडरावना परिणाम पहाड़ से मजबूत भरथनगर के किले को (डहा) ध्वस्त कर देने वाला साबित हुआ।

**दोहा–52 :**

**आधौ गढ़ तौ उडि गयौ, लागी बली सुरंग।**
**को धरि पटक्यौ को गिर्‌यौ, सलिता गहर तरंग।।**

**अर्थ**–किला विस्फोट से आधा तो टूट कर उड़ ही गया, क्योंकि सशक्त विध्वंसिनी सुरंग लगाई गई थी। उस सुरंग के विस्फोट के कारण भरथनगर की सेना के लोगों में से किले पर से उड़ कर कोई तो जमीन पर आकर गिरा, कोई–कोई वहाँ से उछलकर उड़ता हुआ, बाहरी सीमा पर बह रही नदी (परिरवा) में जाकर गहरी जल–तरङ्गों में गिर पड़ा था।

**चौपई–54 :**

**जगपति भारथ कियौ अपार। जीवत गह्यौ भरथ जुंझार।**
**समधी भये दोऊ इकि ठौरे। संकट परम देइ कै छोरे।।**

**अर्थ**–जगपति ने भारी युद्ध किया। शूर राजा भरथ को जीवित बंदी बना लिया। इस प्रकार पूर्व से ही सिन्धु नगर में बंदी कर लिये गये सिन्धुराज जो साथ में ही बंदी के रूप में वहाँ अवस्थित थे उनके साथ ही राजा भरथ को भी बंदी के रूप में रख लिये जाने पर दोनों ही समधी साथ–साथ हो गये। जब विधाता परम संकट देना चाहता है तब वह यों ही छोड़ता नहीं है अर्थात् संकट देता ही है।

**उड्‌यौ कुंवर सलिता मैं पर्‌यौ। षेवन धाइ बांह ते धर्‌यौ।**
**राजा येक नाव जगराई। लैकैं गये ताहि पैं ताई।।**

**अर्थ**–कुंवर भी बारूद की सुरंग की चपेट से उड़कर नदी की तरङ्गों में जाकर गिरा। मल्लाहों ने दौड़कर शीघ्र ही उसे अपनी बांहों में लेकर सुरक्षित निकाल दिया। मल्लाहों ने विचार कर लिया

कि इसको लेकर आक्रमणकारियों में से विद्यमान समीपस्थ एक राजा जगराइ के पास जायें। यही सोचकर वे मल्लाह उस राजकुमार परमरूप को लेकर राजा जगराइ के पास पहुँच गये।

**देषत ही जगराइ बिमोह्यौ। छत्रपाट मेरौ यहु सोह्यौ।**

**अर्थ**–उस राजकुंवर को देखते ही राजा जगराइ उस पर मुग्ध हो गया। उसके कोई भी पुत्र नहीं था। उसे लेकर उसने विचार कर लिया कि अब इसको पुत्र के रूप में प्राप्त करके मेरे राजपाट की शोभ स्थिर रह सकेगी।

**दोहा–53 :**

**षेवन को आनंद ह्वैं, ऐसौ करयौ पसाव।**
**बहुरिजाय जल पैसिकै, हांकी नाहिन नाव।।**

**अर्थ**–राजा जगराइ ने उन मल्लाहों को इतना धन दे दिया कि उन्हें नाव चला कर धन कमाने की आवश्यकता नहीं रही।

**चौपई–55 :**

**लै कै अपने पास बिठायौ। बिधना दयौ पूति मै पायौ।**
**पूत काज बहु जग तप कीने। परम ईस करि किरपा दीने।।**

**अर्थ**–राजा जगराइ ने राजकुमार को अपने पास बैठा लिया और कहा कि विधाता ने मुझे यह पूत दिया है तभी तो तूं मुझे प्राप्त हुआ है। पुत्र की प्राप्ति के लिये मैंने बहुत से नये–नये तप अनुष्ठान किये हैं। परमेश्वर ने यह पुत्र मुझे कृपा करके प्रदान किया है।

**मंगल गांवन गुनी बुलायै। औ फुनि पांचो सबद बजाये।**
**दान पुन्य कीनौ अन लैषै। भिक्षुक कियै राइ कैं भैषै।।**

**अर्थ**–उसने मंगलगान करने के लिये गुणी गवैयों को बुलाया और पाँचों शब्द कीर्तन करवाये। अगणित दान–पुण्य किये तथा भिक्षुकों को अत्यधिक दान देकर राजा बना दिया।

**नाचत राजत नटुवा पातुर। आतुर होत देषि चित चातुर।**

**अर्थ**–नर्तकियां एवं नट नर्तन करके महोत्सव की शोभा बढ़ा रहे थे। चतुर विवेकी का मन भी सुन्दर महोत्सव के रंग में रंग जाता था।

**दोहा–54 :**

**हरिषा की बरिषा भई, षिले कंज नर नारि।**

**जेम जवासौ सूकि है, परम रूप दुःष धार।।**

**अर्थ–**पुत्र महोत्सव के समय आनन्द की ऐसी प्रबल वर्षा हुई कि नर–नारी रूपी कंज खिल उठे। किन्तु परमरूप अपार दुःख की धाराओं में बह रहा था और दुःख से इस प्रकार कृशकाय हो रहा था जिस प्रकार वर्षा के दिनों में जँवासा सूख जाता है।

**चौपई–56 :**

**कनकावत हूँ सलिता परी। इन्द्रपुरी तें अछिर ठरी।**

**बूड़क लई नदी कै मांहि। धाइ मलाहन पकरी बांहि।।**

**अर्थ–**विस्फोट से किले का आधा भाग जब उड़ा तब कनकावती भी हवा में उछलकर नदी (परिखा) के जल में गिरी जैसे इन्द्रपुरी से पतित कोई अप्सरा हो। उसके नदी के जल की वीचियों में डूबने के समय मल्लाहों ने तीव्र गति से उसके पास जाकर उसकी बाँह पकड़ ली।

**जलतें काढि करी जौ ठाढी। बड़वा अनिल आँच मानौ काढ़ी।**

**जगपति ढिंग याकौ लै जांहि। बहुरि देत जौ दरसै जांहि।।**

**अर्थ–**जब उसे जल से बाहर निकाल कर खड़ा किया तब वह अपने दमकते रूप के कारण ऐसी लग रही थी मानों जल में रहने वाली 'वडवानल' आग हो। वे मल्लाह इस प्रकार बातचीत करने लगे कि, ''हम लोग इसको लेकर महाराजाधिराज जगपति के पास जायेंगे। वह इस सुन्दरी को देखकर प्रचुर धन देंगे।''

**लै जगपति पै गौनै षेबी। मन मैं जाहिं मनावत देवी।**

**अर्थ–**वे मल्लाह कनकावती को लेकर जगपति राजा के पास जा रहे थे और मन में देवी से प्रार्थना करते जा रहे थे।

**दोहा–55 :**

**है देवी! है देवता, षेम कुसर पुंहचाइब।**

**ज्यौ किरपाल दयाल है, जगपति करै पसाव।।**

**अर्थ**—हे देवी! हे देवता! हमें कुशल क्षेम के साथ महाराज जगपति के पास पहुंचा दीजिए। यदि परम कृपालु परमेश्वर ने हमारी प्रार्थना सुन ली तो जगपति महाराज हमें प्रचुर धन देकर फलने–फूलने के अवसर प्रदान कर देंगे।

**चौपई–57 :**

**राजा कै आगै लै राषी। जल निकसी रंभा कहि भाषी।**

**ये क्वै दंदन रह्यौ मलाह। घर आयौ चित महा ऊमाह।।**

**अर्थ**—मल्लाहों ने पहुंचकर कनकावती को राजा जगपति के सामने खड़ा कर दिया। उन्होंने कहा कि यह जल से निकली हुई रंभा है। राजा जगपति ने मल्लाहों को प्रचुर धन देकर विदा कर दिया। वह राजा जगपति उसको लेकर जब अपने घर आया तब उसके मन में महान् उत्साह था।

**जगपति के घर मांहि बिभूत। चिंता यहै न धीय न पूत।**

**और न मन मैं कियौ बिचार। कह्यौ सुता दीनी करतार।।**

**अर्थ**—जगपति के घर में तो वह विभूति के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। राजा तो पहले के समय में इस बात से बड़ा चिंतित रहता था कि उसके न तो कोई पुत्री है और न ही कोई पुत्र है। कनकावती को इस तरह प्राप्त करके राजा जगपति ने कोई कुत्सित विचार मन में नहीं रखा। उसने यही कहा कि परमेश्वर ने मुझे यह पुत्री प्रदान की है।

**करि पुत्री कर राष्यौ सीस। हित चित उपजे बिसवा बीस।**

**अर्थ**—जगरूप ने कनकावती को 'पुत्री' मान कर सर्वोच्च स्थान का सम्मान देना अङ्गीकार कर लिया। उसके चित्त में अति कल्याणकारी भाव जागृत हो चुके थे।

**दोहा–56 :**

**कनकरूप कनकावती, मन ही मन दुःष होइ।**

**दुरि दुरि आंसू ठारि है, घर कौ लषे न कोइ।।**

**अर्थ**—कञ्चन सदृश दमकते रूप वाली कनकावती फिर भी मन ही मन दुःखी हो रही थी। वह छुप–छुप कर आँसू टपकाती रहती थी। उसे यहाँ अपने घर का कोई मनुष्य दिखाई नहीं पड़ रहा था।

**चौपई–58 :**

**नीके बसन आनि पहरांवहि। करकस रिप ह्वै तनहि जरावहिं।**

**सीतर होत न तपति अपार। अगिन झरफ चंदन घन सार।।**

**अर्थ**–राजा जगपति ने कनकावती पुत्री के लिये अति उत्तम व्यवस्थाएं कर दी थी। उसके परिचारक कनकवती को उत्तम–उत्तम वस्त्र लाकर पहनाते थे, परन्तु उसे वे उत्तम वस्त्र कर्कश शत्रु लगते थे। वे उसके मन को दाह देते थे, उसके हृदय में विद्यमान संताप कदापि कम नहीं होता था। चन्दन और कर्पूर भी उसे अग्नि के समान दाहक लगते थे।

**ना निस नींद न दिन सुख माने। दुख मैं द्वादस मास बिहाने।।**

**अर्थ**–उसको न तो रात में नींद आती थी, न दिन में नींद आती थी। पूरा एक वर्ष उसे इसी प्रकार से दुःख सहन करते–करते बीत गया।

**दोहा–57 :**

**अनगन आगै राषी हैं, मीठे औ रसलौन।**

**जोजन पर जियरा फिरै, भोजन अंचवत कौन।।**

**अर्थ**–मीठे एवं नमकीन सरस भोजन जो अगणित प्रकार से पकाये जाने पर सुस्वादिष्ट होते थे किन्तु कनकावती उन्हें खाना पसन्द नहीं करती थी। उसका चित्त तो एक योजन दूर अर्थात् आठ सौ मील दूर भरथपुर में संतप्त रहता था।

**चौपई–59 :**

**मास असाढ गाढ करि आयौ। लालन बिना बाढ दुख पायौ।**

**नौतन जलधरि दरस दिषायौ। मीत पुरातन नाहिन आयौ।।**

**अर्थ**–आषाढ़ का महीना आया और उसने अपना वेग दिखाया। तब राजकुमार परमरूप के मिलन के बिना कनकावती को प्रगाढ दुःख मिलने लगा। नूतन जलधर ने तो दर्शन दिये किन्तु कनकावती का पुरातन प्रियतम नहीं मिला।

**दंपति बढी दंपति बिन तनकै। सुनि डरपति चित्त घन घहरन कैं।**

**परमरूप बिन परम अचैनी। परम बिरह व्यापहि म्रिगनैनी।।**

अर्थ—विवाहित दंपति—युगल को अपने साथी के बिना बिरह दुःख अधिक विस्तार से मिलने लगा। घन की घहरन को सुनकर वियोगसंतप्त कनकावती का चित्त डरता था। राजकुमार परमरूप के वियोग के कारण वह मृगनयनी अत्यधिक दुःखी रहती थी।

**परम चटपटी चिंता प(र)म। काहू स्यौ नहिं भाषत मरम।।**

अर्थ—उसके मन में तीव्रतर चिन्ता संयोग की निरन्तर बनी रहती थी। किन्तु वह अपने कष्ट के विषय में किसी को भी कुछ भी नहीं बताती थी।

**सोरठा—2 :**

**जब लगि मिलहि न पीय, तब लग नैना ना मिलै।**
**मिलत न काहू जीय, मिल्यौ बिरह अंग अंग मैं।।**

अर्थ—कनकावती के हृदय में चैन नहीं था। वह मात्र अपने मीत के दर्शन चाहती थी। और जब तक, राजकुमार परमरूप आकर मिले नहीं तब तक नयनों को दर्शन मिल नहीं सकते थे। इस वियोग की अवस्था में उसका अंग—अंग क्षीण हो गया था।

**चौपई—60 :**

**सावन मन भावन बिन आवन। डर पावै तावन मुरझावन।**
**बरन बरन ह्वै आयौ बादर। षादर भरिहै ररिहै दादुर।।**

अर्थ—सावन का महीना आया किन्तु तब भी मनभावन राजकुमार परमरूप के प्राप्त नहीं होने के कारण वह विरहिणी डरती थी, उसकी ऊर्जा सुप्त होकर मुरझा गई थी। बादल अनेक रङ्गों के होकर आया करते थे। गड्ढ़ों—पोखरों के जल में मेंढ़कों का निवास रहने लगा था।

**पिक पापुन पावक पर जारै। पीव पीव चातिग ध्यौ डारै।**
**मेरौ मरम मोर कहा जानै। सौर करे हि प्रानहि अकुलानै।**

अर्थ—कनकावती की विरहावस्था में पिक अपनी ध्वनि विशेष से सुलगती हुई पीड़ा को और भी तीव्रता से ज्वलित करने लगी और चातक अपनी बोली से विरह की अग्नि में घी डालने का कार्य करने लगा अर्थात् उद्दीपन का कार्य करने लगा। कनकावती सोचने लगती थी कि ''मयूर अपनी ध्वनि का शोर करते हैं—वे यह नहीं जानते कि उनके इस प्रकार के शोर से मुझ विरहिणी के प्राणों में कितनी व्याकुलता व्याप्त हो जाती है।''

मेघ मलार अलापहि पंषी। नित बरषै जलधर मो अंषी।

**अर्थ**–मेघों को देख–देखकर विविध प्रकार के पक्षी अपनी अपनी बोलियों में मल्हार राग गा रहे हैं। मेरी आँखें विरह–पीड़ा के कारण जल–धारायें बहा रही हैं।

**दोहा–58 :**

सावन घन बिहुरन लषे, बरज्यो बाद हुलास।
दोइ मास ही में थक्यौ, नैना द्वादस मास॥

**अर्थ**–अब सावन के घन भी पलायन करने को हैं और उन्होंने बरसने का उत्साह त्याग दिया है। मेरे नयनों के बरसने में द्वादश मासों में भी कमी नहीं आई है, किन्तु सावन घन तो बस दो मास बरस कर ही शिथिल हो गये हैं।

**चौपई–61 :**

भादौ काठौ रैन अंध्यारी। पग लपटै–रपटै नर नारी।
बहुरि उठैहूं ना ऊठि सकिहूँ। परी बिरह का दौं मग तकिहूँ॥

**अर्थ**–भादों की समयावधि भी ऐसी है कि जिसमें प्रेमीयुगल नर–नारी अंधकार में आवेग से मिलन करते हैं। मैं तो इतनी क्षीण हो गई हूँ कि मुझमें उठकर खड़े होने लायक भी शक्ति नहीं रह गई है। मैं गहन विरह के अंधकार में घिरी हूँ और निरन्तर प्रियतम के आने की प्रतीक्षा में रत हूँ।

मैन सैन सजि मारन आयौ। दुंदभ घन घहरान बजायौ।
चातिग दादुर कोकिल मोर। चन्द्र बान बानी को सौर॥

**अर्थ**–कामदेव अपने सहायकों की सशक्त संपूर्ण सेना लेकर मुझ विरहिणी को मार डालने के लिये आक्रमण करने आ पहुँचा है। वह घन रूपी नगाड़ा, तीव्र नाद के साथ बजा रहा है। चातक, मेंढ़क, कोकिल और मोर की वाणी के शोर मुझ विरहिणी पर चन्द्राकार बाणों के सदृश प्रहार कर रहे हैं।

बूंदे बान बीज करबाऊँ। छेदत काटत बिना पियाऊं।

**अर्थ**–वर्षा की बूंदें बाण बनकर प्रहार कर रही हैं, बिजली चमक कर विरहाग्नि को प्रज्ज्वलित कर रही है जिसमें पवन सहायक बन रहा है। इस प्रकार से यह ऋतु मुझे प्रियतम पति के अभाव में, छेद कर चुभन देती है और काटती भी है।

सोरठा–3 :

इंद धनष सरब्रंद, पवन पनचकर मधि गही।
मैन मचायौ दुंद, बिन पीय फरीन छूटिये।।

अर्थ–बूंदें कामदेव के धनुष से छूटे हुए शरवृंद हैं। पवन कितनी ही अनुकूल गति दे किन्तु पञ्चशर धारणकर्त्ता कामदेव जब तक निराकार है और प्रियतम पति को लेकर नहीं आयेगा तब तक फली नहीं लग सकती है। कोई कार्य सफल सिद्ध नहीं हो सकता है।

चौपई–62 :

महा कुवार अगिस्त दिषायौ। आवन सीतराइ जगु गायौ।
मेघ घट्यौ पै बिरह घट्यौ ना। अंग लयौ पे अनंग लह्यौ ना।।

अर्थ–माह क्वार में अगस्त्य नक्षत्र दिखाई पड़ा। अब जग में शीत के आगमन का परिचय मिलना प्रारम्भ हो गया। मेघ–वर्षण घट गया किन्तु विरह कम नहीं हुआ। तन कुछ पनपा किन्तु अनङ्गदेव का सुख प्रिय–मिलन संयोग के अभाव के कारण प्राप्त नहीं हो सका।

मन न खिल्यौ, बन फूल्यौं कांस। चषि जल छाई सरवर हांस।
कूंजै करै कुलोलह हुलास। लीला कीला लाल न पास।।

अर्थ–इस ऋतु में काश के फूल तो सर्वत्र खिल उठे हैं, किन्तु मन में आनन्द नहीं फैला है। मेरे चक्षु रूपी सरोवर में अश्रु भरे हैं। सर्वत्र सरोवरों में पक्षी–गण क्रीड़ा कर आनन्दित हो रहे हैं। किन्तु मुझ विरहाग्नि से पीड़िता की सरोवर बनी आँखों में, मेरे मन की आस का पक्षी 'लाल' अभी आकर नहीं बैठा है।

हौं कैसे करूं प्रकाश कलोल। द्रष्ट न आवत लाल अमोल।

अर्थ–मेरे अमूल्य प्रियतम जब मेरे पास नहीं हैं तब मैं अपने सुख की बोली के बोल, भला कैसे प्रकाशित करूं।

सोरठा–4 :

बिरहै बारी बार, नहिं सु बार जिंह बार सुष।
बारिज मुष दुष हार, बार–बार बरि बरि गई।।

अर्थ–विरह काल में भारी वर्षा हो रही है लेकिन मेरे मनवांछित सुयोग 'प्रिय मिलन' की वर्षा

नहीं हो रही है ताकि मुझे सुख मिल सके। मेरे कमल रूपी मुख पर संयोग की आशा पूरी न होने से पराजित होने की मुर्झाहट है। मैं तो दुर्भाग्य से बार–बार विराहाग्नि से जलाई जाती हूँ।

**चौपई–63**

**कातिग रैन भई उजियारी। मानहु मदन हुतासन जारी।**
**तबहिं देत दुष बादुर मन कौ। दूर भये ससि जारत तन कौ।।**

**अर्थ**–कनकावती को कार्तिक माह में भी विरह–वेदना सहनी पड़ी। कार्तिक के महीने में रातें चंद्रिका से धवल होने लगी। उन रातों की चन्द्रिका कनकावती को विरहाग्नि से जलाती थी। उसी अवस्था में बादल दुःख देने आ जाते थे। जब बादल चले जाते थे, तब चन्द्रमा पुनः हृदय को जलाने के लिये उपस्थित हो जाता था।

**षट रित रीत अबहि मैं पाई। बिन पिय आयैं ससि दुष दाई।**
**इंदीबर फूले मन चाव। होत संयोगिन कौ अनिराव।।**

**अर्थ**–षट् ऋतुओं के स्वभाव की पहचान विरहिणी कनकावती को इस अनुभव के साथ हुई कि प्रियतम के अभाव में चन्द्रमा दुःख प्रदान करने वाला होता है। इंदीवर फूले (विकसित) देखकर प्रिय–मिलन के संयोग को प्राप्त कर लेने वाली नारियों के मन में आनन्द भर जाता है।

**बारिज प्रान न मेरौ फूल्यौ। आइन मधुकर लाल न भूल्यौ।**

**अर्थ**–मेरा प्राण रूपी कमल अभी तक प्रियतम रूपी भंवरे के द्वारा भूल से भी अंकित नहीं किये जाने के कारण पूर्णतः विकसित नहीं हुआ है।

**दोहा–59 :**

**कातिग सीत मिटित नहीं, पिय बिन बोढ़ै सौर।**
**रैन उजागर जान कहि, मानहु कीन सषौर।।**

**अर्थ**–विरहिणी कनकावती कह रही है कि कार्तिक मास की शीतलता से उत्पन्न कष्ट तब तक दूर नहीं होता है जब तक कि स्त्री (बामा) प्रियतम रूपी आच्छादन को ओढ़ न ले। जान कवि कहते हैं कि विरहिणी के लिये कार्तिक मास की रात्रियों का चाँदनी की उजियाली से सम्पन्न होना ही दुःखदायी होता है।

**चौपई–64 :**

**अगहन सीत समद औगह। केहूं नाहिं लहूं तिह थाह।**
**बिचली फिरै धीर की नाव। पहिये पी बिन कछु न उपाव।।**

**अर्थ**–अगहन मास भी विरहिणी के लिये प्रिय की याद में काम–पीड़ा को बढ़ाने वाला अनुभूत हुआ। कनकावती कहती है कि किसी भी प्रकार से प्रिय की खोज खबर प्राप्त नहीं हो सकती है। मेरे धीरज की नाव विरह चक्रवात के कारण चंक्कर काट रही है। पति को प्राप्त किये बिना, दुःख से मुक्ति प्राप्त करने का और कोई दूसरा उपाय प्रभावी नहीं हो सकता है।

**यहै बीनती करिहौं दई। बूडत मिलवहु बाँह गहई।**
**अजहूं आइ नाक मैं सास। मिलै होइ जीवन की आस।।**

**अर्थ**–विधाता से मैं यही विनती करती हूँ कि मैं विरह सागर में डूब रही हूँ, प्रिय मुझे अपनी बाँहों के सहारे से उबार ले। मुझे प्रिय मिल जाये। अभी तक मेरी नाक में पूरी स्वस्थ प्राण वायु का संचार नहीं हैं। यदि प्राणों का आधार प्रियतम मिल जाये तो जीवन की आशा पूरी हो सकेगी।

**सारस कुंज और हू दुषिया। तिन तू केहि निस सोवहि सुषिया।**

**अर्थ**–सारस मिलन का स्वर उच्चारित कर रहे हैं और मैं दुखियारी विरहिणी उनकी केलि–कूज सुन रही हूँ।

**दोहा–60 :**

**लाल उजागर बिन भयौ, अगहन आगर सीत।**
**दुष सागर नागर परी, साथिन खेबी मीति।।**

**अर्थ**–मेरे प्रियतम रूपी अमोल लाल रतन के आगमन के बिना विरहावस्था में शीत लाने वाला यह अगहन का महीना मेरे लिये अग्नि के समान विरह दाह उत्पन्न करने वाला प्रमाणित हुआ है। प्रेम पर समर्पण की रीति–नीति से जीवन जीने में सत्यनिष्ठा रखने वाली पतिव्रता कनकावती वियोग के दुःख सागर में डूब उतर रही है। उसको ऐसे वियोगसागर से अपनी बाहों का सहारा देकर निकाल लेने में एकमात्र समर्थ प्रियतम परमरूपी मल्लाह (खेबी) यहाँ उपलब्ध नहीं है।

**चौपई–65 :**

**सीत पुंज जब आयौ पूस। तबहिं निकट गयौ धीरज रूस।**
**रही पाइ गहि नाहिन आवे। मन मोहन बिन कौन मनावे।।**

**अर्थ**—पौष मास में विरहिणी कनकावती को वियोगवश किस प्रकार कष्ट उठाना पड़ा उसका वर्णन इस प्रकार है—शीत का 'पुञ्ज'' लेकर जब पौष का महीना प्रारम्भ हुआ तब उस माह में विरहिणी का धैर्य रूठ कर पलायन करने लगा। विरहिणी पैर पकड़ कर विनम्रतापूर्वक धैर्य को सहारा देने के लिए राजी रखना चाहती थी। बिना प्रियतम के मिले अब धैर्य को कौनं ठहरने के लिये मनाये।

**रैन छमासी टरत न टारी। गिन गुन गनां बितवत हूँ सारी।**

**बनि बनि कुतर दाहे सीतर। जरि बरि चल्यौं जूं धीरज तीतर।।**

**अर्थ**—दुःखदायिनी रात्रि छ मास वत् दीर्घकालिनी होने लगी। ऋतु शीत और भी अधिक शीत धारण करके पीड़ा पहुंचाती हुई विरह के दाह को बढ़ाने वाली हो गई। अब विरहिणी एक—एक के गुणों की गणना करके रात्रि बिताने लगी।

**सीतह महा संतावति रैन। पति सूरज बिनु नाहिन चैन।**

**अर्थ**—शीत ऋतु की महाकालिकी रात्रि मुझे अत्यन्त कष्टदायिनी हैं। पति रूपी सूर्य के बिना यह शीत ऋतु की रात्रि अत्यन्त बड़ी (लम्बी अवधि वाली) हो गई है।

**दोहा—61 :**

**मिलन सूर धौ कब ऊवै, दीरघ निस जंजाल।**

**सीत महा दुःख देत बिन, सौर सुवेली लाल।।**

**अर्थ**—मिलन रूपी सूर्य न मालूम कब उगेगा। विरह रूपी निशा का जंजालमय कष्ट अत्यन्त दीर्घ अवधि का हो गया है। शीत ऋतु है, इसमें विरहिणी के पास, सुबेला नहीं है। अतः पति रूपी ओढनी (सोर) का अभाव होने से, यह शीतकालीन रात्रि का विरह सहना एक दुस्तर कार्य बन गया है।

**चौपई—66 :**

**मांह नाह बिन आयौ काहै। डाडे डांडन दाहुन दाहै।**

**सीत अनीत चलन ही गह्यौ। होइ अजीत मीत बिन रह्यौ।।**

**अर्थ**—माघ का महीना भी निष्ठुर बनकर हृदय के नाथ पति के बिना आये ही आ गया। शीत ऋतु में बहुत से पौधों के पत्ते पीले पड़कर नष्ट हो जाते हैं और उनके मात्र डोंड (लकड़ी के रूप में)

खड़े रह जाते हैं, उसी भांति विरहिणी का शरीर क्षीण होकर मात्र डांड–सरीखा हो गया है, उस पर भी उसे विरह का अपार दुःख जला रहा है। शीत अनीति पूर्वक आचरण कर रहा है, क्योंकि प्रियतम का संयोग सुख विरहिणी को प्राप्त नहीं है।

**मंदिर कंदिर अंदिर आवै। सीरख बदेन आंग कंपावै।**

**मैं तो कीने जतन अनेक। लाल न बिना न माने येक।।**

**अर्थ**–हृदय में कन्दर्प आता है जो वियोग में सुख–शांति के बजाय वियोगाग्नि का कष्ट देकर सम्पूर्ण हड्डियों को कंपा देता है। मैंने हृदय को समझाने के लिये अनेक यत्न किये किन्तु परमरूप प्रियतम के बिना अन्य किसी प्रकार से हृदय को शान्ति नहीं मिलती है।

**और वोट क्यों जीव वंचइये। लाल वोट विधि दै तो पईये।**

**अर्थ**–हृदय तो बस एक ही रट लगाता है कि किसी अन्य सहारे को ढूँढ़कर जीव बचाने की आवश्यकता नहीं है। विधाता यदि लक्ष्यभूत प्रियतम को दे तो उसी के मिलने के लिये जीवन की भी आवश्यकता है अन्यथा जीवन की भी आवश्यकता नहीं है।

**दोहा–62 :**

**परै सीति अति माह मैं, नाह वोट सुषि नांहि।**

**मौ सुष की जारी लषि, पर्यौ बिरह ह्वै दाह।।**

**अर्थ**–कनकावती माघ मास में प्राप्त विरह पीड़ा का वर्णन करती है, ''माघ के महीने में शीत प्रबल प्रभाव दिखाता है। मुझे प्रियतम राजा के मिलन का सहारा वाला सुख प्राप्त नहीं हुआ है। सुख की स्मृतियों से जलती हुई मुझे विरह का दाह और भी अधिक पीड़ा पहुँचा रहा है।

**चौपई–67 :**

**फागन लगें हरे हूँ सूषा। रूषे रूषे रूषे रूषा।**

**सकल वनासुपती पति गई। पात झरें और गति भई।।**

**अर्थ**–फाल्गुन के माह में भी प्राप्त वियोग–पीड़ा का वर्णन कनकावती इस प्रकार कर रही है कि इस समय प्रत्येक पेड़–पौधा हरा भरा है, किन्तु मेरे मिलन के लिये, विधाता रूखा रूख अपनाये हुये है। मेरा पति मुझे प्राप्त नहीं है। समस्त वनस्पतियों ने अपने पतियों से सङ्गम कर लिया है। मेरा पति नहीं आने से मेरी दशा अच्छी नहीं रही है।

तरूनी बाति तरिन की जोई। पति बिन बिरह विपति पति खोई।
पात परे झरी कल औ धीरज। मुरझान्यौ आलि सुष नीरज॥

**अर्थ**–मैंने भी इस तरूणावस्था मैं अपने तरूण पति की पर्याप्त प्रतीक्षा की है। पति के वियोग के कारण विपत्तियाँ सह–सह कर मैं अत्यन्त क्षीण हो गई हूँ। वियोग पात के कारण मेरा चैन और धैर्य समाप्त हो गया है। प्रियतम रूपी भँवरे के संयोग के बिना विरह पीड़ा में ही मुझ प्रेमिका रूपी पंकज का तन मुरझा गया है।

धनु धनु जे संजोगिंन बाल। खेलत हरिष ऊमंग धमाल॥

**अर्थ**–वे समस्त बालायें धन्य हैं जिन्हें अपने प्रिय का संयोग प्राप्त हो रहा है और जो कि अपने–अपने प्रेमियों के साथ हर्ष और उमङ्ग के साथ काम क्रीड़ाओं में धमाल (पूर्ण वेग के साथ) प्राप्त कर रही हैं।

**सोरठा–5 :**

चंदन अगर अबीर, कुंकुम केसरि अरगजा।
भिजवत डोलहिं चीर, बाल गुलाल उड़ाइ हैं॥

**अर्थ**–फाल्गुन में वे बालायें धन्य हैं जो अपने–अपने प्रियतम के साथ होली खेल रही हैं। उनके प्रियतम चन्दन, अगर, अबीर, कुंकुम, केसर और अरगजा आदि को जल में मिला कर अपनी अपनी प्रिया के वस्त्रों को भिगो रहे हैं और बालायें अपने अपने प्रिय जन के ऊपर गुलाल उड़ा कर डाल रही हैं।

**चौपई–68 :**

चैतकि दैतक दानव आयौ। एन कोटि बरहा ले धायौ।
फिर संतापनि कोकिल कूकी। आबहि चीर लगाऊँ लूकी॥

**अर्थ**–विरहिणी कनकावती कहती है कि चैत्र का महीना भी दैत्य के समान ताक लगा कर मुझे पीड़ित करने आया है। यह भी विरह का मजबूत डण्डा लेकर मुझ विरहिणी को मारने के लिये आया है। संताप प्रदायिनी कोकिला फिर से कुहुक–कुहुक कर मुझे विरह की ज्वालाओं से दग्ध कर रही है।

मधुप अलापत डोलहिं भारी। पाप अपिन देही भई कारी।
भौंर भरोरत बैरी मेरौ। काम कटक कीनौ मोहि घेरौ॥

**अर्थ**—ये भंवरे भारी आलाप करते डोल रहे हैं। ये अपने पापी चरित्रों के कारण काले शरीर वाले हो गये हैं। फूलों से रति करता भँवरा मुझ विरहिणी का पक्का शत्रु हो रहा है। कामदेव की सेना का उत्साह बढ़ाने में सहायक नाद को यह भौंरा ही बढ़ा-चढ़ा कर करता है।

**तू ति अनीत अनंत चलाई। कंतहि बिना बसंत सताई।**

अर्थ—हे बसंत! तुमने मुझे बड़ी अनीतिपूर्वक ऐसी पीड़ायें दी हैं और प्रियतम के अभाव में मुझ विरहिणी को अनन्त कष्ट देकर सताया है।

**दोहा-63 :**

**चिंत अनंत बंसत रित, नाहि कंत बिन सुष।**
**तंतन मंतन मांहि है, संतत देहै सुष॥**

**अर्थ**—बसंत ऋतु में प्रियतम के सम्मिलन के अभाव में विरहिणी को सुख नहीं मिलता है। उसे प्रियतम से मिलने की चिन्ता लगी रहती है। विरहिणी मन में धैर्य धारण करके मिलन की आशा में ही अपने चित्त के लिये सुख को सजाये-सँवारे रहती है।

**चौपई-69 :**

**बैसाषहि साषी छवि पाई। मोहि सखा सुख नाहिं बिहाई।**
**पात लगे पति जसतर पायौ। अपति प्रानपति बिनु तनु छायौ॥**

**अर्थ**—वैशाख के माह में विरहिणी कनकावती ने अपने साथी प्रियतम के संयोग की आशा में साक्ष्य प्राप्त कर लिया। वह दुःखी होने लगी। वह कहने लगी मुझे अपने जीवन साथी का सहायता सुख नहीं मिल रहा है। मैं वियोग का दुःख सहन कर रही हूँ। वृक्षों को विधाता ने पुनः पत्तों से हरा-भरा कर दिया। मुझ पति रहिता का विरह-सन्ताप बढ़ ही रहा है, तन क्षीणता को प्राप्त हो रहा है। प्राण भी लघुता को प्राप्त हो रहे हैं।

**बनतर फूल फलन सौ पागौ। तन पर दुःष चिंता फलु लागौ।**
**मिलन चौंप सो कौंप बखान हुँ। टपत चटपटी तिहु तरू जानहूँ॥**

**अर्थ**—वन में पेड़-पौधों पर जो फूल लगे थे वे नर-मादा के संयोग से अब फलों से सफल सिद्ध हो गये हैं। मुझ विरहिणी के शरीर पर प्रियतम के बिछोह के कारण मैं मिलने की उमङ्ग लिये मुरझाई कली मात्र हूँ। यही मेरी दशा है। चित्त में निरन्तर वियोग की पीड़ा की कसक रहती है। हृदय उद्वेलित रहता है। एक चिन्ता फल ही अस्तित्व में सम्पन्न हो रहा है।

हों तो होइ रही हौ माली। चषि जल सींचू, रहूं न डाली।

**अर्थ**–मैं तो ऐसी मालिन हूँ जो अपनी आँखों के आँसुओं से अपने प्यार का पौधा सींचती रहती है किन्तु मुझे अपने पौधे की डाली के नीचे की छाया में बैठने का सुख मिलने की आशा अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

**सोरठा–6 :**

मन दादुर सुष नीर, लयौ बिरह रज सोषिकें।
मैन, सूर तप षीन, बरिख जान जल मिलन कौ।।

**अर्थ**–मेरे मन रूपी मेंढक को सुख रूपी नीर आवश्यक रूप से चाहिये ही, किन्तु उक्त नीर मेरे विरह–दुख रूपी रज–समूह ने सोख कर समाप्त कर दिया है। आधारभूत जल के बिना मेंढ़क (मन) रहे कहाँ? मदन रूपी सूर्य ने प्रिय वियोग की ताप से तपा–तपा कर स्नेह के आधार को सुखाने में कसर नहीं रखी है। अब यदि प्रियतम आ जायें तो प्रियतम के मिलन रूपी जल के बरसने से सुख नीर पुनः भर जाये तो मन रूपी दादुर बोलने लग जायेगा।

**चौपई–70 :**

जेठ नांव काहै को राख्यौ। भूलि जगत तौ कौं यौं भाष्यौ।
जेठ बड़े को कहिये नांव। तो मै नाहि वडाई पांव।।

**अर्थ**–कनकावती विवाहिता है। अतः पति से वियुक्त होने पर वह पीड़ा प्राप्त कर ही है। ज्येष्ठ माह के समय में वह ज्येष्ठ से पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धों के कारण अपेक्षा रखती है कि यदि वे वास्तव में ज्येष्ठ हैं तो उन्हें अपने छोटे भाई की वधू को कष्ट देने में सहायक नहीं होने देना चाहिए। बड़ों का उत्तरदायित्व छोटों को सुविधा देकर अपना बड़प्पन प्रमाणित करना होता है। कनकावती कहती है कि जगत् ने मुझे विरह की पीड़ा देने में कमी न रखने वाले इस ज्येष्ठ माह को 'ज्येष्ठ' नाम देने में बड़ी भूल की है। ज्येष्ठ तो बड़प्पन वाला पद होता है।

वडे की छवि वा गहराई। लघुता से दीरघ सोराई।
तो में भारी रोसत ताई। पवन सिरावै तभ लैं ठंडाई।।

**अर्थ**–बड़े की छवि (स्थिति) उसके आचरण की लघुता से मुझे हल्की अनुभूत हुई है। अरे जेठ! तुझमें तो रोषताई (गर्मी) इतनी अधिक है कि पवन को तेरी रूष्टता ठण्डी करनी पड़ती है।

नीकैं ज्यौं देख्यों भरि दिष्ठ, जेठ नाहि तूं आहि कनिस्ट।

**अर्थ**–भली भाँति निरीक्षण करने पर तो तूं कष्ट देने के आचरण के कारण कनिष्ठ है।

**सोरठा–7 :**

अब पिय भेंटत नाहिं, तौ जीबौ अति कठिन है।
आवन लागि बांहि, लघु अंगुरी की मूंदरी।।

**अर्थ**–अब भी यदि प्रियतम आकर मुझसे भेंट नहीं करते हैं तो मेरा जीवित रहना कठिन है। अब विरह से मेरा तन इतना कृश हो गया है कि मेरी लघु अंगुली की मोटाई में पहनी गई अँगूठी कोंहनी से ऊपर चढ़कर बाँह (भुजबंध) तक पहुँच गई है।

**चौपई–71 :**

जिहि विधि गयौ बरिष कनकावती। तिहि विधि ते आगर अहिरावति।
नीकै बसतर पहरन काजै। पै कनकावत बिनु नहिं छाजैं।।

**अर्थ**–जिस प्रकार राजा जगपति के यहाँ सुता के रूप में पालित कनकावती को विरह पीड़ा ने भारी कष्टों में डाल रखा था, ठीक उसी प्रकार से, जगपति राजा के मित्र दूसरे राजा जगराइ के यहाँ पुत्र के रूप में लाड़ प्यार से पाले जा रहे राजकुमार परमरूप को भी कनकावती का वियोग, अत्यधिक कष्ट दे रहा था। उसको बहुत उत्तम वस्त्र पहनने के लिये दिये जाते थे किन्तु कनकावती को विरह के कारण वे वस्त्र शोभनीय नहीं लगते थे।

चढ़िबे कौ नीके गजघोरा। काहूं सौं हित बहुत न थोरा।
भोजन अनगन भांति पकावहि। रसन धरै हूँ नाहिन चावैहि।।

**अर्थ**–उस राजकुमार के लिये उत्तम कोटि के हाथी और घोड़े उपलब्ध करा दिये गये थे किन्तु उसे इनसे किसी भी प्रकार लगाव नहीं होता था। उस राजकुमार के लिये अगणित व्यंजन पकाये जाते थे किन्तु राजकुमार उन विविध प्रकार के उत्तम सुस्वादिष्ट व्यंजनों को जीभ पर रखने की इच्छा तक नहीं करता था।

पान तैल सौ नाहिन जोरि। षौरहि कहत लगाई षोरि।।

**अर्थ**–उस राजकुमार के लिये तेल–उबटन–अङ्गराग आदि प्रस्तुत किये जाते थे, उनमें भी उसे अरूचि रहती थी।

दोहा–64 :

**धीर दैन बिनुं जावु कहि, धीरन धरि है कोर।**
**जो जो सुख जग जानिया, सो सो दुष फिरि होइ॥**

**अर्थ**–राजकुमार को सन्तप्त देखकर जब सान्त्वना देने के लिये कोई उसके पास जाता तो राजकुमार उसे (बिनुं) अपने पास से चले जाने के लिये कह देता था। इस कारण से बाद में कोई व्यक्ति उसको धैर्य बँधाने भी नहीं जाता था। ईश्वर की महिमा अपरम्पार है कि कभी भी हालात बदल जाते हैं। जगत् जिन–जिन सुखों से (भले ही स्वप्न में ही) परिचित होता है, वे सुख पुनरावृत्ति से प्राप्त हो जाते हैं।

चौपई–72 :

**ब्याह ऊमाह भयौ जगुराइ। को जगपति बिनु चितहि न आइ।**
**वहै येक है मोहि समान। गने न आवै इसर ग्यांन॥**

**अर्थ**–इस राजकुमार के (पालनकर्त्ता) पिता जगराइ के मन में अपने पुत्र के विवाह के लिये उत्साह जागृत हो गया। उसने जब विचार किया तब उसके चित्त में राजा जगपति ही ऐसा दृष्टिगोचर हुआ जिसके यहाँ पुत्र का विवाह करना उसे उचित लगा। उसे अन्य किसी भी राजा की बेटी से अपने इस पुत्र का विवाह करना मन में नहीं भाया। उसकी धारणा इस प्रकार थी कि राजा जगपति ही मेरे समान उत्तम कुल का श्रेष्ठ स्तरीय राजा है। इसके अलावा कोई भी राजा अपने समकक्ष विवाह योग्य समझ में नहीं आता है।

**बांभन जगपति पास पठायौ। कह्यौ साक हम तुम, चलि आयौ।**
**पूत सुलछिन आहि हमारैं। सुता देहु जो आहि तिहारैं॥**

**अर्थ**–राजा जगराइ ने राजा जगपति के पास एक ब्राह्मण को विवाह का प्रस्ताव लेकर भेज दिया और इस प्रकार का संदेश भिजवाया कि, ''हमारा तुम्हारा सम्बन्ध दीर्घकाल से चला आ रहा है। हमारे घर में गुणवान पुत्र है, उसके लिये तुम अपनी पुत्री दे दो।

**आइ दीरघा पांडै दीनौं। करतें कागर राजै लीनौ॥**

**अर्थ**–राजा जगपति जब राज–दरबार में बैठा हुआ था उस समय जगराइ के भेजे हुए पाण्डे (ब्राह्मण) ने विवाह प्रस्ताव की पत्रिका प्रस्तुत की। जगपति ने जगराइ के पत्र को स्वयं के हाथ में ले लिया।

दोहा–65 :

जगपति जोग संजोग करि, यहै लिष्यौ जगुराइ।
हम तुम हित में हित बढै जोगहि जोग मिलाइ॥

**अर्थ**–जगपति को जगराइ ने उनके योग्य विवाह–संयोग का प्रस्ताव लिखकर भेजा। इसमें यही लिखा था कि इस विवाह के करने से हमारे दोनों के हितों की पुष्टि होगी। योग्य से योग्य के मिलने से मङ्गल ही मङ्गल होगा।

चौपई–73 :

बांचत ही तन मन हरषायौ। साक बहुत यहु मन मैं भायौ।
बिप्रन टेरि दिखायौ ताहौ। चतुरमास कौ करहु ऊछाहौ॥

**अर्थ**–जगराइ की चिट्ठी पढ़ते ही जगपति का मन हर्षित हो गया। उसने स्पष्ट कहा, ''यह सम्बन्ध मेरे मन को बहुत सुहावना लग रहा है।'' फिर राजा ने विप्र को बुलवाकर शुभ लग्न विवाह हेतु निकलवाया। विप्रों ने चतुर्थ माह में विवाहोत्सव के लग्न को शुभ बताया।

पाती लिखि पांडे कर दीनी। बात तिहारी सिर धरि लीनी।
प्यार मास कौ साहौ निकस्यौ। बांचत राइ कंवल ज्यौ बिकस्यौ॥

**अर्थ**–तब राजा ने जगराइ के लिये उक्त आशय की चिट्ठी लिखकर पाण्डे के हाथ में दी और यह संदेश दिया कि मैंने आपके पुत्र एवम् मेरी पुत्री के विवाह के संदेश को आदरपूर्वक सिर पर धारण करके स्वीकार कर लिया है। चार मास के बाद का लग्न निकला है। इसको पढ़कर जान लेने से जगराइ राजा हर्षित होकर कमल के समान खिल गया।

बडौ साक कीनौं दिहि करता। ज्यौं सुष कै भरता दुःष हरता॥

**अर्थ**–जगत् के नियामक परमेश्वर ने बहुत उत्तम सम्बन्ध वाला साथ सुनिश्चित किया जिससे दुःखों का हरण एवं सुखों का संभरण संभव हो गया।

दोहा–66 :

कंवर न काहू कहि सकै सोच तु आयै आप।
फिरि फेरे ल्यों और संग जरमु न मिटि है पाप॥

अर्थ–कुंवर परमरूप अपने मन में बड़े–बड़े विचार करता है। वह सोचता है कि मेरा पालनकर्त्ता पिता राजा जगराय महाराजाधिराज जगपति की बेटी से मेरा विवाह पक्का कर चुका है और अब मुझे दूसरी नारी के साथ में केवल उसी से प्रेम करने का वचन आदि लेकर अग्नि के फेरे खाकर शपथपूर्वक पूरा संग निबाहने का वचन देना पड़ेगा। मैं अब दूसरी नारी के साथ विवाह करूँगा तब तो जन्म जन्म तक मुझे पाप लगेगा।

**चौपई–74 :**

**पंच शब्द हूँ और बजाये। रहं सा रहै राम नमं गाये।**

**ज्यौ ज्यौ आयौ निकटि बिवाह। त्यौं त्यौं बाढ़ै महा उमाह॥**

अर्थ–इधर राजा ने पांडे द्वारा महाराजा जगपति की स्वीकृति की चिट्ठी प्राप्त करके ईश्वर का स्मरण किया। पंचशब्द कीर्तन किये और पूरे उत्साह से राम नाम की ध्वनि का गान कराया। ज्यों–ज्यों विवाह निकट आया त्यों–त्यों राजा जगराय के यहाँ उत्सव प्रारम्भ हो गये।

**ब्याहन चल्यौ पूत जगराइ। राजे बहुत भये संग आइ।**

**निकटि जाइ जगपुरी लगानें। परफुल्लत सभ राजे रानें॥**

अर्थ–जगराय अपने पुत्र को ब्याहने के लिये जब चला तब उसके साथ अनेक राजा चल पड़े। चलते चलते वे महाराजा जगपति की राजधानी जगपुरी के नगर परकोटे के द्वार पर पहुँच गये। उस समय सभी राजा चित्त में बड़े प्रफ्फुलित थे।

**छत्र न छित्र देखि कै फेरै। जगमगाहि कुंवर कै नेरे॥**

अर्थ–वे सभी नक्षत्र देखकर अपने अपने छत्रों के साथ राजकुंवर को बधाई देने उसके समीप गये।

**दोहा–67 :**

**बरन बरन बानिक बने, मन मै सकल अनंद।**

**कुंवरन मै जगराइ सुत, ज्यौ ताराइन चंद॥**

अर्थ–समस्त लोगों के मन में सम्पूर्ण आनन्द भरने के लिये अनेक प्रकार के साज शृंगार सजाये गये थे। जगराय का पुत्र परमरूप साथ में चल रहे अन्य राजाओं के पुत्रों के बीच में उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था जिस प्रकार तारागणों के बीच में चन्द्रमा शोभा प्राप्त करता है।

चौपई-75 :

आगे तैं जगपति चढि आयौ। राइ बहुत मिलि महा सुहायौ।
दोऊ दल मिलि चले सुहानें। रज नभ गई लंकेश संकाने।।

अर्थ-जब राजा जगपति को जगराय राजा के आगमन की सूचना प्राप्त हुई तब वे घोड़े आदि पर सवार होकर अगवानी करने के लिये पहुँचे। दोनों राजा शिष्टाचार के साथ में मिले। राजा जगराय की शोभा बहुत बढ़ गई। अब दोनों पक्षों के दल जगपुरी में प्रवेश करने के लिये चलते समय बहुत सुशोभित हुए। इनके साथ में हाथी और घोड़ों के पैरों से अपार रज आकाश में छा गई जिसे देखकर लंका के राजा तक के मन में भय की आशंका हो गई।

आनि ऊतारे नीकी ढांव। आनंदित है सगरौ गांव।
बहुरि आपुनै धाम बुलाये। जीवंन अन अन भांति जिंवाये।।

अर्थ-राजा जगपति ने वर पक्ष के ठहरने के लिये उत्तम स्थल पर व्यवस्था की थी। अतः बारात को साथ ले आकर जनवासे में ठहरा दिया। बारात के आ जाने से जगपुरी के लोग आनंदित हुए। इसके पश्चात् बेटी वाले पक्ष ने बारात को अपने निवास राजभवन में बुलाया और सत्कांरपूर्वक अनेक विधियों से पकाये गये विविध व्यंजनों सहित भोजन कराया।

कोटि दीप धरि फेरे दीने। बेद पढ़े गंठ जोरा कीने।

अर्थ-प्रकाश के लिये रात्रि में करोड़ों दीपकों को जलाकर रख दिया गया। प्रकाश से सुशोभित स्थल पर वर और वधु के विवाह की सप्तपदी की रस्म पूरी की जाने लगी। श्रेष्ठ पंडितों के द्वारा वेद पाठ करते हुए वर और वधु की गांठ जोड़ने की रस्म भी पूरी की गई।

दोहा-68 :

जुरी जुराई फिरि जुरी, जोरी है जगदीस।
परफुलित भई जान कहि, जोरी बिसवा बीस।।

अर्थ-जान कवि कहते हैं कि इस जगत के स्वामी परमेश्वर ने पहले ही जिस वर और वधु की जोड़ी को तैयार कर·दिया था उसे कुछ दिन के लिए अलग-अलग कर दिया था और अब फिर राजकुमार परमरूप और राजकुमारी कनकावती की जोड़ी बनाकर उन्हें एक कर दिया। अब तो वर-वधु दोनों ही परिपूर्ण रूप से प्रफ्फुलित थे।

**चौपई–76 :**

**नगन जटित कंचन कौ धाम। पौठाये दोऊ नर बाम।**

**बिथा पाछली सभै बषानी। जो बितई सो रसना आनी।।**

**अर्थ**–इसके पश्चात् मूल्यवान् रत्नों से जड़े स्वर्ण मण्डित एक सुन्दर राजभवन में वर एवं वधु दोनों को एक साथ रहने के लिये श्रेष्ठ सुविधायें प्रदान की गई। वर और वधु ने अपनी–अपनी कहानी बीती हुई घटनाओं की बताई। किस प्रकार वियोगावस्था में कष्ट पाये थे। इस प्रकार की पिछली व्यथाओं की कथाओं को उन्होंने परस्पर कहा।

**विरधाइ सौं होत न पूरि। ते पुर आये भैटि न भूरि।**

**चिंत चटपटी सभै भजानी। बिधना बनी बनाई बानी।।**

**अर्थ**–दोनों ने अपना अनुभव और विश्वास इस प्रकार प्रकट किया कि मनुष्य कितने ही प्रयत्न करे किन्तु तब तक कुछ नहीं होता जब तक कि ईश्वर कृत संयोग सहायक न हो। हम कितना ही यत्न करते किन्तु इस पुर में दुबारा कदापि नहीं मिल पाते। यह सब अलख निरंजन की अद्‌भुत रीति नीति से मिलन सम्भव हुआ है।

**काम कलोल करत निस गौनी। पीति रीति बाढी भई (अति) चौनी।**

**अर्थ**–राजकुमार और कनकावती को कष्ट देने वाली सभी चिन्ताऐं पलायन कर गई। विधाता ने उनके अनुकूल वातावरण बना दिया। अब उन दोनों की रात्रियाँ काम केलि में व्यतीत होने लगी। वे प्रेम के अनुरूप व्यवहार में रंगे पगे रहने लगे। वे अत्यन्त उत्साह से भरे रहने लगे।

**दोहा–69 :**

**अंगहि अंग ऊमंग है, संग भयौ भरतार।**

**अंग अनंग तरंग सौ, भले रंग करतार।।**

**अर्थ**–जब जगत् का निर्माण करने वाले परम शक्तिमान् ने उनके अनुकूल अवसर प्रदान कर दिया तब उन दोनों के अंग–अंग कामदेव की तरंगों से पूर्ण होकर भली–भांति रंगरेलियाँ मनाने लगे। जब ईश्वर ने उन पर कृपा की तब उनके अंग–अंग में उमंग भर गई।

**चौपई–77 :**

**कनकावत बोली सुनि प्रानी। मैं यहु गति पहिलै ही जानी।**

**जब सूती तब सपनौ पायौ। प्यारौ मिलि है, जिय हरिषायौ।।**

**अर्थ**—कनकावती ने राजकुमार से कहा कि प्राणनाथ! हमारे प्रेम की भविष्य में यही गति होगी यह मैंने पहले ही जान लिया था। एक बार जब मैं सो रही थी तब मुझे ऐसा स्वप्न दिखाई दिया था कि मेरा प्यारा मुझे मिल जायेगा। तभी से मेरे हृदय में हर्ष रहने लगा।

**नातर नांव सुनत हि ब्याह। षांडंत जीभ परत ऊर दाह।**
**प्रगट भयौ जु देषत सपुनौ। मन तन पोषण पायौ अपनौ।।**

**अर्थ**—अन्यथा अपने विवाह का नाम सुनते ही मेरा हृदय तीव्र रोष से जलने लगता और मैं अपने जीवन का खंडन कर देती। अब जो मैंने स्वप्न में देखा था, वही मिलन प्रकट हो गया है। मैंने अब अपने तन मन का पोषण आपके मिलन से प्राप्त कर लिया है।

**यहै येक चिंता उनियारी। दहुवन पिता परैं दुःष भारी।**

**अर्थ**—राजकुमार परमरूप और कनकावती ने अपने मन में संजोई हुई एक समान चिंता को प्रकाशित किया कि हम दोनों के ही पिता राजा जगपति के द्वारा कैद होकर बंधुआ मजदूर का सा कष्टप्रद जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

**दोहा–70 :**

**देइ जुराजा चलित मोहि, ऊलटि देऊं सभभेज।**
**दहुवंन पिता न छूटि हैं, हाथ न छुऊं दहेज।।**

**अर्थ**—इसके पश्चात् राजकुमार ने कनकावती से कहा कि यहां से विदाई के समय महाराजा जगपति जब रस्म रिवाज के रूप में मुझको अनेक प्रकार की बहुमूल्य भेंटें प्रदान करेंगे तब उस समय मैं रूठ जाऊँगा। समस्त भेंट वापिस कर दूँगा। और उनके सामने यह स्पष्ट कह दूँगा कि हम दोनों के पिता जब तक आपकी कैद में से छोड़े नहीं जायेंगे तब तक मैं आपके द्वारा दी गई भेंट की किसी भी वस्तु को हाथ से स्पर्श नहीं करूँगा।

**चौपई–78 :**

**दैन दहेज सभ आयौ राव। रूसि रह्यौ करि कुंवर उपाव।**
**कह्यौ राइ जौ हम सौं जो रहु। तौ बंधुवा सगरे तुम छोरहु।।**

**अर्थ**— इसके पश्चात् जब जगपति महाराज विदाई के समय सभी प्रकार के दहेज देने के लिये आये, तब राजकुमार ने पूर्व में ही निश्चित किये गये उपाय को काम में लेते हुए अपना रूठना

प्रकट कर दिया और महाराज से इस प्रकार कहा कि यदि आप हमारे साथ वास्तविक रूप में संबंध जोड़ना चाहते हैं तो अपने यहाँ कैदखाने में रखे गये समस्त बंदियों को मुक्त कर दीजिये।

**जगपति बंधवा रूबै छिड़ायै। छूटि छूटि अपने घर आयै।**

**अनगन दयौ दहेज अपार। लिष्यौ न जाइ लषै करतार।।**

**अर्थ**–राजा जगपति ने राजकुमार की प्रसन्नता चाहते हुए अपने बंदीगृह से समस्त बंधुआ जनों को मुक्त करवा दिया। वे सब अपने अपने घर को चले गये। राजा जगपति ने राजकुमार को ऐसा अगणित दहेज दिया जो कि अपार था और जिसे परमेश्वर तो अपने लेखे में रखने में समर्थ है लेकिन कोई लेखक दहेज में मिले सामान के लेरवे को लिखने में समर्थ नहीं हो सकता।

**कनकावती लैकै घर आयौ। रौंम रौंम सो आनन्द छायौ।।**

**अर्थ**–इसके पश्चात् राजकुमार कनकावती को लेकर अपने पिता जगराय के घर लौट आया। उसके रोम–रोम में आनन्द व्याप्त हो गया।

**दोहा–71 :**

**तन मन मैं सुष उपजि है, पायौ प्रान अधार।**

**दीप धरें ज्यौं देहरी, घर आंगन उजियार।।**

**अर्थ**–कनकावती और राजकुमार दोनों के तन और मन में, अब अपने प्राणों को पोषण का आधारभूत उपयुक्त आहार प्राप्त होने लगा था। अब उन्हें भरोसे का सहायक मिल जाने से जीवन प्रकाशमय (महसूस होने लगा) अनुभूति में आने लगा था। देहरी पर दीप रखने से घर आँगन और द्वार दोनों स्थानों पर जैसे उजियाला हो जाता है उसी भांति प्रेमी युगल का बाह्य एवम् अन्तर्जगत् स्थिर संबल प्राप्त होने के कारण सुखी हो गया।

**चौपई–79 :**

**कुंवर दोइ मानस दौराये। भरथ सिंध कौ भेद लषाये।**

**पवन गवन में चंचल धाये। मिलि वे काज हुलास न आये।।**

**अर्थ**–कुंवर ने दो व्यक्ति अपने पिता राजा भरथ एवं कनकावती के पिता सिंधुराज का समाचार लाने के लिये तीव्रगति से भेज दिये। संदेश वाहकों से कुँवर एवं कनकावती के समाचार प्राप्त कर भरथराज एवं सिंधुराज दोनों ही आनंद में भरकर तीव्र गति से मिलने के लिये जगराइ के राजभवन में आ गये।

**सनसुष चढौ कुंवर आंनदन। ससुर पिता कौं कीनों बंदन।**
**लै कै नौतन पिता मिलाये। उठि जगराइ जुगल गर लाये।।**

**अर्थ**–कुंवर ने जब पिता भरथ एवं श्वसुर सिन्धुराज के आगमन का समाचार जाना तब उसने घोड़े पर सवार होकर अपने पिता एवं श्वसुर का वंदन किया। फिर कुंवर ने उन दोनों को ईश्वर प्रदत्त नये पिता जगराइ से मिलवाया। राजा जगराइ आदर देते हुए उठकर दोनों से गले मिले।

**जगपति यहु गति सुनि भर मान्यौ। महा संतोष चहुनु मिलि ठान्यौ।**

**अर्थ**–जब राजा जगपति ने इस प्रकार की गति के समाचार सुने तो वह भी आश्चर्य चकित रह गये। फिर वह भी मिलने आ पहुँचे और वे इन चारों से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

**सोरठा–8 :**

**जगपति औ जगुराव, भरथराइ पुनि राजि सिंध।**
**रह्यौ चहुनि अनुराव, जौ लहुं जीये जगत मैं।।**

**अर्थ**–चारों नृप–जगपति, जगराइ, भरथराइ और सिन्धुराज को जब परमेश्वर ने अलख विधि से मिला दिया उसके बाद वे एक दूसरे के सदैव अनुकूल रहने लगे। वे जब तक संसार में जीवित रहे, सदैव मिलकर रहे।

**चौपई–80 :**

**सोई ह्वै जु करे अबिनासी। कहा ग्रब लछिमी विसासी।**
**जोइ जगपति, बहुत रिसायौ। महा बिरधि क्रोध करि धायौ।।**

**अर्थ**–संसार में अनुभूत बात यही है कि– जो अविनाशी, सर्वशक्तिमान् विधाता, जो क्रिया सम्पन्न करना चाहता है, उसे आश्चर्यजनक रूपों में, कार्य रूप में परिणित कर देता है। इस कहानी में सोदाहरण यह सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है कि लक्ष्मी का गर्व करना व्यर्थ है। सुख किसी एक रंग रूप आदि अधिष्ठान में स्थाई रूप से निवास नहीं करता है। अतः जो राजा जगपति कनकावती के और सिन्धुराज के पुत्र के विवाह की बात सुनकर इतना क्रुद्ध हुआ था।

**सिंधुपरी सगरी संधारी। भरथनैर भारथ कियौ भारी।**
**गढ़ ऊड़ाइ कैं डार्‌यौ कंट्ट। भरथ, सिंध दीने दोउ संकट।।**

**अर्थ**–अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसने पहले सिन्धुराज के नगर को लूटा था। तत्पश्चात् भरथनगर

को भारी युद्ध करके नष्ट किया। गढ़ को बारूद से उड़ा दिया। भरथ राजा और सिन्धुराजा को बंदी बनाकर संकट दिये।

**फिरि तिनहीं जगपति धी दीनी। करि विवाह बाही कौं दीनी।**

**अर्थ**–फिर विधाता ने ऐसी रची कि जगपति राजा को वही कनकावती सुता के रूप में दी जिसका विवाह जगपति ने स्वयं उसका पिता बनकर किया और भरथराज के पुत्र परमरूप को दामाद बनाकर उसके पैर पूजे।

**दोहा–72 :**

**पोषन कौ तिय चाव है, पोषण लाग्यौ ताहि।**
**देखौ धौं कवि जान कहि, कहा दई गति आहि।।**

**अर्थ**–जिस जगपति को किसी स्त्री/कन्या के विषय में सुनकर उसे अपनी स्त्री बना लेने की सदैव चाह रहती थी वही जगपति उस प्रकार की कनकावती स्त्री को सुता के रूप में पूजने एवम् प्रेम करने लग गया।

*(इन उदाहरणों से न्यामत खाँ उपनाम श्री जान कवि यह उपदेश करते हैं कि विधाता के कार्य करने की गति विचित्र है; वही संसार भर में प्रभावशीलता में है। मनुष्य का सोच ईश्वर कभी भी बदल सकता है।)*

**दोहा–73 :**

**सोलह सौ पजहतरै, जहांगीर कैं राज।**
**तीन द्यौंस में जान कहि, यहु साज्यौ सब साज।।**

**अर्थ**–कवि जान कहते हैं कि बादशाह जहांगीर के शासनकाल में संवत् सोलह सौ पचहत्तर अर्थात् सन् 1681 ई. में तीन दिवस में इस कथा काव्य का शब्द–संचयनपूर्वक रचना कार्य को सम्पन्न किया है।

इति कथा कनकावती की संपूरन भई–संमत 1778 मिति चैत सुदी 8 दसकत फतेहचंद का चौपई 80

**लिपिकार पुष्पिका :**

इस प्रकार कथा कनकावती की संपूर्ण हुई। संवत् 1778 मिति चैत्र शुक्ला अष्टमी हस्ताक्षर (लिपिकार) फतेहचंद

कुल चौपई संख्या – 80

# कथा कौतूहली

**चौपई–1 :**

**परथम निरगुन के गुण गाऊँ। हौं, निरगुन–गुन पार न पाऊँ।**

**बाकै गुन, अनगन, अन लेषैं। मोसे निरगुन कहा परेषैं।।**

**अर्थ–** ग्रन्थारम्भ में मैं निर्गुण विधाता के गुणों की प्रशंसा कर रहा हूँ। मैं निर्गुण परमसत्ता के गुणों की गणना में (सीमा) पार प्राप्त नहीं कर सका हूँ। विधाता के गुण अगणित हैं और उनका लेखा–जोखा संभव नहीं है। मेरी ऐसी सामर्थ्य कहाँ है जो मैं निर्गुण परम शक्तिमान् के विषय में संपूर्ण परीक्षा करके उसके समस्त गुणों का कथन कर सकूँ।

**अविनासी है महा दयाल। लघु दीरघ सबकौ प्रतिपाल।**

**जो बाकौं कबहू नहीं जानै। ताहू कौं अपनो करि मानैं।।**

**अर्थ–**विधाता का विनाश नहीं होता है। वह अत्यन्त दयालु है। विधाता छोटे–बड़े प्रत्येक प्राणी का पालन–पोषण करने वाला है। ऐसा प्राणी जो उसको (कभी भी, किसी रूप में भी) नहीं जानता है, उसको भी वह अपना मानकर उसका आवश्यक हित करता है।

**सवईया–1 :**

**मोसे अपराधी जग या हिते रचें विरंच,**
**छाड़ि दये, बिरद दयाल पहिचानिये।**
**सेवक कूँ सेवाफल इहा हूँ के भूत देते,**
**बाकूं कभूं, जानै नाहिं योऊ ऊहा जानियै।**
**सुंदर सरूप गुनी कौन कै न मानै मन,**
**निगुन निरूप, निरगुन ही कै मानिये।**
**कहै कवि जान भरे भरियों सैंसार गति,**
**अभरे, भरन करता ही बषानिये ।।**

**अर्थ–**मुझ जैसे अपराधियों को भी विधाता ने मानव तन देकर रचा है और जगत् में गतिशील होने का अवसर प्रदान किया है, इसी कार्य में उस दयालु परमेश्वर की प्रशंसापरक स्तुति करने योग्य महानता को पहचाना जा सकता है।

इस जगत में, यहाँ के राजा जन भी अपने सेवक को (सेवा के प्रतिफल स्वरूप) अच्छा पारिश्रमिक दे देते हैं, किन्तु विधाता तो, बिना सेवा के ही ऐसे प्राणियों को भी श्रेष्ठ प्रतिफल देता है, जो उसको जानते भी नहीं। सब पर अकारण करुणा ही सर्वोपरि महानता है। सुन्दर, असुन्दर, उपयोगी एवम् गुणों के विषय में मन सदैव एक जैसा विनिश्चय प्रकट नहीं कर पाता है। समस्त विशिष्ट गुण किसी एक रूप रंग में अत्यन्त सुख देने वाले हों ऐसा नहीं होता है, क्योंकि बदली हुई परिस्थितियों में, वही रूप, रंग और गुण वाली वस्तु, या जीव या कुछ भी हमारे लिये उपादेय या ग्राह्य नहीं होता है। अतएव, आत्यन्तिक सुख के लिये 'निर्गुण' में ही, आत्यन्तिक रूप से उपादेय सुख, सभी गुण और समस्त प्रकार के सुन्दर लगने वाले रूपों की सत्ता अधिष्ठित रहती है, ऐसा मानना उचित होगा। तुलसीदास जी ने भी यही कहा है–

**''जड़ चेतन गुन–दोस–मय, बिस्व कीन्ह करतार।**

**संत हंस, गुन गहहिं पय, परि हरि वारि विकार।।**

**अर्थ**–जान कवि कहते हैं कि संसार के व्यक्तियों में प्रायः यही व्यवहार प्रचलित है कि जो तन और धन आदि विविध सम्पदाओं से भरे–पूरे हैं, उन्हीं को सब कोई अपना भी तन और धन आदि दिया करते हैं; किन्तु जो निर्धन हैं, आर्त्त हैं और जो किसी भी काम के नहीं हैं, ऐसे दीन–हीनों को भी भरा–पूरा बनाने वाला तो, एक मात्र परमेश्वर ही है; उसी की कृपा का बखान करना उचित है।

**दोहा–1 :**

**दूसर सुमिरौं नबी कौं, विधि तें दूसर ठावं।**

**जौ लौ घट ज्यों रसन मुष, वाही के गुण गाव।।**

**अर्थ**– परमात्मा–विधाता तो सर्वश्रेष्ठ अद्वितीय शक्ति है, अब दूसरी शक्ति के रूप में, मैं नबी हज़रत मोहम्मद साहब का स्मरण करता हूँ। जब तक इस तन में प्राण (जीव) हैं और मुख में जिह्वा (जीभ) है; मैं निरन्तर उनकी महानता के गुणों का गान करता रहूंगा।

**कवित्त–छप्पय–1 :**

**अछिर चारि बिचारि बिधि रच्यौं महंमद दुष हरन।**

**ममौ मुहर ऊहि मिहर, भाग कागर जिहि सो धन।**

**ह है हेठ जलऊ नहि सीचियौ, सोऊ लह्यौ बन।**

ममै मेदनी मनि सबै नबियन कौ मंडन।
ददै दुषन अपराध नाम ताकौ तिहूं षंडन।
कहि जान दुंहूं जग दूसरौ ऊन बिन्न औरन कौ सरन॥

**अर्थ**—जान कवि का कथन है कि विधाता ने संसार के जीवों का दुःख दूर करने के लिए 'महंमद' को चार अक्षरों का (उत्तम), विचार करके रचा है। 'म' अक्षर की सार्थकता, उनके द्वारा अपनाये चरित्र अथवा उनके अनुमोदित चरित्रों पर 'विश्वास' की छाप लगाकर—मानवों के लिये विश्वस्त ग्राह्य पथ का प्रकाशन, हजरत मोहम्मद साहब ने किया है। कागज के भाग्य बड़े हैं जिन पर यह 'हदीसें' आज उपलब्ध हैं। वे मानव धन्य हैं जिन्हें ऐसा आवश्यक धन सुलभ हुआ है।

'ह' अक्षर मुहमद साहब के चरित्र की इस बात को सार्थक करता है कि वह कल्याणकारक दृढ क्षमता से युक्त हैं; यदि मानवता को प्रयास रूपी जल से नहीं भी सींचा जाये तब भी हजरत मोहम्मद साहब की तपस्या से मानवता का तन, सदैव हरा—भरा रहेगा ही।

'म' अक्षर से इन्हें पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ मणिभूत माना गया है। वे समस्त नबियों में अलङ्कारभूत हैं। 'द' अक्षर से उन्हें, समस्त अपराधों से होने वाले दुःखों का भी, खण्ड—खण्ड करके विनाश कर देने वाला बताया गया है। इस लोक और परलोक दोनों में, हजरत मोहम्मद साहब के बिना और कोई शरण—स्थल नहीं है।

**दोहा—2 :**

अबाबकर दूसर ऊमर, तीसर है उसमान।
अली मिंत हजरत नबी, चतुर जान कहि जान॥

**अर्थ**—जान कवि चार नबियों (खलीफाओं) को उच्च प्रकार का मानते हैं। प्रथम हजरत अबूबकर हैं, द्वितीय उमर हैं। तृतीय हजरत उसमान हैं और चौथे हजरत अली साहब हैं। इन चारों नबियों के आदर्श और चरित्र सर्वोत्कृष्ट हैं।

**चौपाई—2 :**

पहिलैं कथा कथी कंवलावति। पाछै कही पुंरंदर रावति।
भाषी बहरू बात कनकावति। अब सुनहु कौतूहल गावति॥

**अर्थ**—जान कवि कह रहे हैं कि पहले 'कंवलावती कथा' कही थी। उसके पश्चात् पुरंदर-रावत की कथा कही थी। इसके पश्चात् 'कनकावती-कथा' कही थी। अब, यहां कौतूहल नाम की नारी की कथा गा कर कही जा रही है।

**उन मै छंद दोइ के तीन। यामै बहु समझौ परबीन।**
**कौतूहल ऊपज्यौ चित जान। कौतूहल कौं कियौ बषांन।।**

**अर्थ**—अब तक जो उपर्युक्त तीनों कथायें गाकर कही गई हैं, उनमें दो या तीन प्रकार के छंदों का ही प्रयोग हुआ है। अब इस 'कथा-कौतूहल' में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है। प्रवीण-जन इस कथा में प्रयुक्त विध-छंदों पर ध्यान दें।

**जहाँ जुरै सोचित सौं जोरि। लेहु संवारि जहां ह्वै षोरि।**

**अर्थ**—जहां भी आवश्यकतावश किसी संदर्भ या किसी आरोह-अवरोह वाले अक्षर को जोड़ने की उपादेयता प्रवीण-जन अनुभव करें, उसे अपने चित्त में विचार करके, सुधार संशोधन- इस काव्य कथा में कर लें। जानकवि का विनम्र अनुरोध है कि सुधीजन इस काव्य में, यदि दोष प्राप्त करें तो उस दोष को दूर करने की कृपा करें।

**दोहा-3 :**

**कबिता कौ मन जान कहि, जौ जौरत बांट्यौ जाइ।**
**जो कहुं तौ अन बन रहै, चातुर लेहुं बनाई।।**

**अर्थ**—जान कवि कहते हैं, कविता के प्रति दूसरे जनों के मन को आकर्षित करने के लिए श्रेष्ठ 'काव्यत्व' हृदय की साधना की शक्ति से उत्पन्न होता है। मैं अपनी क्षमतानुसार ध्यानपूर्वक काव्य-रचना कर रहा हूँ; इतने पर भी यदि काव्यत्व में कोई दोष रह जाये तो चतुर (कुशल) जन कृपया मेरी कविता को सुधार कर पढ़ लें।

**चौपई-3 :**

**चन्द्रसैन राजा हो कोऊ। राज तेज बनाये दोऊ।**
**नांव हुलास पुरी तिहि गांव। मन बंछित लहिये ऊहिं ठांव।।**

**अर्थ**—किसी समय चन्द्रसेन नाम का राजा था। उसका राज्य भली-भांति स्थापित था और उसका प्रभाव भी अच्छी प्रकार से प्रजा पर तथा आस-पास के अन्य राजाओं पर भी स्थापित

हो गया था। वह राजा प्रभुसत्ता सम्पन्न था। हुलासपुरी गांव में, राजा की राजधानी थी। उस गांव के हाट में मन वांछित वस्तुयें क्रय करने के लिए उपलब्ध हो जाया करती थीं।

**तामधि नैक न होई अनीत। ऐसी गही धर्म की रीति।**

**ताकै धन अनगन छवि सागर। रतन जोत पै सबतें आगर।।**

**अर्थ**–उस राजा ने राजधर्म के अनुसार राज्य संचालन कार्य अपनाया था, इस कारण से उसके राज्य में, अल्प मात्रा में भी अनीतिपूर्ण आचरण, कोई जन नहीं करता था।

उस राजा की अगणित स्त्रियां थीं। उसकी समस्त सुन्दर स्त्रियों के शोभा समुद्र में एक रतनजोत नाम की रानी अग्रगण्य थीं, जो कि उस शोभा सम्पन्न रानी रूपी जल की अथाह (असंख्य रानियों की) राशि के समुद्र में, रत्न की ज्योति के समान सर्वश्रेष्ठ शोभा को प्राप्त हो रही थी।

**ताहि जठर तें ऊपज्यौ नंदन। सब जग आवै ताकौ बंदन।**

**ताकौ नाम आहि सरबंगी। कीनौ है करता बहु अंगी।।**

**अर्थ**– उसी रानी की कोख से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। समस्त जग के लोगों ने राजकुँवर के जन्म पर आकर उसका वन्दन किया। उसका नाम सरबंगी रखा गया। कर्त्ता ने उसे समस्त श्रेष्ठ प्रकार के अङ्गों से परिपूर्ण बनाया था।

**दोहा–4 :**

**मोहन सोहन ससि बदन, गोहनि लाग्यौ प्रान।**

**ऊजियागर आगर चटक, चौदहि बिद्यानिधान।।**

**अर्थ**–यह राजकुमार सरबंगी, अङ्गों की सुन्दरता के कारण मोहक एवम् शोभायुक्त था। उसका मुख चन्द्रमा की शोभा को धारण करता था। उसके शरीर में अब महाप्राणता शक्ति का गुम्फन होने लगा था। वह क्रिया–कलापों में तीव्र वेग का परिचय देता था। रूप की दमक से उज्ज्वल तेज–सम्पन्नता का भान कराता था। वह चौदह प्रकार की विद्याओं का पूर्ण परिज्ञाता था।

**दोहा–5 :**

**सास्तर बेद दवा मंत्र सुरः, जोतष कवि नट ग्यांन।**

**धन असुभाव – रसाइनी, तन सुध तंत्र बिनान।।**

**अर्थ**–उसने वेद एवं समस्त शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लिया, साथ ही दवाओं, मंत्रों एवं स्वरों का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था। उसने ज्योतिष, कविता और नटविद्या का अध्ययन करके प्रायोगिक ज्ञान भी प्राप्त किया। उसने परम सौभाग्यदायिनी योग, रसायन और तन्त्र विद्या का भी अभ्यास पूर्वक ज्ञान अर्जित कर लिया था। तन्त्र–ज्ञान के बिना तन में, आत्मा का सर्वश्रेष्ठ गुण स्मृति–धारण करना प्राप्त नहीं होता है।

**चौपई–4 :**

**येक द्यौस कुँवर सरबंगी। चढ्यौ अहेरैं संग बहु संगी।**
**बाज येक कर ऊपर बैठ्यौ। असुर चढ्यौ पौरी में पैठ्यौ॥**

**अर्थ**–एक दिन राजकुमार सरबंगी ने, महल में, समस्त शिकारी दल के लोगों को अपने साथ ले लिया और शिकार के लिये जाने को तैयार हुआ। सरबंगी राजकुमार एक अश्व पर सवार हुआ। उसके एक हाथ पर प्रशिक्षित बाज बैठा था। इस प्रकार अश्व पर सवार राजकुमार निवास भवन से चल कर बाहरी द्वार की पौल में पहुँचा।

**देखे द्वै परदेसी ठाढे। फिरि फिरे मते करत है गाढै।**
**हरे हरे कछु कहत छपाति। कुंवर कह्यौ मेरी ही बात (तै)॥**

**अर्थ**–राजकुमार सरबंगी ने वहाँ दो परदेशी व्यक्तियों को खड़ा हुआ देखा। वे दोनों व्यक्ति बारम्बार आपस में कुछ गम्भीर विचार–विमर्श कर रहे थे। कुंवर ने अपने मन में यह कहा कि ये दोनों रहस्यमय तरीके से भी बात कर रहे हैं जो मुझसे सम्बन्धित है।

**छरीया टेरि बात ये भाषी। इन दहुंवन कौं नीकौं राषी॥**

**अर्थ**–आखेट के लिये जाते हुए राजकुमार ने द्वारपाल को बुला कर उससे यह बात कही कि इन दोनों को सत्कारपूर्वक महल की अतिथिशाला में ठहरा लो।

**दोहा–6 :**

**जब हम फिरि कैं आइहैं, ऊंमंगिन खेलि अहेर।**
**तब सब बातैं पूछिहौं, अपने ढिंग ऊन टेरि॥**

**अर्थ**–राजकुमार ने आदेश दिया कि हम उमंगपूर्वक आखेट के पश्चात् जब पुनः लौट कर आयेंगे, तब इन दोनों व्यक्तियों को अपने पास में बुला कर समस्त बातों को पूछ लेंगे।

चौपई–5 :

नीकै बाज, हनी मुरगाई। धूती लेटहि लै लै आंई।

बहरी जुरा और साहीन। सिकरा वासा पुनि बासीन।।

**अर्थ**–आखेट (शिकार) में, बाजों (हाक) ने भली प्रकार से मुरगाबियों को मारा। 'धूती' शिकारी चिड़ियाँ, लेटों (पिडुकियों, फाख्ताओं) को पकड़–पकड़ कर ले आई।

शिकारी दल में प्रशिक्षित शिकारी पक्षी–बहरी, जुरा, शाहीन, शिकरा, बाशा (बादशाह–बाज) और बासीन पक्षी–कौशल दिखा रहे थे।

चिपक बेसरे तुरमति लगरे। उडे देखि पांछिन कौ सगरे।

मारे तीतर लवा बटेर, औ बहु षेचर आने घेरि।।

**अर्थ**–चम्पक (चिपक बाज), बेसरे, तुरमति और लगरे, आदि सभी प्रशिक्षित शिकारी पक्षियों को पकड़ने के लिये, उन्हें देख कर पीछा करने के लिए उड़े। इन सभी शिकारी पक्षियों ने, तीतर, लवा (लार्क) बटेर मारे तथा अन्य बहुत से पक्षियों को आकाश में घेर कर पकड़ लिया।

म्रिगराज नीकैं म्रिग मारे, षरहा पकरत स्वान निहारे।।

**अर्थ**–आखेट–दल के प्रशिक्षित शेरों ने कुशलतापूर्वक अनेक पशुओं को मारा; आखेट में राजकुमार ने शिकारी कुत्तों द्वारा पकड़े जाते हुए, वन्य खरगोशों (खरहों–बादामी रंग के होते हैं) का अवलोकन किया।

दोहा–7 :

लग्यौ अहेरौ रंग्यौ मन, आनंदन कौ रंग।

अंग अंग सरबंग कैं, बाढी महा तरंग।।

**अर्थ**–आखेट के खेल में उस सरबंगी का मन रम रहा था। वह ऐसा आनंदित था कि उसके अंग–अंग में महा उत्साह की तरंगें उमड़ रही थी।

चौपई–6 :

कुंवर अहेरै तें जब आये। दोऊ अपने निकटि बुलाये।

बहुत बुरौ मैं तुमसौं कीनौ। घरी दोइकौ संकट दीनौ।।

**अर्थ**–जब राजकुमार शिकार खेल कर वापिस आये, तब उन्होंने, उन दोनों परदेशी व्यक्तियों को अपने पास में बुला लिया। राजकुमार ने कहा कि मैंने तुम दोनों के साथ बुरा अमानवीय व्यवहार किया है। कुछ समय के लिए आपकी आकांक्षा पूर्ति की अपेक्षित बातें नहीं पूछी और अपने मनवांछित शिकार क्रीडा को पूरा करने चला गया था। इससे आपको कुछ समय तक कष्ट सहना पड़ा।

**दुहुवन कह्यौ सुनहु सुतराज। जागे भाग हमारे आज।**

**चरन परस सरसे हम दोऊ; पाप संताप रह्यौ नहीं कोऊ॥**

**अर्थ**–दोनों ही आगन्तुक परदेशी व्यक्तियों ने कहा, हे राजकुमार, सुनो! आज आप जो आदरपूर्वक ठहरा कर और बुलाकर पूछ रहे हैं, इससे यह स्पष्ट प्रमाणित हो रहा है कि आज हमारा भाग्य उदय हो गया है। आपके चरणों का स्पर्श करके हम आनंदित हैं। हमारे मन में अब यह शंका नहीं रही है कि शायद हमने कोई पाप किया होगा जिसके कारण, राजकुमार आखेट से लौट कर जाने क्या सजा देंगे? अब कोई मानसिक सन्ताप नहीं रहा है।

**धन–धन–धन–धन आज महूरत जायैं। देखी यहु सुख मूरत॥**

**अर्थ**–आज का यह मुहूर्त परम सौभाग्यदायक है, जिस में कि आपकी सुखप्रदायिनी ऐसी शुभ भावों से युक्त मूर्ति देखने को मिल रही है।

**सोरठा–1 :**

**सोच चटपती चिंत ये क्वै, क्वै तन मैं ना रही।**

**जब तैं देख्यौ मिंत, सुषही चरित्र भरि जान॥**

**अर्थ**–आशंकाओं के कारण पूर्व में संताप देने वाली कोई उग्र चिन्ता अब तन (मानस) में शेष नहीं रही है। जब से आपको मित्र के रूप में बोलते और व्यवहार करते देखा है, तब से सुख का ही अनुभव हो रहा है।

**चौपई–7 :**

**अन अन भांति मंगाये भोजन। चाषत रीझि रहे अति दो जन।**

**मीठे षाटे लौंन सलौने। ऊमग बढ़ावैं अंग–अंग चौने॥**

**अर्थ**–राजकुमार ने दोनों व्यक्तियों के लिये विशिष्ट प्रकार के स्वादिष्ट भोजन मंगवाये जिनके

आस्वादन से ये आप्यायित हो गये। उनमें कोई तो खट्टे, कोई मीठे और कोई नमक से सलौने बने थे। वे भोजन उमंग बढ़ाने वाले और अंग–अंग में दमक उत्पन्न करने वाले थे।

**बहुत सधाने हरिता बात। महा अमोलक करता घात।**

**अंचवत उपजत हरष हुलास। कर धोये ना मिटत सुबास।।**

**अर्थ**–राजकुमार ने अतिथि सत्कार की शिष्टाचार की रीति से उनके मन को प्रसन्न करने के लिये, सान्त्वना देने वाली सधी हुई, प्रिय बातें उनसे कहीं। वास्तव में धाता (विधाता) महा अमोलक प्रसन्नता देने वाले हैं। भोजन करते करते, उनमें शीघ्र उमंग उत्पन्न होती चली गई। उन्होंने भोजन करने के पश्चात् हाथ धो लिये थे, किन्तु उनके हाथों की (भोजन को स्पर्श वाली) सुगन्ध समाप्त नहीं हो रही थी।

**अविरल छंद–1 :**

**मुष रंजन लौ ऊन कौ कर दें। पुनि आपुन रौ मन आनंद मैं।**

**अर्थ**–राजकुमार ने उन दोनों व्यक्तियों का अनुग्रहपूर्वक अतिथि सत्कार करते हुए, भोजन के उपरान्त, मुख का प्रसादन करने के लिये, पान–इलायची आदि वस्तुयें तक अपने हाथ से खाने–चबाने को दीं। इसके पश्चात् स्वयं ने भी उक्त वस्तुएं आनन्दपूर्वक स्वीकार की।

**चौपई–8 :**

**कुंवर मंगाई बीन सुरंकीन। भलै बजाइ बहुरि सुरलीन।**

**गाइन की जोति कही नहीं आवै। सुनत सुकाज छांड़ि छवि उठि धावै।।**

**अर्थ**–तदनन्तर राजकुमार ने, तब अपनी सुरीली बीन मँगवा कर हाथ में ली और विभिन्न रागों को सस्वर भली प्रकार से बजाया। गायन की ध्वनि (नाद) का प्रभाव आश्चर्यजनक था, जिसका वर्णन करना कठिन है। जो कोई उस ध्वनि को सुनता था, वह अपने कार्य को छोड़ कर, बीन की ओर ही आकर्षित हो कर चला आता था।

**पंछी हूँ बैठे ढिंग आइ। उडि न सकै, रहि है मुरछाइ।**

**भावै कौऊं गहि गहि लैहु। उड़त न नैक होत इमिं नेहु।।**

**अर्थ**–पक्षी भी ध्वनि से अनुरंजित होकर राजकुमार के समीप आ कर बैठ गये। वे ऐसे मुग्ध हो गये थे कि उड़ने की स्थिति में नहीं रहे थे। किसी को मन में अच्छा लगे तो, उन मुग्ध हुये

पक्षियों को वह एक–एक करके पकड़, भले ही ले, वे पक्षी ध्वनि में स्नेह–सिक्त होने से तनिक भी उड़ते नहीं थे।

**रीझ्यौ कुँवर आपुनै ग्यान। बहुत दयौ ऊन दहुवन दान।**

**अर्थ–** कुँवर स्वयं भी, अपनी ध्वनि में, निमग्न हो चुका था। गायन के पश्चात् कुँवर ने, उन दोनों व्यक्तियों को प्रचुर दान दिया।

**दोहा–8 :**

**बहुरि कुंवर उन्हस्यौं कह्यौ, तुम्हें सौंह करतार।**
**साँच कहौ रहि हौ कहां, आये कौन विचार॥**

**अर्थ–**इसके पश्चात् राजकुमार ने, उन दोनों व्यक्तियों से कहा कि तुम्हें विधाता की शपथ है, तुम दोनों सच–सच बता दो कि कहाँ के निवासी हो और क्या विचार लेकर यहाँ आये हो?

**चौपई–9 :**

**सुनहु कुँवर पूछहु जौ टेरि। हम दोऊ रहि हैं छबि नेरि।**
**जांत पांत बनजारे आहि। बन ज्यौं, चाहै, आयें ताहिं॥**

**अर्थ–**उन दोनों व्यक्तियों ने उत्तर दिया, हे राजकुमार! जब तुम स्वयं बुलाकर हमसे पूछ रहे हो तो सुनो। हम दोनों 'छबिनेर' नगर के रहने वाले हैं। जाँति पाँति से हम बनजारे हैं। जिस भी नगर की ओर पहुंचने का हृदय में विचार आ जाता है उसी स्थान पर हम आकर पहुँच जाते हैं।

**कुँवर कह्यौ तब मोहि निहार। दुहुवनि कीनौ कहा विचार।**
**कानधर हूं कुंवर सरबंगी। बहु जग देख्यौ हम द्वै संगी॥**

**अर्थ–**इसके पश्चात् राजकुमार ने पूछा कि जब मैं आखेट के लिए जा रहा था उस समय द्वार पर मुझे देखकर तुम दोनों आपस में क्या विचार–विमर्श कर रहे थे? ऐसा पूछे जाने पर वह दोनों कहने लगे, ''हे राजकुमार सरबंगी! हमारी बात को ध्यानपूर्वक सुनिये कि हम दोनों ने साथ–साथ घूम–घूम कर बहुत से स्थलों को देखा है।

**तो सौ रूपवंत जगमाहिं, अबलौं कौढ़ि आयौ नाहिं॥**

**अर्थ–**तुम्हारे सदृश, इस प्रकार का सुन्दर रूपधारी व्यक्ति, अब तक कहीं भी कोई भी दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।

दोहा–9 :

फिरे बहुत हम द्वै जनें, प्राची और प्रतीच।
तो सम द्रिठ आयौ नहीं, दाछिन और ऊदीच।।

**अर्थ**–वे दोनों व्यक्ति कहने लगे, ''हम दोनों जने पूर्व में नगरों और स्थलों पर बहुत घूमे हैं, पश्चिम दिशा के नगरों और स्थलों पर घूमे हैं, दक्षिण दिशा के नगरों और स्थलों पर घूम आये हैं; साथ ही हमने उत्तर दिशा के नगरों और स्थलों पर भी बहुत अधिक घूम–घूम कर अनुभव किया है कि तुम्हारे सदृश कोई दूसरा सुन्दर व्यक्ति उपलब्ध नहीं है।

चौपई–10 :

बहुर सुरत आई इक कँवर। तहां जाइ भूल्यौ मन भंवर।
तुम्है देखि सोच्यौ जिय मांहि। बाबिन और जोर कौं नाहिं।।

**अर्थ**–उस समय तुमको आखेट के लिये जाते समय देख कर और तुम्हारी निराली सुन्दरता देख कर हमें एक सुन्दर राजकुमारी की स्मृति आ गई। हमारा मन रूपी भ्रमर उसके रूप–सौन्दर्य का अवलोकन करने में निमग्न हो गया था।

रहिबौ आहि ताहि छबि नैर। को समुद्द छबि सकि है पैर।
है जग रूप नांव तिहि तात, रूप सरिस नांव है मात।।

**अर्थ**–तुम्हारे रूप पर विचार करके हमने अपने हृदय में विचार किया कि तुम्हारे रूप की समता करने वाली उस राजकुमारी के अतिरिक्त दूसरी कोई भी नहीं हो सकेगी। वह सुन्दरी राजकुमारी छबिनेर में निवास करती है, उसके रूप सौन्दर्य समुद्र की अथाह सीमा को कोई अपने रूप बल की शक्ति से तैर कर पार नहीं पा सकता है। उसका रूप–सौन्दर्य अवर्णनीय है। उसके पिता का नाम जगरूप है। उसकी माता का नाम रूपसरिस (रूप सदृश) है।

दोहा–10 :

ताहि सुता निरमल बदन, कौतूहल दे नांव।
छबि चाभी कर बासु, अहि बिथुर रही सब ठांव।।

**अर्थ**–इन दोनों की वह पुत्री, निर्मल मुख वाली है, उसका नाम कौतूहल दे है। चन्द्रमा की शोभा से सम्पन्न उसकी रूप शोभा है। उसके सम्पूर्ण अङ्गों में चन्द्र किरणों की शोभा व्याप्त हो रही है।

**चौपई–11 :**

**अबहि सुनहु ताकी तुम बात। पूजै मास बाग में जात।**

**रैन रेरीया रेर किराहिं। पुरस छांड़ि घर बाहर जाहिं।।**

**अर्थ**–अब तुम उस राजकुमारी के विषय में सुनो कि वह प्रत्येक माह में पूजन के लिए वाटिका में जाती है। राजकुमारी पूजन के लिए बाग के रास्ते पर प्रातःकाल जाया करती है। उस प्रातः समय से पहले ही रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही उस मार्ग पर आवाज लगाकर (मुनादी करने वाले) लोग तेज स्वर के साथ कहते हुए घूमते हैं कि प्रातः होने से पहले ही यहाँ रहने वाले पुरुष घरों से निकल कर बाग से बाहर चले जायें।

**पंथ माहि मानस डिठ आवैं। महापंथ कौं ताहिं चलावैं।**

**जौ बहु पुरष न देखै बारी। तुम्ह कैसैं छबि ताहि निहारी।।**

**अर्थ**–यदि राजकुमारी के पूजन के लिये जाते समय उस मार्ग पर कोई भी पुरुष दिखाई पड़ जाता है तब राजकुमारी के अङ्गरक्षक उसे मार डालते हैं। राजकुमार ने पूछा कि जब कोई पुरुष उस राजकुमारी को बाग में जाते समय देखने में समर्थ ही नहीं हो पाते हैं तब यह स्पष्ट करके बताओ कि तुमने राजकुमारी की रूप–शोभा का अवलोकन किस विधि से कर लिया।

**सुसा हमारी करि है सेव। तापै हम पायौ यह भेव।**

**अर्थ**–उन दोनों ने कहा कि हमारी सुसा (साली) उस राजकुमारी की सेवा में नियुक्त रहती है। उससे ही हमें यह रहस्यभरी जानकारी प्राप्त हुई है।

**सवईया चौपई–2 :**

**ये बी कहु मानस़ है, ऐसी छबि होति है,**
**नगन की दंगन, कि जगन जुन्हाई कैसी विदुत की दुति।**
**कीधौं दीपग ऊदौति है, कलधूत भांति तन–कांति, सांत प्राननि की,**
**कै तो कहि जान, सिझिल कांत ससि जोत है मैन की।**
**कि मैन का, सुकेसी, ऊर बसीरंभ,**
**कैं तो घ्रिताची कै तिलोतमा कै गोत हैं।**
**दई–दई कैसी, सोभा नई–नई दई, पई।।**

**अर्थ**—राजकुमारी की रूप शोभा निराली है। उसकी रूप शोभा ऐसी निराली है कि मनुष्य जाति की नारी में ऐसा सौन्दर्य प्राप्त होना असम्भव है। उसके तन की शोभा ऐसी है कि दृष्टि जैसे नगीने (रत्न) को देख रही हो। उसके रूप की दमक ऐसी है जैसे विद्युत् की चमक होती है। उसके तन की दीप्ति ऐसी है, जैसे कि दीपक की ज्योति जगमगा उठती है। उसका तन स्वर्ण (कंचन) के सदृश उज्ज्वल आभा लिये हुए है। जान कवि कहते हैं कि शान्त प्राणों में क्रान्ति उत्पन्न कर देने वाला उसका रूप झिलमिल करता हुआ प्रिय लगता है। उसके तन में, चन्द्र-सदृश रूप-सौन्दर्य-ज्योति है जो कामदेव का प्रभाव फैलाने में सहायता करती है। वह इतनी सुन्दर है कि मेनका, सुकेशी, उर्वशी, रम्भा, धृताची और तिलोत्तमा आदि अप्सराओं में से किसी न किसी के गोत्र में उत्पन्न हुई ज्ञात होती है। हाय, रे हाय! कैसी रूप शोभा उसने विधाता की दी हुई प्राप्त की है।

**कवित्त–1 :**

**चंद कवल अहि भंवर मीन म्रिग बिंब पंवारी,**
**भ्रिंग धनुष तिलफूल सुक सिषी कोकिला कारी।**
**पंचानन म्रिगराज कुंभ हरि बिद्रुंमपा,**
**जल भौंरी गंभीर हंसराज कंचन चंपा।**
**मुख बार चांषि अधरजु मौंह नक कंठ कटि कुच रद नाभ गनि,**
**चलिनि अंग मूरति, मदन द्वै द्वै उपमा जान भंनि।**

**अर्थ**—जान कवि कहते हैं कि उस राजकुमारी के रूप में कामदेव प्रभावी हो रहा है। उसके अङ्गों में जो जो विशेषतायें हैं उनकी उपमा अग्रलिखित प्रकार से वर्णित की जा सकती है:-

उसके मुख की शोभा चन्द्र के समान है। उसके तन में कमल सदृश मृदुता लिये शोभा व्याप्त है। उसकी वेणी (चोटी) नाग सदृश है। आँखें मछली के सदृश सुशोभित हैं। उसकी आँखें मृग जैसी हैं; वह मृगनयनी है। उसके ओष्ठ बिम्बफल के सदृश लाल रंग के हैं। उसके होठों (ओठों) का आकार पंवार की फली के सदृश है। भ्रू-भङ्गिमा धनुष के समान सुंदर और प्रभावी हैं। उसके कपोल पर तिल, फूल के सदृश-शोभायमान है।

राजकुमारी कौतूहल दे की नाक तोते की नाक के सदृश सुन्दर आकार वाली है। उसकी आवाज, केकी (मयूरी) के सदृश तीक्ष्ण है। वह काली कोयल के समान मीठी बोली बोलती है।

समस्त पशुओं के राजा सिंह के समान, उसकी कटि पतली है। उसके कपोल, रूप–सौन्दर्य भरे कुम्भ के सदृश हैं, जिन पर प्रसादन युक्त मूँगे सदृश कान्ति विकसित हो रही है। उसकी नाभि की शोभा ऐसी है जैसे कि अथाह जल में गहरी भँवर पड़ रही हो। उसकी गमन–गति, गज एवं हंस के सदृश सुन्दर है। शरीर की शोभा, चम्पा और कंचन के सदृश सुगन्धित और स्वर्णिम दमक सम्पन्न है। उसका रूप–सौन्दर्य मुख की सुन्दर अवार के कारण मोहक, नयनों और अधरों के कारण,क्षीण कटि के कारण, उरोजों की शोभा के कारण, दाँतों के सुन्दर स्वरूप के कारण, किसी को भी, अपने रूप समुद्र में निमग्न कर देने वाला है। पुनः वह अपने अङ्ग–अङ्ग की चाल–ढाल से कामदेव की साक्षात् प्रतिमा बनी हुई है। जान कवि का कथन है कि उन्होंने श्रेष्ठता से दो–दो उपमायें अंग–अंग के सौन्दर्य के वर्णन में प्रयुक्त की हैं।

**गैनंद छंद–1**

**चाँच सौ मुख छाजि है, तिय मिग्र लैसे नैन।**
**सिंघ कैसी कटि बिराजै, नाग कैसी गैन।।**
**बार कारे भंवर से, पिक मोर कैसे बैंन।**
**कवि जान अछिर इंद कैसी किद्यौ मूरति मैन।।**

**अर्थ**–राजकुमारी का चोंच सदृश छोटा सा मुख, शोभा लिए हुए है। उसके नयन मृग के समान सुन्दर हैं। उसकी कमर (कटि) सिंह के समान क्षीण है। अतः शोभा सम्पन्न है। उसका गमन हाथी के समान है। उसके बाल, भौंरे के समान कालिमा से युक्त हैं। उसके बोल, कोयल और मोर के सदृश मधुर व तीक्ष्ण हैं। जान कवि कहते हैं कि रूप–शोभा–सम्पन्न वह राजकुमारी या तो इन्द्र की अप्सरा के समान है अथवा कामदेव की मूर्त्ति बनकर विराज रही है।

**पिटक छंद–1 :**

**लिल चान लंक षन्ध घंसुलिका।**
**सजपन कंठी बिरंसित अरा।**
**चतुर खिर जोरि अरथ करा!**
**कहि जानै बिचारहु अंग दरा।।**

**अर्थ**–उसकी कटि की शोभा, स्कन्धों की सुन्दर बनावट, अभिराम हंसली एवं गले की सुन्दर

बनावट, उसकी आँखों की भौंहों और पलकों की बरौनियों की सुन्दर बनावट, अङ्गों के जोड़-जोड़ की रचना में, जो रूप-निर्माण कौशल भरा हुआ है वह सार्थक रूप का प्रभावोत्पादक है; उसका ऐसा रूप-सौन्दर्य किसी के भी हृदय में लालच उत्पन्न कर देने में सक्षम है। जान कवि का कथन है कि उसके अङ्गों की बनावट उसके आकार-प्रकार का अनुपात आदि विचारणीय है।

**चौपई-12 :**

**छबि बषान कीनौ बनजारन। बिगर अजिर भयौ कुंवरहि आरन।**
**कुंवर भयौ बिन देखैं जैसो। देषैहूं कौउं होतन ऐसौ।।**

**अर्थ**—जब बंजारों ने राजकुमारी की अनुपम रूप-शोभा का वर्णन किया, तब कुँवर के हृदय में उससे मिलने के लिए व्यग्रता उत्पन्न हो गई। उस राजकुमारी को देखे बिना ही, राजकुमार जिस प्रकार से उसके रूप के प्रति आकर्षित हो गया था वैसा किसी सामान्य सुन्दरी युवती को साक्षात् देखकर भी आकर्षित नहीं होता।

**नाव सुनत ही मोह्यौ ऐसे। दिस्ट परै धौंह्वै है कैसे।**
**नेह नीर जब सिर पर बह्यौ। तबहिं जाय राजा सौं कह्यौ।।**

**अर्थ**—वह उस कौतूहलदे का नाम सुनकर भी इस प्रकार मोहित होने लगा था; फिर यदि राजकुमार उसे अपनी दृष्टि से देख ले तब तो उसकी दशा किस प्रकार की हो जायेगी। जब राजकुमार पूर्णरूपेण कौतूहल के नेह में निमग्न हो गया, तब उसने राजा के पास उनसे विनम्र निवेदन किया।

**आइस देहु सेल हौं जाऊं। तातैं-सीरै की सुधि पाऊं।**
**येक बेर देखौं जग कौतिंग। दई करै मति सपुनौ सौतिग।।**

**अर्थ**—आप कृपया मुझे भ्रमण-विहार करने की अनुमति प्रदान कर दीजिये जिससे मैं अपने कौतूहलदे के वियोग से संतप्त हृदय को उसके मिलन के उपाय से शान्त कर सकूँ। एक बार जगत् के लिए अनुपम रूप-सौन्दर्य के कारण कौतूहल का विषय बनी, राजकुमारी कौतूहलदे को देख आऊँ। बहुत सम्भव है कि विधाता के कृपा-संयोग से अब तक स्वप्न में दिखाई पड़ने वाली सुन्दरी यथार्थ में मिल ही जाये और सौभाग्य ही सिद्ध कर दे।

दोहा–11 :

पानी चलतौ ही भलौ, बिगरै जौ ठहराइ।
मानस कौ तन मांस कौ, धर्यो–धर्यौ सर जाइ।।

**अर्थ**–जिस प्रकार बहता हुआ पानी ही शुद्ध एवं उपादेय रहता है और ठहरा हुआ पानी सड़ जाता है तथा अनुपयोगी हो जाता है, उसी के समान मनुष्य के मांस से बने शरीर की भी गति ऐसी ही होती है जो मानव तन निरन्तर चल फिर कर उपाय–श्रम करता रहे तो वह जीवन–युक्त रहता है अन्यथा शरीर निष्क्रिय होने से अस्वस्थ होकर नष्ट हो जाता है।

चौपई–13 :

नंदन मेरी बैस निहारौ। तब चलिबै की बात बिचारौ।
कहा जानिये बिछरैं प्यारौ। भैंट न होइ कि नाहिं हमारौ।।

**अर्थ**–राजा ने कहा, ''हे पुत्र! मेरी अवस्था का अवलोकन करो, तब परदेश यात्रा की बात सोचना। क्या पता कि प्यारे पुत्र से वियुक्त हो जाने के बाद (इस प्रकार परदेश की दूर एवं कठिन यात्रा से लौट पाने की आशा पूरी हो या न हो) उससे मिलना हो भी सकेगा या नहीं?

बिरध भयौ तरनापौ गयौ। तामै जिन दैहो दुख नयौ।
कह्यौ बडन कौ लै धरि कांन। बन जन जावंहि रित पहिचांन।।

**अर्थ**–मैं वृद्ध हो गया, मेरी तरुणाई तो पूर्ण रूप से समाप्त हो चुकी है। ऐसी अवस्था में, यह नये प्रकार का पुत्र का बिछोह का दुःख नहीं दो। बड़े (अनुभवी) लोगों की कही हुई शिक्षा को ध्यानपूर्वक मानना उचित है। परदेश की यात्रा पर प्रस्थान करने से पूर्व व्यक्ति (व्यवसायी) ऋतु की पहचान कर कि यह वर्षा के आगमन की ऋतु है; व्यावसायिक यात्रा पर परदेश जाने का प्रयत्न त्याग देते हैं। ठीक प्रकार से परिस्थितियों का पूर्वानुमान करके, तुम भी परदेश जाने का विचार त्याग दो।

दोहा–12 :

चिरंजीव ह्वै राइ जू, तुम्ह हौ जगत अधार।
यौं हम कौं जौ राषिहौ, जीवन दुगम हमार।।

**अर्थ**–राजकुमार ने कहा, ''हे राजन्! आप समस्त प्रजाओं के कल्याण के आधार हैं। हम

शुभकामना करते हैं कि आप दीर्घकाल तक जीवित रहें। इस प्रकार मात्र वृद्धावस्था के कारण यदि इस अभीष्ट परदेश की यात्रा से रोकेंगे तो हमारा जीवन दुर्गति में पड़ जायेगा।

**चौपई–14 :**

**पिता सीष तें रसना गही। अबहि कहन की कछु ना रही।**

**तब वित्त मानस हाथी घोरे। बहुत दये संग, राषे थोरे।।**

**अर्थ**–राजकुमार का प्रत्युत्तर सुनकर पिता ने सीख (शिक्षा) देना बंद कर दिया। अब तो कुछ भी कहा नहीं जा सकता था। तब, राजा ने उसे बहुत अधिक धन, मनुष्य, हाथी आदि प्रदान कर दिये। अपने पास अल्पमात्रा में धन, मनुष्य, हाथी और घोड़े रख लिये।

**महा उमंग चल्यौ सरबंगी। इंछ्या कौतूहल रंग रंगी।**

**केतक दिन पाछै सरबंगी। पुहंच्यौ है छबिनेर उमंगी।।**

**अर्थ**–अब इन सब को साथ लेकर महा उमंग के साथ, सरबंगी ने प्रस्थान कर दिया। उसकी अभिलाषा कौतूहल नाम की सुन्दरी (राजकुमारी) के प्रेम में रंगी हुई थी। कितने ही दिनों के पश्चात् वह उमंग से भरा छबिनेर नगर में जा पहुँचा।

**पुन्य दान करिहै दिन रैन। भूखे नागे पावंहि चैंन।**

**तो सम कहूं न दान दूजौ। बिधना करै इंछ तब पूजौ।।**

**अर्थ**–वह रात–दिन पुण्यशाली दान करने लगा जिससे भूखे–नंगे मनुष्यों को सुख मिला। सभी भूखे नंगे प्राणी उसके दान–पुण्य से प्रसन्न होकर यह कहने लगे कि तेरे समान दानी और समर्थ दूसरा कोई नहीं। विधाता ऐसी कृपा करें कि तेरी इच्छा पूरी हो जाये।

**दोहा–13 :**

**रेर सुनी जिन रेर की, रौर परी ही अंग।**

**रैन रौर साई सुनी, रौर चल्यो सरबंग।।**

**अर्थ**–राजकुमार ने प्रातःकाल से पहले ही देखा कि राजकुमारी के मास–पूजन के समय पूर्व से ही घोषणा करने वाले लोगों की तीव्र आवाज (कि ''पुरुष नगर से बाहर चले जायें'') सुनते ही लोगों के अंग–अंग मे भारी उथल–पुथल एवम् बैचेनी उत्पन्न हो गई थी। ऐसी ही 'रेर' (''अरे अरे पुरुष जनों कोई हो तो नगर से शीघ्र बाहर जायें'') उस सरबंगी राजकुमार ने भी (स्पष्टतः) सुनी, तब वह अत्यन्त तीव्रता से चल दिया।

चौपई–15 :

**कहा करौ यह कुँवर हि चिंत। किहिं बिधि दरसन परसों मिंत।**

**बड़मोले बसतर सब डारे। बसन भगो हैं तन हि संवारे।।**

**अर्थ**–राजकुमार के मन में यही चिन्ता व्याप्त थी कि किसी उपाय प्रयत्न से मैं अपनी प्रिया का दर्शन एवं स्पर्श प्राप्त कर लूँ। राजकुमार ने धारित मूल्यवान् वस्त्र (जो राजकुमार के अनुरूप) थे, उतार दिये और शरीर पर (साधु–सन्यासी के से) भगवा (मंजीठ या गेरू से रंगे हुए) वस्त्र लपेट लिये।

**सोवत भात भगौहनि जागैं। बड़मोले बल द्यौं इन आगैं।**

**करि हौं आपहिं भेष भिषारी। दरस भीष जिन दै है प्यारी।।**

**अर्थ**–भगवा वस्त्रों के तो सोये हुए भाग्य ही इस रीति से जाग गये (कि राजकुमार के प्रयत्न में उपादेय मान कर पहन लिये गये), बड़े मूल्य के वस्त्रों की उपादेयता इन भगवा–वस्त्रों की तुलना में, तुच्छ हो गई। राजकुमार ने निश्चय किया था कि मैं अपना वेश, एक भिक्षुक सदृश बना लूंगा, तभी यह सम्भव हो सकता है कि राजकुमारी मुझे अपने दर्शन की भिक्षा दे देवे। (अन्य विधि से तो शीघ्र बड़ी बाधा आ खड़ी हो जायेगी)।

**चंदमुषी आवन कै पंथ। ठाढौ भयौ दैन को मंथ।**

**जौ हौं जिय को चोर निहारौं। हरषि हुलासन जियै सवारौं।।**

**अर्थ**–इसके पश्चात् वह राजकुमार, चन्द्रमा के सदृश मुख की शोभा धारण करने वाली राजकुमारी के आने के संभावित मार्ग पर पहुंच कर खड़ा हो गया। उसने ऐसा निश्चय कर रखा था कि यदि मैं अपने हृदय को चुराने वाली राजकुमारी का अवलोकन कर लूं, तो मैं प्रसन्नतादायी उत्साह के साथ अपने हृदय को स्वस्थ बना लूँ।

**कोटि जीव हों तौ सुष पाऊं। मरि–मरि जीय जीय नैन मिलाऊं।**

**अर्थ**–यदि मेरे, करोड़ों जीवन हो जायें (मुझे करोड़ों जीवन प्राप्त हो जायें) तो मैं निश्चित रूप से, हर दशा में अमित सुख प्राप्त कर लूं। मैं प्राणों को बारम्बार संकट में डालकर, प्राण–अर्पण करके प्रयास करूँ, मरण के पश्चात् पुनः प्रयास करूं और मर–मर कर, जीवित हो–हो कर पुनः अपनी प्रिया से नयन चार कर सकूं (उसके दर्शन कर सकूं)।

**दोहा–14 :**

**येक जीव नाहिन बंदौ, बिधि पै मांगौ कौरि।**

**मरि मरि जिय जिय मिंत कीं, फिरि फिरि देखौं वोरि॥**

**अर्थ**–मैं विधाता की वंदना करके मात्र एक ही ज़ीवन प्राप्त नहीं करना चाहता हूँ। मैं तो करोड़ों जीवन याचनापूर्वक प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं मर–मर कर पुनः बारम्बार जीवन को प्राप्त कर–करके, पुनः पुनः अपनी प्रिया की ओर ही अभिलाषा के साथ देखना चाहता हूँ।

**चौपई–16 :**

**प्रथम छरिया सनमुख आये। पुरस देखि मारन को धायौ।**

**देखि क्रान्ति कनक सी काया। तब उनके मन उपजी दाया॥**

**अर्थ**–राजकुमार, कौतूहल दे की प्रतीक्षा में खड़ा था, तब उसके सामने पहले तो अङ्गरक्षक सिपाही छड़ी लेकर आये। उन्होंने इस पुरुष (सरबंगी) को देखा तब वे इसको मारने के लिए दौड़ पड़े। समीप आने पर जब उन्होंने राजकुमार की कञ्चनवाली (भगवा वस्त्र धारण किये) कायाकी मनोहर कान्ति देखी तब उनके मन में दया उत्पन्न हो गई।

**दैत की प्रेम कि लगी चुरैल। कूत ही करन कौं आयी सैल।**

**कै बौरा कै तूं मतिबारा। आपुन आन अगनि मै झारा॥**

**अर्थ**–उस पहरेदार को (व उसके साथ के अन्य पहरेदारों को) यही संदेहपूर्ण ज्ञान हो रहा था कि न जाने यह कोई प्रेत है अथवा चुड़ैल सी अनुभव में आती है, जो कि इधर भ्रमण करने आ गई होगी। वे इस प्रकार कहने लगे कि हो सकता है कि तूं या तो कोई पागल है, नशे में धुत्त है, या कि दीवाना है, जो स्वयं ही अपने को यहाँ आग में गिरा रहा है। (अर्थात् यहाँ मारा ही जायेगा।)

**कै तेरै हैं जीय अनेक। यौं न करै ताकै ह्वै येक।**

**कै परदेशी मुध (सुध) बुधहरी। रेर रौर ना कानन परी॥**

**अर्थ**–अथवा फिर ऐसा भी सम्भव है कि तेरे अनेकों जीवन, एक के बाद दूसरा प्राप्त होते रहने की विधि के होंगे जो तूं प्राण संकट में डालने को, यहाँ आया है। जिसके पास एक ही जीवन हो ऐसा व्यक्ति यदि सामान्य से ज्ञान से भी सम्पन्न हो, तो वह ऐसा मृत्यु–कारक–कर्म ग्रहण नहीं

कर सकता है। अथवा तूं कोई ऐसा मुग्ध परदेशी है जिसकी सुधी और बुद्धि विवेक नष्ट हो गया है। ये तो बता कि क्या तेरे कानों में 'मुनादी' (तेज आवाज में सावधान) करके आगाह करने वालों की वह आवाज सुनाई नहीं पड़ी कि ''पुरुष नगर से बाहर निकल जायें।'' ऐसी आवाज तूने अवश्य सुनी होगी।

**दोहा–15 :**

**रेर रौर जौ ना सुनी, अब हम कह्यौ हंकार।**
**बौरे ज्यौ ले भाजि तूं, काहे होत संघार।।**

**अर्थ**–वे बोले–''यदि, वह पुरुषों को नगर से तुरन्त बाहर चले जाने के लिए चेतावनी देने वाली तीव्र आवाज तुमने किसी प्रकार नहीं सुनी हो तो अब हम, चेतावनी के साथ, तीव्र स्वर में कह रहे हैं कि , ''हे बावले व्यक्ति! अपने जीवन को बचाकर, अपने श्रेयस्कर कर्म को पूरा करने के लिए यहाँ से भागकर शीघ्र चला जा! क्यों व्यर्थ में अपना संहार (विनाश) करवा रहा है।

**चौपई–17 :**

**वै तो कहि आगै कौं गौंने। पाछै ऊनतें आये चौनें।**
**धाइ परि काढी करवार। बहुरि देखि छबि उपज्यौ प्यार।।**

**अर्थ**–वे प्रतिहार (द्वारपाल–छड़ीधारी) तो ऐसा कह कर आगे चले गये। उनके पीछे, तेज–तर्रार सैनिक आये। वे राजकुमार सरबंगी को भगवा–वस्त्र में देखकर तलवार म्यांन में से बाहर निकालकर हाथ में लिये हुए, उसकी ओर तीव्र गति से गये। समीप में पहुँचने पर जब उन्होंने राजकुमार की उत्तम भावभरी रूप शोभा देखी, तब वे उस पर मुग्ध होकर उसे स्नेह से देखने लगे। उन्हें उस अनुपम प्यारे के जीवन की सुरक्षा का लालच हो गया।

**बेग छाडि मग जाहि अयानौ। कै काढ़ि है ज्यौ तनहिं पयानौ।**
**बहुरि जूह चेरनि कौ आयौ। कुंवर देखि ज्यो सकल रिसायौ।।**

**अर्थ**–वे सैनिक कहने लगे, अरे अज्ञानी, शीघ्र मार्ग को त्याग कर यहाँ से (दूर) चला जा, अन्यथा तो तेरे तनसे जीवन निकल कर प्रस्थान कर जायेगा। इसके पश्चात् वहाँ दासियों का समूह (झुण्ड) आया। राजकुमार को देखकर वह पूरा समूह क्रुद्ध हो गया।

**तिह छिन कौतूहल दे प्यारी। घोरे चढी नचावत भारी।।**

**अर्थ**–उसी क्षण वहाँ, प्यारी कौतूहल दे, घोड़े पर सवार होकर उसे बहुत प्यार से नचाती हुई, वहाँ आ गई।

**दोहा–16 :**

**जोबन मद औ रूप मद, दम का मद मद ग्यांन।**
**राती माती चार मद, आई तस कर प्रान॥**

**अर्थ**–उस राजकुमार के (हृदय) प्राणों की अपहरणकर्त्री राजकुमारी यौवनमद, रूपमद, धन–मद और ग्यानमद इन चारों प्रकार के घमण्ड में चूर हो रही थी।

**चौपई–18 :**

**पंथ माहि धन पुरष निहार्‌यौ। मार मार ही मुखहिं उचार्‌यौ।**
**बहु छबि देखत ही गिर गयौ। मानहु म्रिगी भैंटन भयौ॥**

**अर्थ**–अपने मार्ग में खड़े पुरुष को, जब उस नारी ने निहारा, तब मुख से, ''मारो–मारो'' यही आदेश दिया। वह राजकुमार तो उस सुंदरी प्रिया की अनुमप रूप–शोभा को देखते ही चैतन्य खोकर, इस प्रकार गिर गया जैसे मानो उसे 'मिरगी' रोग ने ग्रसित कर लिया हो।

**तो पर चेरी सेवा करि है। बी–बी डरि विधि तें ना डरि है।**
**बहुत घाव लागै तन माही। वहु अचेत वाकौ सुधि नाहीं॥**

**अर्थ**–राजकुमारी के साथ ही सहेलियों ने मार–मार कहकर आदेश देने वाली राजकुमारी को चेतावनी के साथ समझाया–कि तूं तो दासियों आदि के बीच सर्वथा सुरक्षित है, चेरी (दासियाँ) तेरी सेवा करेंगी। परन्तु, हे राजकुमारी! विधाता से तो डर; क्या तू विधाता से (मानवीय अपेक्षाओं के प्रति प्राकृतिक–न्याय के अनुरूप उत्तरदायित्व के निर्वहन के लिए) डर, धारण नहीं करेगी। (ऐसे ही अन्य नियम अंतर्राष्ट्रीय ''बसुधैव कुटुम्बकम्'' से सम्भव हो सकते हैं, जिनको जान कवि 'काव्य' के माध्यम से हमारे हृदयों पर उकेरना चाहते हैं)। उस राजकुमारी की, साथ में रही सहेलियों ने राजकुमारी को बताया कि उस पुरुष के शरीर पर बहुत घाव लगे हैं। वह तो अचेत अवस्था में है, अतः उसे तो कुछ भी पता नहीं है।

**काहे की ताकौ सुधि होइ। आपहुं बैठे आपहि खोइ॥**

**अर्थ**–उस प्रकार के व्यक्ति को भला किसी प्रकार का बुद्धि–विवेक कहाँ रह पाता है जो

किसी पर, रीझ कर अपने समस्त सुख आदि को त्याग देता है। स्वयं को किसी में निमग्न करने से, वह स्वयं को तो (किस पद का है धनी है, सुन्दर है, अमुक जाति का है, अमुक सम्प्रदाय का है) पूर्ण रूप से भुला डालता है।

**दोहा-17 :**

**काम क्रोध माया लुबधि, त्रिस्ना घटि घटि माहिं।**

**आप ऊठै जब आपतैं, आप आपकौं जाहिं।।**

**अर्थ**—संसार में काम (निम्न प्रकार की इच्छाओं वाली क्षुद्र, भोग पूर्ण कामनाएं), क्रोध (अपना स्वार्थ पूरा न होने पर), माया (झूँठी चमक-दमक का आकर्षण), लोभ (बारम्बार प्राप्ति हेतु आसक्ति) प्रत्येक माया-आवेष्टित जीव के तन में, प्रभाव जमाये रहती हैं। जब स्वयं के अनुभवसे, बुद्धि और विवेक के प्रयोग से, आत्म-नियंत्रण द्वारा मनुष्य अपने को सही दिशा में, उपर्युक्त दोषों को दूर रखते हुए उन्नति करने की चेष्टा करता है, तब वह स्वयं आत्मवान् हो जाता है।

**चौपई-19 :**

**जबहि कह्यौ इह कंवलन अली। तब कौतूहल दे उठि चली।**

**बैठी जाइ बाग ढिंग ताल। करहि कलोल संग बहुबाल।।**

**अर्थ**—सहेलियों ने, जब स्पष्ट रूप से बताया कि ''यहाँ आया हुआ यह व्यक्ति कमलों की रूप-शोभा पर मुग्ध हुआ भ्रमर है अर्थात् तेरा चाहने वाला है'', तब राजकुमारी कौतूहल दे, उठकर चल दी। वह वहाँ से चलकर बाग के समीप तालाब में जाकर (स्नान हेतु) बैठ गई। उसके साथ ही अन्य बालाओं ने वहाँ अनेकों प्रकार के खेल रचाये।

**जब तजि बाग सदन कौ गई। इहं बतियां की चरचा भई।**

**जिन देख्यौ सो कहै पुकार्‌यौ। कैसौ रूपवंत नर मार्‌यौ।।**

**अर्थ**—जब सभी सखियाँ और राजकुमारी जी, बाग को छोड़कर राजभवन को चली गई, तब उस पुरुष वाली घटना की बातें चर्चा में आईं। जिस किसी ने भी, इस प्रकार घायल पड़े, उस सुन्दर रूप वाले राजकुमार को उस अवस्था में वहाँ देखा, वे सभी इस प्रकार कहने लगे, ''उन लोगों ने कितने सुन्दर राजकुमार को मारा है।''

जबहि बात पुर मै बिथुराई। वाकै किंकर हे सुनि पाई।

आइ धाइ है पे निकट निहारैं। सिर पीटे कोऊ वस्त्र फारै॥

**अर्थ**–जैसे ही यह बात, नगर भर में फैल गई तब राजकुमार के दो अचल निष्ठावान् सेवकों ने भी सुन ली। वे दोनों सेवक तीव्र गति के साथ उस घायल राजकुमार के समीप आ गये। राजकुमार की ऐसी दशा देखकर वे बहुत दुःखी हुए; वे अपना सिर पीटने लगे, कभी वस्त्र फाड़ने लगे।

**दोहा–18 :**

बहुर सोच मन मै कियौ, सदस भये ज्यौ हानि।

बेगि सुषासन डारि कै, डेरैं राख्यौ आन॥

**अर्थ**–उन सेवकों ने बहुत सोच–विचार करके, यह निश्चय कर लिया कि ''यदि विलम्ब हो गया तो राजकुमार के प्राण नहीं बच सकेंगे।'' इस प्रकार विचार करके उन्होंने राजकुमार को विभिन्न उपायपूर्वक, कोई भी कष्ट न देते हुए, उसे सुख मिले, इस रीति से (राजकुमार के पूर्व में स्थापित किये हुए) स्कन्धवार में, ला कर रख दिया।

**चौपई–20 :**

बैद सयाने बहुते आने। औषद किये महामन माने।

जबहिं चैन उपज्यौ, चित कंवर। बहुरि मालती ताकी भंवर॥

**अर्थ**–(राजकुमार के) सेवक जन बहुत से, अनुभवी चिकित्सकों को बुलाकर ले लाये। उन वैद्यों ने अपनी–अपनी बुद्धि के अनुसार औषधियाँ देकर चिकित्सा की। जब राजकुमार ने अपने चित्त में, चैन अनुभव किया, तब उस भँवरे ने पुनः मालती (प्रिया–कौतूहल) की चाह की।

भरि गंठिया दमकन की लीनी। ऊहि ऊपवन की मनसा कीनी।

जाइ बाग सरबंगी पैठ्यौ। माली विरध तहाँ हो बैठ्यौ॥

**अर्थ**–उसने स्वर्ण मुद्राओं से भरी थैली अपने साथ ले ली और उस ही उपवन (बाग) में जाने का निश्चय कर लिया। सरबंगी ने जा करके उसी बाग में प्रवेश किया। जहाँ पर एक वृद्ध माली बैठा हुआ था।

**जाइ कुंवर ऊहि कियौ जुहार। ताहिं जुहारि दये कलदार।**

**अर्थ**—कुँवर ने उस माली को विनम्रता से प्रणाम किया और वहीं पर प्रणाम स्वीकार कर लेने के पश्चात् उसे स्वर्ण की चमचमाती मुद्रायें दीं।

**दोहा–19 :**

**नेह कछू मानत नहीं, भेंटत येती बात।**
**आदर, मान धनाढपन, बस सयानप जात।।**

**अर्थ**—संसार में ऐसा व्यवहार प्रचलित है कि मात्र मिलकर प्रणाम–वन्दन से कोई सामान्य रूप से. स्नेह नहीं करने लगता है। भेंट भी साथ में दी जाये तब 'स्नेह' पोषित होता है। बिना आदर–सम्मान के साथ जो उत्तम सम्पदा का दान दिया जाता है उसमें श्रेष्ठ कुल का परिचय नहीं मिलता है; ऐसी भेंट भी, कि जिसको बिना आदर के साथ दिया जाता है क्षुद्र कुल का परिचय देने वाली होती है और व्यवहार में 'स्नेह' उत्पन्न करने में असफल हो जाती है।

**चौपई–21 :**

**माली कह्यौ कित हू ते आयौ। कौन काज मोकौं सिर नायौ।**
**कंवर कह्यौ हौं तौ परदेसी। नाहिन कोऊ संग सहेसी।।**

**अर्थ**—माली ने कहा, तुम किस स्थान (देश) से यहाँ आये हो। तुम्हारा कौनसा प्रयोजन (काम) है, जिसके कारण इस प्रकार से मुझको आदर प्रदान किया है। राजकुमार ने कहा कि मैं तो एक परदेशी हूँ, मेरे साथ कोई भी हितैषी व्यक्ति नहीं है।

**चिंत पीर को पीर्‌यौ दुषिया। तुम्ह ताके ह्वैबे कौं सुषिया।**
**कल न परै, दिन रैन न निद्रा। छीन भयौ ज्यौ मावस इंद्रा।।**

**अर्थ**—अपने मनोरथ की पूर्ति की चिन्ता में कष्ट प्राप्त करने से अति दुर्बल हो रहा हूँ; तुमको मैंने अपने सुखी होने में सहायक समझा है, इसीलिए आशा से आपकी शरण को निहारा है। मैं बहुत दुखी हूँ। रात–दिन बेचैन रहने के कारण, मुझे नींद भी नहीं आती है। मैं, अमावस तिथि के चन्द्रमा के समान क्षीण (दुर्बल) काया वाला हो गया हूँ।

**कथा बिथा की जौ हौं कथि हौं। तौ सुनिकै थाकै रबि रथ हूं।**

**अर्थ**—यदि मैं, अपनी व्यथा की कथा कहकर सुनाने लगूँ, तो उसको (अनन्त कथा को) सुनते–सुनते सूर्य का रथ भी थककर रूक जायेगा (युग–युग तक कथा का अंत नहीं होगा)

दोहा–20 :

**सावधान हौ जानि गुर, ध्यावन आयौ तोहि।**

**बिनहिंज मनका, मन हरन, कबहूं मिलै तिन मोहि।।**

**अर्थ**–मैंने सावधानी से सोच–समझकर यह निश्चय किया है कि मेरे कष्टों को दूर करने के लिये, समस्या का समाधान करने में, आपके ज्ञान की उपादेयता सुनिश्चित है, इसी कारण से, आपको गुरु मानकर ध्यानपूर्वक आपके द्वारा बताई गई रीति से मैं अपनी समस्या का समाधान प्राप्त करने के लिये आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। मेरे मनोरथ की सिद्धि के मार्ग पर जो पर्दा (आवरण या यवनिका) है, उसको (आपकी सहायता से) हटाए बिना, लक्ष्य सिद्धि नहीं हो सकती है।

चौपई–22 :

**अबहिं मोहि अपनौ करि जानहुँ। होइ पिता करि पूत बखानहुं।**

**माली कह्यौ पूत तूं मेरौ। निहचैं भयौ पिता हूं तेरौ।।**

**अर्थ**–राजकुमार ने माली से विनती की, ''अब मुझे, अपना ही मान लीजिये। स्वयं आप मेरे पिता बन जाइये और मुझे अपना पुत्र कह दीजिये। माली ने कहा, ''तू मेरा पुत्र है और निश्चित रूप से मैं तेरा पिता हूँ।''

**ऊदध सुता सौं ना मन पागत। सुत विन जलनिध सुत सौ लागत।**

**अब मैं जान्यौ पूरे भाग। तो सो नीरज उपज्यौ बाग।।**

**अर्थ**–उदधि के पुत्री है, उससे उसका कोई भी सम्मान तो बढ़ा नहीं है। पुत्र के अभाव में, जलनिधि पुत्र जैसा ही प्रतिष्ठित है। अब, मेरे ज्ञान के अनुसार तो, तू इस बाग को हरा–भरा करके शोभायुक्त बनाने वाला मेघ (कमल या अपार जीवन–जल–दाता) उत्पन्न हुआ है।

**कुंवर कह्यौ मोहि घर ले जाहु। माता हू के पग परसावहु।**

**माली लै मालिन पैं आयौ। ऊनहूं सुत करि पास बिठायौ।।**

**अर्थ**–कुँवर ने माली से कहा, ''मुझको अपने घर ले चलो, मुझे माता (मालिन) के पैरों का स्पर्श करने का सौभाग्य प्रदान करो। माली राजकुमार को अपने साथ ले जाकर मालिन के पास पहुँचा। मालिन ने भी, उसको पुत्र के रूप में मानकर स्नेहपूर्वक समीप में बैठा लिया।

दोहा–21 :

जिह घटि ऊपजै सौ लषै, बिरह पाप संताप।

राजा तें लाज्यौं कुंवर, माली कीनौ बाप।।

**अर्थ**–प्रीति करने पर प्रिय के विरह का सन्ताप ऐसा कष्टदायक होता है कि उससे उत्पन्न पीड़ा का सही अनुभव वही व्यक्ति कर सकता है, जिसके घट (शरीर) में कभी प्रिय के विरह से उत्पन्न सन्ताप ने भारी असह्य कष्ट दिया हो। विरह–जन्य ऐसे ही असह्य कष्ट के कारण उत्पन्न, विवश इच्छा से प्रेमी राजकुमार ने राजा को बाप बनाए रखना त्याग कर, उपादेयता के आधार पर माली को इस समय अपना बाप बना लिया।

चौपई–23 :

कुंवर दई गंठिया दमकन की। बाढ़ी पीति भांति अन अनकी।

दूनौ भयौ प्यार मै प्यार। दमका जगत रिझावन हार।।

**अर्थ**–राजकुमार ने उस माली को एक थैली–भर कर स्वर्णमुद्रायें दे दी थीं; जिसके कारण से, उस माली के हृदय में, अनोखे प्रकार की, सब कुछ समर्पित कर देने वाली (सब कुछ, कहे अनुरूप करने को तैयार हो जाने वाली) रीति की गाढ़ी प्रीति, उसके प्रति उत्पन्न हो गई। उस माली ने दुगुना प्यार उसको दिया। धन का दान, संसार–भर के लोगों को रिझाने में सहायक–कारण होता है।

जबहि कुंवर देख्यौ मन मेल। तबहिं कह्यौ सब अपनौ खेल।

जौ जौ नेह, देह दुख दीनौ। सब माली के आगैं कीनौ।।

**अर्थ**–जब राजकुमार ने, माली के मन की अनुकूलता देखी तब उसने अपनी योजना को सफल करने वाली बातें माली से कहीं। जिस विधि से कौतूहल दे के प्रति उसके हृदय में स्नेह उत्पन्न हुआ, पुनः उसके विरह में, शरीर को कैसे–कैसे कष्ट सहने पड़ रहे हैं; उन सबका वर्णन राजकुमार ने माली के समक्ष, कह कर अभिव्यक्ति (बता) किया।

हा हा पिता मरत मौ ज्यावौहु। ले मधुकर केतुकी मिलावहु।

फंदक कौ डर दूरि निबारहु। जिंहि बिधि लहौं सु बात बिचारहु।।

**अर्थ**–उसने विनम्र और आर्तस्वर में, दीनता से प्रार्थना की, ''हाय–हाय पिताजी। मैं कौतूहल

के वियोग के दुःख में मरा जा रहा हूँ, आप कोई उपाय करके मुझे जीवित बनाये रखिये। आप मुझ दीवाने मधुकर (भँवरे) को इसकी प्रिया, केतकी (कौतूहल दे) से मिलवा दीजिये।'' किसी को पता चल सके उस अवस्था को दूर रखने का उपाय दीजिये, जिस किसी विधि से मैं कौतूहल का दर्शन (से नेत्र स्पर्श) कर सकूँ; वह विधि मिलने की, विचार में लाइये।

**नेह रोग पीरत दिन रैंन। मिलन मूर बिन नाहीं चैंन।।**

**अर्थ**—नेह रोग की पीड़ा मुझे दुर्बल करके पीला (रक्तहीन) बनाए दे रही है। प्रिया से मिलन रूपी मूल (जड़ी–बूटी) औषधि प्राप्त किये बिना, इस रोग की पीड़ा से मुक्ति का चैन प्राप्त नहीं हो सकेगा।

**दोहा–22 :**

**धमनी बिचुली फिरतु है, छूटि छुटि जिय जाइ।**
**पिता भयौ तौ पूत कौ, अब कछु करहु ऊपाइ।।**

**अर्थ**—राजकुमार ने अपनी मरणावस्था के समीप की शारीरिक स्थिति की मीमांसा करते हुए माली से प्रार्थना की, मेरी धमनी रुक–रुक कर यदा–कदा उछाल के साथ प्रवाह–गति करती है जो कि विकृति की अशुभ अभिव्यक्ति है; (नब्ज) नाड़ी छूट–छूट (विलोपित) हो जाती है। जीवन के लक्षण लुप्त हो जाते हैं। जब आप मेरे पिता हो गये हैं; तब पुत्र की रक्षा का, कुछ उपाय कीजिये।

**चौपई–24 :**

**माली कह्यौ भंवर गहि धीरज। दरसाऊंगौ तोकूं नीरज।**
**पैं तू देखि न जीभ ऊधारी। नातर बिगरै बात हमारी।।**

**अर्थ**—माली ने राजकुमार को सान्त्वना देते हुए इस प्रकार का आश्वासन दिया कि हे, दीवाने भँवरे! धीरज धारण करो, मैं तुमको नीरज (कौतूहल दे प्रिया) के दर्शन करा दूँगा। माली ने सावधानी के लिए सचेत करते हुए इस प्रकार का निर्देश दिया कि तुम उस कौतूहल दे को देखकर, जीभ से कुछ भी बोलना नहीं, अन्यथा बनता हुआ कार्य असफल हो जायेगा।

**मोहि बहुत जौ दरस निहारौं। कौन काज कौं जीभ उघारौं।**
**आवै तबहिं अवध जब पूजै। आवति नांहिं मास मैं दूजैं।।**

**अर्थ**–राजकुमार ने माली पिता को आश्वस्त करते हुए इस प्रकार कहा कि मेरे लिए यही बात बहुत सुख देने वाली होगी कि मुझे उसके दर्शन हो जाये; मैं उसका अवलोकन कर सकूँ। मैं भला किस प्रयोजन की पूर्ति के लिए जीभ से बोलूँगा। मैं तो (बात बनाने) प्रयोजन–सिद्ध करने के लिए मौन ही धारण किए रहूँगा। कौतूहल दे माह में निश्चित समयावधि में ही पूजन हेतु बाग में आती है, पुनः माह में दूसरी बार आवागमन नहीं करती है।

**कुंवर हि भयौ जुगन कौ मास। भरत रैंन दिन बड्डे सास।।**

**अर्थ**–अब, राजकुमार के लिए, अगले महीने की, उसके आगमन की अवधि तक की प्रतीक्षा में, उस अगले मास का समय, व्यतीत करना युगों के समान (लम्बा) विस्तृत अनुभव हुआ, वह प्रतीक्षा में, कष्ट की अधिकता के कारण, लम्बे–लम्बे श्वास भरता था।

**दोहा–23 :**

**पिय बिन भैटें येक पल, दूभर महा बिहाइ।**
**पहर धौंस चखि ना परै, तौ द्यौं कछु न रहाइ।।**

**अर्थ**–प्रिय से मिलन के बिना, उसका एक–एक पल महा देरी से और अत्यन्त असह्य कष्ट के साथ व्यतीत हो रहा था। प्रतिदिन सूर्य की कृपा से दिवस उदित होता है उसी से, रात्रि के बाद पुनः आशापूर्ण जीवन का भरोसा प्राप्त होता है। ऐसे भरोसे से राजकुमार का जीवन टिका हुआ था। यदि माली ने प्रिय से मिलवा देने का आश्वासन नहीं दिया होता, तब तो राजकुमार का जीवन कठिन हो जाता।

**चौपई–25 :**

**अवधि मास की पूरी भई। ऊपजी चोंप बाग की नई।**
**रैंन रेर मग मांहि फिराई। भोर भयें उपवन चढ़ि धाई।।**

**अर्थ**–अगले महिने के आगमन तक प्रतीक्षा करते रहने की समयावधि पूर्ण हो गई। बाग में, नई, उमंग भरी सजावट व्याप्त हो गई। प्रातः होने से पूर्व ही रात्रि जब शेष थी तब राजा द्वारा नियुक्त उद्घोषक सम्पूर्ण मार्ग पर घोषणा कर रहे थे (कि पुरुष नगर से बाहर निकल जायें)। प्रातः होते ही कौतूहल दे घोड़े पर सवार होकर तीव्र गति से उपवन की ओर चल पड़ी।

**कौतूहल कौ आवन जान्यौं। माली यह कौतूहल ठान्यौं।**
**सदन येक ग्रीष्म की रित कौ। दाता पवन संतोषन चित कौ।।**

अर्थ–कौतूहल दे राजकुमारी का समीप ही आगमन जान कर माली ने कौतूहलपूर्ण करामात करने का निश्चय कर लिया। उसने बाग में, राजकुमारी के आगमन के मार्ग के समीप में, एक ऐसा सदन बनाया जो ग्रीष्म ऋतु में सुखप्रद था। उसमें पवन के निरन्तर आने से वह सदन चित्त में सन्तोष भरने वाला था।

**संपूरन हो अनगन छेद। कह्यौ बैठि इत देषहु भेद॥**

अर्थ–उस सदन में अगणित छिद्र थे, ऐसे उस सदन में उस माली ने, राजकुमार से बैठ जाने को और वहीं से कौतूहल दे का अवलोकन करने के लिए कह दिया।

**दोहा–24 :**

**अति चाइन सौं देखियहु, बाताइन चित चोर।**
**रसना जौ बसना रही, परि है महा कठोर॥**

अर्थ–माली ने राजकुमार को सचेत करते हुए निर्देश दिया कि तुम सदन में छिपे रहकर, झरोखे में से, अपने चित्त का अपहरण कर लेने वाली उस राजकुमारी को भली–भाँति उत्साहपूर्वक देख लेना; (किन्तु) यदि, तुम्हारी जीभ तुम्हारे नियन्त्रण के बाहर होकर बोल पड़ी, तब तो महा कठोर यंत्रणा झेलनी पड़ेगी।

**चौपई–26 :**

**कौतूहल आइ चित–चाइंन। बैठ्यौ कुँवर तकै बाताइन।**
**अँन बैंन ताराइन चेरी। कर जौरैं ठाढी चहु केरी॥**

अर्थ–उस राजकुमार (चकोर) के चित्त के लिए चन्द्रमा बनी कौतूहल दे, मार्ग पर समीप में आ गई थी। राजकुमार बैठा हुआ, झरोखे में से, उसका अवलोकन कर रहा था। उस चन्द्रमा बनी, राजकुमारी के साथ ही समस्त दासियाँ अपने व्यवहार से तारागण सदृश थीं; वे हाथ जोड़कर उसे घेर कर खड़ी थीं।

**तिन मधि कौतूहल दे बाम। चंद क्रान्ति है मूरति काम।**
**पीवहि सुरा सरोवर नारी। करहि कलोल अनंदन भारी॥**

अर्थ–उनके मध्य में कौतूहल दे, सुन्दरी नारी, चन्द्र कीं सम्पूर्ण कान्ति को धारण किये हुए थी। वह रूप शोभा में, साक्षात् कामदेव की मूर्त्ति बनी थी। वे सभी नारियाँ सरोवर के समीप पहुँच कर, सुरा पीने लगी। वे भारी आनन्द में भरी हुई भाँति–भाँति की क्रीड़ाएं करने लगीं।

कौतूहल दे अति प्रबीन। लगी बजावन लै कर बीन।

देखि देखि गति नार उमंगी। जै जै सूरत आइ सरबंगी।।

**अर्थ**–कौतूहल दे विभिन्न कलाओं के ज्ञान में प्रवीण थी। वह हाथ में बीन लेकर बजाने लगी। ज्यों–ज्यों बीन की स्वर–लहरियों में 'गति' आती गई, वह नारि उमंग में भरती चली गई; तभी सरबंगी की सूरत जा–जाकर ध्यान में आने लगी।

भाख्यौ कौतूहल बड़ भाग। चेरी लागी गावन राग।।

**अर्थ**–समस्त चेरियाँ कौतूहल दे को परम सौभाग्यवती नारी बता कर राग सहित गायन करने लगी।

**दोहा–25 :**

जमक परी है नाद की, गमक म्रिदंग विराज।

ससि दरसन सोहत सकल, सर सरस्यौ सुर साज।।

**अर्थ**–उस समय ऐसा समा बंध गया कि 'नाद' उत्पन्न हो गया। मृदंग सही ताल के साथ थाप देकर शोभा बढ़ा रहे थे। राजकुमार को अपने चन्द्र (कौतूहल) के शुभ दर्शन प्राप्त हो गये। वहाँ सरोवर का वातावरण समस्त साजों की संगत सहित स्वरों की अन्विति के कारण, अपूर्व आनन्द से परिपूर्ण हो गया था।

**चौपई–27 :**

सुनत रीझि ऊठि ठाढ़ी भई। रागत ताई तन मैं छई।

माथैं पर आये कन स्वेद। बन्यौ सेहुरा, कैसौ भेद।।

**अर्थ**–साज सहित, स्वरपूर्ण–राग के साथ कौतूहल से संबंधित उस गायन में 'नाद' उत्पन्न हो गया था। राग की ऊर्जा कौतूहल के शरीर में व्याप्त हो गई। उसके माथे पर तप्तता के कारण, स्वेद (पसीने के बिन्दु) कण छा गये। उसके माथे पर बोल की प्रशंसा में सेहरा बंध गया था। यह एक भेदपूर्ण (व्यंग्य) उक्ति–सहित गायन था।

कौतूहल दे ससिकी बानी। चेरी संग लै पैठी पानी।

कंचन क्रान्ति काया निरझाइ। कुंवर खोइ सुधि बौल्यौ हाइ।।

**अर्थ**–कौतूहल दे चन्द्र–सदृश शोभा के साथ, तारागण सदृश दासियों के साथ सरोवर के पानी

(माया प्रपञ्च) में प्रविष्ट हो गई। स्वर्ण की जैसी कान्ति वाली, कौतूहल दे के तन की दमक जब झिलमिल करके सुशोभित हुई, तब झरोखे में बैठ कर अवलोकन करने वाले राजकुमार ने, उसकी रूप शोभा में निमग्न हुए चित्त के (सुधि-बुधि) बुद्धि-विवेक को विस्मृत कर दिया, ऐसी अवस्था में, उसके मुख से 'हाय' का बोल उच्चरित (निसृत) हो गया।

**दुहरक्वांन जब काननि परी। सोच चिंत कौतूहल भरी।**

**सरवर छाड़ि बसन तन पहिरे। मते किये सोधन के गहरे॥**

**अर्थ**—यह ध्वनि, जब कौतूहल दे के कानों में सुनाई दी, तब उसको बड़ी चिन्ता हुई; उसने बड़ा विचार किया। उसने सरोवर को छोड़ा। बाहर आकर, अपने तन पर वस्त्र धारण कर लिये। 'हाय' की 'ध्वनि' कहाँ से? कैसे? किसकी? आ सकती है; इस तथ्य का अनुसंधान प्रारम्भ कर दिया।

**सोरठा-1 :**

**गहि आनौ मो पास, जहां पुरष डिठ आइ।**

**जै सेधि ल्याउ पासतौ, उदास पन जाइ मिटि॥**

**अर्थ**—राजकुमारी ने आदेश दिया, ''जहाँ कहीं पुरुष दिखाई पड़ जाये, उसे पकड़ कर मेरे पास ले आओ। जाओ, उसे ढूँढ़ो; ढूँढ़ कर यदि तुम लोग उसे यहाँ ले आओ, तो मेरी उदासी दूर हो जायेगी।

**चौपई-28 :**

**चंचल चपल चरन सौं चेरी। सोधत सोधत आई नैरी।**

**कहु माली घर मैं को सोवै। हाइ हाइ करि कैं कत रौवै॥**

**अर्थ**—राजकुमारी की दासियाँ, तीव्र गति से चल कर, आवाज के आने की दिशा के अनुमान के अनुसार खोज करती हुई माली के घर पर पहुँच गई (जहाँ पर कि ग्रीष्म सदन में वह राजकुमार सरबंगी समीप में था)। उन्होंने माली से पूछा, ''हे माली! बताओ, घर में कौन ऐसा पुरुष है, जो 'हाय-हाय' करके रोता है? वह रोता क्यों है? यह भी बताओ।

**माली कह्यौ पूत है मेरौ। ज्यो न पत्याहुं भलैं करि हेरौं।**

**बहुत द्यौंस बीते दुख माहीं। रोग याहि कौं छाड़ित नाहीं॥**

**अर्थ**–माली ने उन्हें बता दिया कि मेरा पुत्र है, जो यहाँ, घर में है। यदि तुम्हें मेरी बात पर विश्वास न हो तो, स्वयं खोजबीन कर लो। मेरा पुत्र बहुत दिनों से संकट में पड़ा हुआ है, रोग इसका पीछा नहीं छोड़ रहा है।

**हाइ हाइ द्वी करत बिहावै। पलिका तें पग नाहीं उठावै।।**

**अर्थ**–इसके दिन और रात 'हाय–हाय' करते हुए ही व्यतीत होते हैं। यह पलङ्ग पर ही लेटा रहता है, यह पलङ्ग को छोड़कर एक पग भी चलने फिरने में असमर्थ है।

**दोहा–26 :**

**जल भोजन भावत नहीं, नाहिं नींद सौं प्यार।**
**ऊजर भयौ कि बसत है, यहु सुधि घट सैंसार।।**

**अर्थ**–इस पुत्र को, जल और भोजन में रुचि नहीं रह गई है, नींद से भी इसे प्रीति नहीं रह गई है। यह संसार इसके लिए व्यर्थ है; उसे अपने शरीर के विषय में भी यह बोध नहीं है कि उसका शरीर बिना भोजन–पानी ग्रहण किये किस प्रकार व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है। उसे अब मानव–जीवन को सफल बनाने की भी स्मृति नहीं रही है।

**चौपई–29 :**

**चेरी साँच मानि उठि गई। कौतूहल ढिंगु ठाढ़ी भई।**
**पात पात करि उपबन देख्यो। कहूं वा मानस नाहिं परेख्यौ।।**

**अर्थ**–दासियाँ, माली के बताये, कथन को सत्य मानकर उठ कर चली गईं। वे कौतूहल दे के समीप पहुँच कर खड़ी हो गईं। उन्होंने, कौतूहल दे से कहा, ''हमने बाग के प्रत्येक स्थल पर (चप्पे–चप्पे पर) जाकर पत्ते–पत्ते की छान–बीन कर ली है, ऐसा कोई पुरुष, हमारे निरीक्षण के समय उपलब्ध नहीं हुआ है जो उस प्रकार का हो।''

**मानंस तौ ना ऊपबन माँहिं। भूत प्रेत की जानत नांहिं।**
**कौतूहल दे तुरी मगायौ। जियरा सोच चिंत सौं छायौ।।**

**अर्थ**–कोई (मानस) मानव तो उपवन में है नहीं; अदृश्य रहने की शक्ति धारण करने वाला कोई भूत–प्रेत यदि होगा तो उसे, हम जान नहीं सके हैं। कौतूहल दे ने स्वयं के बैठने के लिए अश्व मंगवाया, उसके हृदय में चिन्ता के कारण सोच–विचार व्याप्त चल रहा था।

सोरठा–3 :

बाट परी करतार, जौ दिठ आई पुरष की।
कीनौ कहा बिगार, कौन पाप कैं हौं गही।।

**अर्थ**–राजकुमारी कहने लगी, ''विधाता ही इस कार्य में प्रभावी है कि मेरे ऊपर पुरुष की दृष्टि पड़ गई है। मैंने कौनसी मर्यादा का उल्लंघन किया है? मुझे ज्ञात नहीं है। मैं किस प्रकार के पाप (मानसिक दोष) से ग्रसित हो गई हूँ।

चौपई–30 :

कौतूहल दे सदन सिधारी। माली गही कुंवर की नारी।
देखै कहा ठांव नहीं धमनी। चित तें चेत लेइ गज गमनी।।

अर्थ–उस प्रकार की मन की स्थिति के साथ कौतूहल दे अपने राजभवन को चली गई। माली ने इधर राजकुमार की नाड़ी (नब्ज) टटोल कर देखी। उसने पता कर लिया कि धमनी सही गति से अपनी, सुस्थिति में नहीं चल रही है। वह गजगमनी सुन्दरी राजकुमार के चित्त में से चेत का अपहरण करके ले गई थी।

सीतल नीर आनि छिरकायौ। नीरस अंग तबहिं सरसायौ।
चेत भई चित, अंग–अंग डोल्यौ। कौतूहल कौतूहल बोल्यौ।।

**अर्थ**–उसने, शीतल जल ला कर राजकुमार (के मुख) पर छिड़का तब उसके सुप्त, शिथिल शरीर में चैतन्य प्रवाहित होने लग गया। चैतन्य प्राप्ति होने पर राजकुमार का अङ्ग–अङ्ग स्फुरित होने लगा (छटपटाने लगा), वह राजकुमार 'कौतूहल'!, 'कौतूहल'! रट लगाने लगा।

करगहि कैं सरवर परि आन्यौ। भाषत बचन महामन मान्यौ।

**अर्थ**–वह माली का हाथ पकड़ कर (सहारा लिए हुए) सरोवर के तट पर आया। वह मनमाने (विवेक रहित) अनेकों प्रकार के प्रलाप करने लगा (ऐसे–वैसे वचन दीवानों के जैसे बोलने लगा)

दोहा–27 :

बाबर पनौ न कीजिये, कीजै जग की लाज।
धीरैं–धीरैं धीरतैं, सरिहैं सगरे काज।।

**अर्थ**–(माली ने समझाया) ''जो कार्य विवेक–बुद्धि से अनुमोदित न हों, ऐसे (मनमाने) पागलपन के कार्य, नहीं करने चाहिए; जगत् की मर्यादा का भय मानकर 'लज्जा' धारण करनी चाहिए। धैर्य–धारण कर लेने से धीरे–धीरे कार्य–सिद्ध होने का मार्ग दिखाई पड़ जाता है।

**चौपई–31 :**

**सरबंगी उठि डेरा आयौ। सेवक जूथ बंदना धायौ।**
**कंवर कहयौ पतियाऊं भाग। अबकैं बहुरि जाइहँ बाग।।**

**अर्थ**–राजकुमार सरबंगी, सरोवर के तट से उठकर अपने डेरे पर (स्कंधावर में) आ गया। सेवक–समूह उसका वंदन करने को तीव्र गति से उपस्थित हो गया। कुँवर ने अपना दृढ़ संकल्प अभिव्यक्त करते हुए कहा कि मैं, भाग्य (ईश्वर या शुभ संयोग) पर विश्वास करता हूँ। अब अग्रिम प्रयत्न करने के लिए पुनः बाग में जाऊंगा।

**द्वै गंठिया मुकताहल अये। अंग अंग जिहि पनिपु धयै।**
**कंचन रजित लये अनतौले। बसतर लीने अति बड़मोले।।**

**अर्थ**–उसने दो थैली भर कर मोती (मुक्ताहल) साथ में ले जाने के लिए रख लिये। इनके रख लेने से उसके अङ्ग–अङ्ग में उमंग दमकने लगी। स्वर्ण और चांदी के आभूषण आदि अतुल मात्रा में साथ में ले लिये। उसने अत्यधिक मूल्य वाले वस्त्र भी रख लिये।

**दोहा–28 :**

**कौंन ग्यांन दमका सहंस, कहा लाख कहा कोर।**
**पीतम परि बलि दीजिये, जियरा कियें निहोर।।**

**अर्थ**–ज्ञानी (विवेकी) व्यक्ति के लिए अपने हृदय की प्रसन्नता (अनुकूलता) ही सबसे अधिक (उपयोगी) मूल्य की होती है। सहस्रों स्वर्ण मुद्रायें या लाखों स्वर्ण मुद्राएं हों अथवा करोड़ों की संख्या में स्वर्णमुद्रायें हों–उनको भी विवेकी हृदय से माने (जाने) गये प्रियतम पर अर्पण करना उचित (उपयोगी) समझेगा। (प्रियतम पर जो कुछ भी हो, सब कुछ समर्पित करना उचित ही है; क्योंकि प्रियतम–प्राण सर्वस्व होता है)।

**चौपई–32 :**

**लै माली कै आगैं धरे। देखत ही तन मन गहि बरे।**
**अब सो करहु भाग जिह जागैं। सिष, नख–सिष लौं बिससी लागै।।**

**अर्थ**—राजकुमार ने बाग में माली के पास जाकर, समस्त धन सम्पदा उसको सौंप दी। उस प्रकार की प्रभूत सम्पदा को देखकर माली का अङ्ग–अङ्ग प्रफुल्लित हो गया। राजकुमार ने 'धन' सौंपकर माली से कहा, ''अब वैसा सब प्रयत्न करो, जिससे भाग्य की अनुकूलता जागृत हो सके। वह प्रियतमा (सिग) पूरी की पूरी, पैर के नाखून से लेकर सिर की चोटी तक सुन्दरता से परिपूर्ण होकर, विषय के समान प्रभावी (मूर्च्छाकारिणी) है। (किसी भी प्रकार से उसकी प्राप्ति का उपाय कीजिये)।

**करि कैं दयो चांम कौ टोप। बार छपाइ छपाइ वोप।**

**टूक टूक सिर बांधी पाग। जिन कुचील निरमल है भाग।।**

**अर्थ**—माली ने, तब उस राजकुमार को, असली रूप छिपाने के प्रयोजनवश (उसके) हाथ में, चर्म का बना (सपाट चर्म का बिना बालों का, जिससे बाल ढँककर वह गंजा दिखाई दे सके) टोप दे दिया, जिसको सिर पर पहनकर राजकुमार ने अपने लम्बे बाल–चोटी, सभी छिपा लिये। उस चर्म–टोप के ऊपर भी; बारम्बार वस्त्र की परतों पर पर्तें लपेट कर पगड़ी सिर पर बांध ली; इस प्रकार के पाग–बन्धन में काम (उपयोग में) ली गई मामूली वस्त्र की चीर (पट्टी) के भी भाग जाग गये (जो कि वह एक राजकुमार के सिर जा चढ़ी)।

**जो देखत सो भाषत माली। जानत नाहिं बनाई ठाली।**

**पदमाकर पर रौवे गावै। लै लै सब ही साज बजावै।।**

**अर्थ**—इस प्रकार के रूप में, राजकुमार को जो भी देखता था वह उसे माली ही कहता था। वह देखने वाला भला कब जानता था कि वह माली वेश यथार्थ नहीं है। अब, इस वेश में जाकर वह राजकुमार सरोवर के किनारे जाकर विरह के दुःख को प्रकट करने वाले गान करने लगा और अनेकों प्रकार के तंबूरा आदि साज बजाने लगा।

**पंछी हूं धुनि सुनि सुनि मोहैं। जानत ना हम को ये को हैं।।**

**अर्थ**—उसके वाद्य सहित गायन की ध्वनि को सुन कर पक्षी तक मुग्ध हो गये। सभी जनें उसके गायन को सुन कर ऐसे मुग्ध हुए कि उनको स्वयं के विषय में भी यह स्मृति नहीं रही कि हम कौन हैं (हम पक्षी? पशु हैं? मनुष्य हैं?) और ये (हमसे भिन्न) कौन हैं?

दोहा सवईया–1 :

मीत नेहु नातौ नैकु हां तो ह्वै न प्रान तें।
मूरति को ध्यान छिन टरत न नैननि ते।
बैनन की भनक दूर, होत न कान तें।
रसना तें चाहि नांव जपि बै की नाहिं मिटै।
चकई की चौंप कैसे घटि है बिहान तें।
कहै कवि जान पीति पूरन भई है महा।
बाढ़ी अति उरू नाहि रह्यौ छीन हान तें।
अंग अंग उनकैं उमंग ही सौं भरि रहे।।

अर्थ–वास्तव में प्रियतम प्राणों से अधिक प्रिय होता है। प्रियतम की मूर्ति (आकार–प्रकार–रंग–रूप–भाव आदि) का ध्यान क्षण भर के लिए भी (मन की) आँखों से दूर (हट कर) नहीं होता है। प्रियतम के वचनों का आभास कानों (कल्पित माध्यम द्वारा चित्त में अवधान) से (विस्मृत होकर) दूर नहीं होता है। प्रियतम को जीभ से, नाम ले लेकर रटने की अभिलाषा भी समाप्त नहीं होती है। चकवी (चक्रवाकी) के लिए, दिन का उदय 'मिलन' के लिए उपयोगी होता है, अतः उसकी उमंग प्रातः की प्रतीक्षा के प्रति कदापि घटती (कम) नहीं है।

जान कवि कहते हैं कि जब प्रीति पूर्णता की ओर अग्रसर होते–होते बढ़कर अब महा अवस्था वाली हो गई है; इस अवस्था में हृदय में प्रियतम की प्राप्ति के उपाय स्वरूप, प्राप्त होने वाली अन्य किसी भी कितनी भी हानि से क्षीणता कदापि नहीं आती है। गायन के रीझे हुए उन सबके (प्रेम करने वालों) के अंग–अंग उमंग से भरे हुए हैं।

चौपई–33 :

येक रैन जब भयौ बिहान। चढ़्ह्यौ अहेरैं सुत प्रधान।
उपबन निकटि आइ जब चल्यौ। सुनि–धुनि कल छल–बल चित छल्यौ।।

अर्थ–एक दिन, कभी जब रात्रि व्यतीत हो गई, तब सवेरा होते ही प्रधान का पुत्र आखेट करने चला। जब चलते–चलते वह उपवन के समीप में पहुँच गया, तब सरबंगी के गायन की मधुर ध्वनि के प्रभाव से उसका चित्त रीझ गया।

घोरा राखि पठायौ सेवक। जाइ निहार मुनष है देवक।

छरिये जाइ निहार्यौ सर पर। बाजत राजत बैनव कर पर॥

**अर्थ**–उसने अपना घोड़ा रोक लिया और एक सेवक को पता करने के लिए भेजा कि ऐसा मधुर राग बजाने वाला यह कलाकार कोई मनुष्य है अथवा 'देव' है? छड़ीदार (द्वारपाल–रक्षक) सेवक ने सरोवर के तट पर जाकर देखा कि वह कलावंत हाथ में बीन लिये, राग बजाता हुआ सुशोभित हो रहा है।

जाइ कह्यो सुनि सुनि हो स्वाम। आजि बिसारहु दूसर काम।

मोहन सुर सोहन गरक्वान। सुनन गयौ नंदन परधान॥

**अर्थ**–उसने वहाँ से लौटकर प्रधान के पुत्र से कहा, ''हे स्वामि! सुनिये, सुनिये! आज दूसरे कार्यों को त्याग दीजिये (वहीं गायन–वादन सुनने चलिये)। उसका मोहक–स्वर एवं सुशोभन गले की आवाज को सुनने के लिए, प्रधान का पुत्र चला गया।

**दोहा–29 :**

सब मन पोषन राग है, अछिर तान सलौन।

पावें पातिन योगिहैं, कहि मसिका सो कौंन॥

**अर्थ**–राग सबका मन प्रफुल्लित करने वाला है। इसके अक्षरों की तान, सलौनी (लावनी सहित) है। उसका दीवाना बन कर, अपने में नये पंख लेकर कौन भला उस दीपक बने, राग के पास, मशक (मच्छर–पतंगा) सदृश बन कर जो न गया हो, ऐसा भला कौन है? अर्थात् सभी पर रीझ कर, गिरते–पड़ते उसकी ओर खिंचे चले जा रहे हैं।

**चौपई–34 :**

सुत परधान गयौ चलि बेसन। गावत पायौ माली भेसन।

आनंदन अगवानी नंदन। दहूं बोर तें कीनौ बंदन॥

**अर्थ**–प्रधान का पुत्र चलकर सरोवर के तट पर पहुँचा, उसे वहाँ (सरबंगी) गायक माली के वेश में गाता हुआ मिला। उसने आनंदित होकर, प्रधान के पुत्र की अगवानी की। प्रधान के पुत्र की ओर से उस गायक को तथा गायक की ओर से प्रधान के पुत्र को प्रणाम–वंदन किया गया।

सुरा मगाइ लगे दोउ पीवन। सरबंगी चित–मूरी जीवन।

सुर लीनौ सरबंगी पूरौ। गावन लग्यौ लयैं तंबूरौ॥

**अर्थ**–उन दोनों ने सुरा (शराब) मंगवा ली; दोनों साथ–साथ सुरा पीने लगे। सरबंगी के चित्त के रोग की शांति के लिए यह विरह–गान–राग एक जीवन–दायिनी औषधि (जड़ी–बूटी) बनी हुई थी। सरबंगी ने पूरे स्वर से राग प्रारम्भ कर दिया; वह तंबूरा वाद्य की संगति के साथ गाने लगा।

**ऐसौ कछु अनसुन्यौ सुनायौ। अग्याकारी सुत भरमायौ।**

**बाहू के संग हें बहु गाइंन। धाइ–धाइ सब लागे पाइंन।।**

**अर्थ**–उसने ऐसा अपूर्व गायन सुनाया कि प्रधान का पुत्र विमुग्ध हो गया। उसके साथ में, आखेट दल में बहुत से गायनशास्त्री थे; वे भी संगत कर रहे थे। वे सभी ऐसे गान को सुन कर दौड़–दौड़ कर उस गवैये के पैरों का स्पर्श करने लग गये।

**सोरठा–3 :**

**भूलि गये हैं नाद, कछु अलाप, गावै कछु।**

**सुरति अंत, न आदि, गाइ अंतरा सिंभलै।।**

**अर्थ**–(सरबंगी) माली–गवैये के साथ में, गायन करने वाले प्रधान के पुत्र के साथ के ग़वैये गायन में 'नाद' में संगति विस्मृत कर बैठे; वे आलाप (आऽआऽऽऽआ आदि) तो कुछ अन्य प्रकार का साधते थे और गाते कुछ दूसरे राग के साथ में थे। उन्हें गायन के तोड़ के अन्त व प्रारम्भिक चरण का ध्यान नहीं रहता था, वे जब अंतरा गा लेते थे तब उन्हें ध्यान आता था कि हमने तो गलत अंतरा उठा लिया; तब वे सम्भलने की चेष्टा करते हुए दिखाई (सुनाई) पड़ते थे।

**चौपई–35 :**

**उनके सगरे साज बजाये। रीझे भीजें सकुच लजाये।**

**अग्याकारी नंदन चाइन। जो कछु दयौ–दयौ उनि गांइंना।।**

**अर्थ**–उस माली भेषधारी (सरबंगी) गवैये ने उन गायकों के समस्त साजों को अपने हाथ से, भली रीति से बजाया। उसके द्वारा वाद्ययंत्रों को सुन्दर रीति से बजाये जाते देखकर गवैये भी रीझ गये; वे सभी शर्म से पानी–पानी हो गये। वे उसको, अपने से उच्च श्रेणी का कलाकार मान कर उसके समक्ष संकोच के साथ, लज्जावनत होकर खड़े हो गये। प्रधान के पुत्र ने प्रसन्न

होकर बड़ी उमंग भरी अभिलाषा से, जो कुछ पुरस्कार उस माली को दिया; उसने उस समस्त धन आदि को उन आखेट–दल के गवैयों को वितरित कर दिया।

**तबहि देखिकैं यहु त्यौहार। धन–धन–धन धन कियौ ऊचार।**

**होत कभूं जो सिर पर केस। तोहि न छाडत माली भेस।।**

**अर्थ**–उसके इस प्रकार के दान–दाक्षिण्य वाले श्रेष्ठ व्यवहार को देखकर सभी ने उसको धन्यवाद और साधुवाद दिया (कि तुमसा मानव धन्य है)। उसका पिता बना वह माली यह विचार कर रहा था कि यदि इस समय यह राजकुमार सरबंगी, सिऱ पर लगे केशों वाले रूप में, असली राजकुमार के भेष में होता तब तो ये सब उसे सम्मानपूर्वक अपने साथ ले जाते। मन में यह भी कह रहा था कि बेटा सरबंगी, भला हुआ कि तू माली के भेष में, बिना बालों के सिर वाला माली समझ कर, ये सब कुछ–कुछ दूरी (सम्बन्धों में) बनाये हुए हैं।

**बड्डौ माली कह्यौ हंकार। यहु को पंडित देहु बिचारि।**

**यहु ग्यांनी सिष आहि हमारौ। सिष सुत मैं जिन भेद बिचारौ।।**

अर्थ–बड़े वृद्ध माली ने तीव्र स्वर में हांक लगाते हुए प्रकट में कहा, ''यह गायनशास्त्री कौन है? विचार करके बताओ। यह गायन का ज्ञानी हमारा शिष्य है। इस मेरे शिष्य को मेरा पुत्र ही समझो। शिष्य और पुत्र में भेद मत समझो।''

**दोहा–30 :**

**बिरध बैंस हौं पूत बिन, बिकल रहित दिन रैंन।**

**अब करतार दयाल है, यहु दीनौ सुष नैंन।।**

**अर्थ**–मैं वृद्धावस्था में पहुंच कर भी पुत्र के अभाव में रात–दिन, व्याकुल (बैचेन) रहता था; अब, जगतनिर्माणकर्त्ता (परमेश्वर) ने यह शिष्य देकर, मेरे नयनों को सुखी बना दिया है, मैं इसे पुत्र के रूप में देख कर, सुख का अनुभव कर रहा हूँ।

**चौपई–36 :**

**रैन गई हरि लागौ तपनै। सुत, परधान गयौ घर अपनैं।**

**बाकैं पिता बात सुनि पाई। चेरी नंदन पास पठाई।।**

**अर्थ**–जब रात्रि वहीं रहते हुये व्यतीत हो गई, तब सवेरा हो गया और सूर्य–उदित होने के पश्चात् तीव्र ताप प्रदान करने लगा, उस समय प्रधान के पुत्र ने, अपने घर के लिए प्रस्थान किया। उसके पिता, प्रधान ने, जब पुत्र के लौट कर आ जाने की बात सुनी, तब उसने एक सेविका के माध्यम से पुत्र को पास में बुलाया।

**लै आई तब पूछ्यौ तात। फिरे उलाते तुम्ह किह बात।**

**निकस्यौं जाइ बाग ढ़िंग जबहूं। सो देख्यौ ना देख्यौ कबहूं।।**

**अर्थ**–जब, दासी प्रधान के पुत्र को बुलाकर ले आई; तब, प्रधान ने अपने पुत्र से पूछा, ''तुम आखेट (शिकार) से इतनी जल्दी (अल्प समय में) क्यों लौटकर आ गये? उसने बताया, ''मैं, जब उपवन (बाग) के समीप से निकल कर आखेट के लिए जा रहा तब मैंने अपूर्व मनोहारी गायन की ध्वनि सुनी।

**माली के नंदन सुर लीनौ। रंग–रस भीनौ, मन बसि कीनौं।**

**ऐसे राग रिझावन कहे। गाइन मेरे देखत रहे।।**

**अर्थ**–बाग में, माली के बेटे ने, ऐसा अद्‌भुद् स्वर वाला गान गाया कि, मेरा हृदय उसके रस से प्रफुल्लित हो गया। उसके मधुर गान ने मेरा मन वश में कर लिया। उसने विभिन्न प्रकार के रिझाने वाले 'राग' सुनाये कि मेरे दल के गवैये नतमस्तक होकर उसकी प्रशंसा करने लगे।

**दोहा–31 :**

**जब लग बहुरिन जाइहौं, तब लगि नाहिंन चैंन।**

**बहु मोहन सुर–रूप छबि, छाई सरवन नैंन।।**

**अर्थ**–अब जब तक, मैं पुनः वहाँ नहीं जाऊंगा, तब तक मुझे चैन नहीं मिलेगा। उसका वह मोहने वाला स्वर, कानों में अभी तक व्याप्त है। साथ ही उसके मोहक रूप की शोभा नेत्रों में अभी तक छाई हुई है।

**चौपाई–37 :**

**पिता कह्यौ छत्रपति पै जैहौं । यह कौतूहल की सुधि दै हौं ।**

**मोहू कौ ऊपज्यौ अनुराग । लै राजै कौं जैहौं बाग ।।**

**अर्थ**–पुत्र से इस प्रकार की प्रशंसा सुनकर प्रधान ने अपनी अभिलाषा अभिव्यक्त करते हुए

कहा, मैं राजा साहब के पास जाऊंगा तथा उनको इस कौतूहलपूर्ण गान के विषय में समाचार दूँगा। मेरे हृदय में भी अनुराग उत्पन्न हो गया है। मैं राजा साहब को साथ लेकर बाग में जाऊंगा।

**उठि परधान राइ ढिंग आयौ । दूसर कह्यौ आदि सिर नायौ ।**
**बरष माहि ऊपजत चित चाव । उपवन कौं धारत है पांव ।।**

**अर्थ**–प्रधान वहाँ से उठ कर चल दिया और राजा साहब के समीप में आ गया । इसके पश्चात् उसने सर्वप्रथम राजा के सम्मुख शीश झुका कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् बाग में माली द्वारा गाये जाने वाले सुन्दर गायन की प्रशंसा की। प्रधान ने राजा से निवेदन किया कि वर्ष में वे दिन अत्यन्त उमंग उत्पन्न करने वाले होते हैं, जिन दिनों में आप उत्सव मनाने हेतु उपवन में पधारते हैं।

**अबकैं सुरत न लीनी बाग । उपज्यौ है सबकौं अनुराग ।**
**राजै कह्यौ भोर उति जैहौं । सात द्यौंस लौ नाहिन अैहौं ।।**

**अर्थ**–इस बाग में उत्कृष्ट गायन की बात सुन कर हम सबको बाग में जाने के लिये, अनुराग उत्पन्न हो रहा है । राजा साहब! आपने इस वर्ष, अभी तक बाग में जाने की स्मृति धारण नहीं की हैं । राजा ने अपना निश्चय प्रकट किया कि सुबह (प्रातः) मैं उधर जाऊंगा। सात दिवस तक बाग में ही ठहरा रहकर बीच के समय में इधर राजभवन में लौटूँगा।

**धारी छंद–1 :**

**सैल करि हौं, ताल तरिहौं । पुहप पैहौं गूंद लैहौं ।**

**अर्थ**–राजा ने अपनी अभिलाषा अभिव्यक्त करते हुए बताया कि, मैं बाग में सात दिन तक रह कर घूमूंगा–फिरूंगा तथा सरोवर में तैरूंगा और पुष्पों के पौधों में से गोंद एकत्र करूंगा।

**चौपई –38 :**

**पठाइ दये परधान बिछौंना । झिलक रह्यौ सौंना ही सौंना ।**
**राजा जाइ बाग में पैठ्यौ । सुरा लेत सरसी पर बैठ्यौ ।।**

**अर्थ**–प्रधान ने बाग में शिविर स्थापित करने तथा बैठने आदि की समुचित व्यवस्था करते हुये, आवश्यक परिधान (वस्त्र) और बिछौना आदि ज़ो भी भेजे थे, उनमें सोने के तारों की सजावट की गई थी । राजा ने जाकर बाग में प्रवेश किया । वह सरोवर के तट पर बैठ कर सुरा–पान करने लगा ।

गाइन चाँइन गांवन लागे । लावन भावन-भावन लागे ।

माली कह्यौ सुनहु सरबंगी । लै कै चलहु पुहप बहुरंगी ॥

**अर्थ**–वहाँ पर गवैये पसन्द आने वाले गीत गाने लगे । वे गीतों में सुन्दर भावों को अभिव्यक्त कर रहे थे। अतः उनके गीत मनोहर लग रहे थे । लावनी आदि भी सुनाईं । माली ने राजा के, बाग में आगमन हो जाने पर ,अपने पुत्र सरबंगी से कहा, ''हे सरबंगी ! सुनो! अनेको प्रकार के रंग-बिरंगे पुष्पों को लेकर राजा के समीप चलो ''।

अंन अंन बरन बनज गहि तोरे । हार गूंद राजा ढिंगु छोरे ।
मोहन हार राइ मन मोहै । माली भाष सांच यहु कोह ॥

**अर्थ**–उसने अन्यान्य रंगो के पुष्प चुन-चुन कर इकट्ठे कर लिये, ऐतद्पश्चात् इन पुष्पों से विविध प्रकार के हार गूंथ कर राजा के समीप, शोभा बढाने के लिए सजा दिये । आकर्षक हारों ने, राजा के मन को मुग्ध कर दिया । राजा ने उस माली से पूछा, तुम सच- सच बताओ कि यह कौन हैं ?

**बिजू माला छंद :**

ग्याता मेधा है सोहंता । नीकौ रूपा जी मोहंता ।
सचैं भाषि है ये कौ ग्यानी । देख्यौ नाहीं ऐसी बानी ॥

**अर्थ**–यह तो कलाओं का ज्ञाता है, मेधा से सुशोभित हैं और सुन्दर रूप से, हृदय को मुग्ध कर रहा है। सच-सच बता ऐसी शान का ज्ञानी कौन है ? ऐसा गुणी हमने पूर्व में कभी नहीं देखा है।

**चौपाई-39 :**

माली नाइ सीस यौं भाख्यौ । यह किंकर उपवन कौ राख्यौ ।

हौं गुर भयौ महा लघु फिरिहुं । अब याही की नईया तिरिहूं ॥

**अर्थ**–माली ने सिर झुका यह निवेदन किया, कि यह मेरा पुत्र है। इसे उपवन की साज-सम्भाल के प्रयोजन से यहाँ रख लिया है। मैं अब वृद्ध हो गया हूँ अतः शक्ति में अत्यन्त अल्प हो गया हूँ। अब बाग के बड़े-बड़े परिश्रम-साध्य कार्यों को इसी की सहायता से पूरे कर पाता हूँ।

राजै कह्यौ लेहु सुर माली है यहु सांच कि भाषैं वली ।

लयौ तंबूरा अति मन चावन, सरबंगी तब लाग्यौ गांवन ॥

**अर्थ**–राजा ने माली के पुत्र से कहा, अब तुम अपना सस्वर गान सुनाओं । मैं यह सुनिश्चित करना चाहता हूँ कि क्या वास्तव में तुम गायन–वादन में निपुण हो ? अथवा यह सब लोग जो तुम्हारे गायन की प्रशंसा करते रहे हैं वह व्यर्थ है । सरबंगी ने, तब अत्यन्त उमंग से तंबूरा हाथ में ले लिया और उसने गाना प्रारम्भ कर दिया ।

**भुजंगप्रयात छंद :**

**चिरंजीव जगरूप राजा सुरंगा । सद सुजस उजागर जिमै नीर गंगा ।**
**रसन येक क्यौं होइ बखांन चंगा । रहै थकि करै जौ बु असतुति भुजंगा ।।**

**अर्थ**–सरबंगी ने बहुत सुन्दर ध्वनि के साथ गायन करते हुए कथन किया,कि सुन्दर रीति से राज्य – शासन करने वाले राजा जगरूप,सुयश, उज्ज्वल प्रभाव से लोगों का उसी प्रकार कैल्याण कर रहा है, जिस प्रकार गंगा का पावनकारी नीर लोक –मंगल करता रहता है। इस राजा के सम्पूर्ण सुचरित्रों का वर्णन मैं एक मात्र रसना (जीभ) से करने में अंसमर्थ हूँ, किन्तु मेरी जीभ इसके असीमित गुणों का गान करने में थकती नहीं हैं, अपितु आनन्द प्राप्त करने से सदैव उमंग से भरी रहती है । यदि मुझे किसी दुष्ट व्यक्ति के चरित्र का गान करवाया जायें तो मैं अल्प गान भी नहीं कर सकूंगा।

**झमका छंद–1 :**

**जगत पति ।। सरस सति । बिमल मति । सुंदर श्रुति ।**

**अर्थ**–यह राजा जगरूप, जगत् का स्वामी है । इसका हृदय सोत्साह–उद्योगी है । इसकी मति, अति निर्मल है । इसका सुन्दर चरित्र, श्रुति अनुरूप हैं ।

**चौपाई–40 :**

**राजा रीझि रह्यौ है भारी । गुनियनि कौ चिंता अनियारी ।**
**ज्यौं ज्यौं राजा असतुति करिहै । गाइन जूथ महा परिजरि है ।।**

**अर्थ**–राजा सरबंगी के गायन से अत्यन्त रीझ उठा । उसके दरबारी गुणी गवैयों के हृदय में चिन्ता उत्पन्न हो गई । सरबंगी ज्यों–ज्यों एक के बाद एक विभिन्न सुन्दर लयों के साथ राजा की स्तुति में गायन प्रस्तुत कर रहा था। फलस्वरूप गवैयों का समस्त समूह अत्यन्त द्वेष से युक्त हो गया।

गाइन हाथ रसन ना पावैं । कहा बजाइ कहा धौं गावैं ।

राजा रीझि रीझि दै दान । सोसभ गुनियन कौ दै आनि ।।

**अर्थ**–सरबंगी विभिन्न प्रकार के छंदों का गायन प्रस्तुत करने लगा। उसके गान से संगत कर रहे गवैये समझ नहीं पा रहे थे कि कब अंतरा बदला है ? अब, कहाँ से ? कौन सा राग आरम्भ करें ? उतार– चढ़ाव कहाँ ? कैसे करें ? किस छंद में गायन करें ? राजा उसके गायन को सुन कर, रीझ–रीझ कर उसे दान दे रहा था; सरबंगी राजा से प्राप्त हो रहे दान (संपदा) को संगत कर रहे गुणी गवैयों को वितरित करता जा रहा था ।

राजै कह्यौ सुनहु परधान । अैसौ मन बिन राइ न आन ।।

**अर्थ**–राजा ने उसके उदार व्यवहार को देखकर अपने प्रधान से कहा–ऐसा दानी मन वाला व्यक्ति राजा के बिना अन्य कोई नहीं हो सकता हैं।

**दोहा–32 :**

आछी बतियां राइ की, कांछी राषहु कान ।

देख्यौ है कोऊ जगत मैं, चौदह विद्या निधान ।।

**अर्थ**–प्रधान ने वहाँ उपस्थित सभी लोगों से कहा कि राजा ने जो अच्छे–अच्छे निर्देश इसकी प्रशंसा करते हुए दिये हैं, उनको सदैव ध्यान रखें। इसका मान– सम्मान करें। इसके समकक्ष, चौदह विद्याओं में पारगंत– विद्वान् और कोई भी कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा है । आप भी इस पर विचार कीजिये।

**चौपाई–41 :**

जौ यहु राजा कैं मन चाहि । कछु इक मोंहू पै गुन आहि ।

विद्या जौ कहिये दस चारि । पूछत तौ भाषूं ब्यौहारि ।।

**अर्थ**–सरबंगी ने कहा कि जब राजा के मन में इतनी प्रतिष्ठा हैं, तो मैं कुछ विशेष कला जो मेरे पास है उसका प्रदर्शन करके राजा की श्रेष्ठ इच्छा को पूरा करके दिखाऊंगा । सरबंगी ने कहा कि राजा जिस प्रकार मुझसे चौदह विद्याओं के ज्ञान की अपेक्षा कर रहे हैं, उनकी इस इच्छा के अनुरूप जो कुछ गुण मुझमें हैं उसको मैं प्रत्यक्ष व्यवहार में प्रदर्शित करता हूँ।

राइ कह्यौ परथम तौ काछी । विद्या नाद सुनावहु आछी ।

जैसौ है तेरै मन ग्यान । तैसी विधि अब करहु बषान ।।

**अर्थ**–राजा ने कहा ''हे माली! अब चौदह विद्याओं के अभिप्रेत के कथ्य को गायन में 'नाद' के साथ भली–भाँति सुनाओ । राजा ने कहा कि तेरे पास जैसा भी ज्ञान है उसे अपने इच्छानुसार विधि से व्याख्या पूर्वक गा–गा कर सुनाओ।

**चौदह विद्या और अनेंक, समझाऊंगौ कहि कहि येक ।**

**अर्थ**–तब सरबंगी ने कहा कि मैं चौदह विद्याओं के मर्म को, पृथक्–पृथक् करके कथन करके अपनी शैली में प्रस्तुत करूँगा ।

**दोहा–33 :**

**तीस भारजा राग षट्, गावत है सरबंग ।**
**निरखावति है चौप सौं, राग नांउ धुनि रंग ।।**

**अर्थ**–इसके पश्चात् सरबंगी ने पूर्ण उमंग के साथ तीस भार्या और षट् रागों के सम्पूर्ण नाम, उन विशिष्ट रागों के रंग–बरण–वातावरण, औडव तथा समय आदि अंगों को उचित प्रस्तुतीकरण के सहित गाकर प्रदर्शित किया ।

**दोहा–34 :**

**स्याम वरण तन दुख हरन,सभ रागन कौ राइ ।**
**चंवर दुरै मरदन करै, बनता भैरों भाइ ।।**

**अर्थ**–उसने भैरव राग प्रस्तुत करते हुये बताया कि यह राग समस्त रागों में सर्वश्रेष्ठ राग है, इसमें दुःख हरने वाला श्याम वर्ण प्रमुखतः रहता है; इसमें चेरियों द्वारा मरदन तथा चँवर का डुलाना भी होता है ।

**दोहा–35 :**

**पुहप माल गर छाजि है, राग करत दै ताल ।**
**धाम फटक सर पीति रंग, भाव भैरवी बाल ।।**

**अर्थ**–स्फटिक के बने धाम में बने सरोवर के तट पर, सब तरफ पीले बने रंग के वस्त्र आदि की सजावट के मध्य, गले में पुष्पों की माला सुशोभित रहती है और ताल दे दे करके 'राग' को गाया जाता है; ऐसे राग का नाम 'बाल–भैरवी' है ।

**दोहा–36 :**

**कथा कहत मधु माधु सुर, येक नारि संग तास ।**
**सेत बरन तन येक नर, बीन बजावति पास ।।**

**अर्थ**–उसने रूप मंधु राग के विषय में गा कर परिचय दिया कि एक नारी को साथ में लेकर मधुरतम स्वर के साथ कथा–गायन करता कलाकार इसमें शोभा प्राप्त कर रहा होता है, जिसके समीप में गोरे वर्ण के शरीर वाला एक व्यक्ति बीन बजाता है।

**दोहा–37 :**

**गोरै रंग दे साख है, रूप मधु तिह जांन ।**
**सोधा नाभि गंभीर है, सभ तैं लांबो मान ।।**

**अर्थ**–इस उपर्युक्त प्रकार से गोरे वर्ण के बीन बजाने वाले नर की 'संगति' के सहित, यह 'राग–मधु' कथित होता है। इसमें नाभि बहुत गंभीर रहती है। इसे सर्वाधिक लम्बित समय का समझना चाहिये ।

**दोहा–38 :**

**पीत बरन पट मंजरी, लालन नाहि संजोग ।**
**रैन दिना सुमिर्‍यौ करत, व्यापति बिरह वियोग ।।**

**अर्थ**–जान कवि कहते हैं कि सरबंगी ने गौड़ी राग की विधिवत् प्रस्तुति की जिसमें उसने सोदाहरण बंताया कि, इसमें एक ललना है जिसे प्रिय का संयोग प्राप्त नहीं है, यह पीले वर्ण के वस्त्र धारण किये हुये है; हाथ में पुष्प –मंजरी सुशोभित हो रही है; यह रात–दिन प्रिय के स्मरण के भाव व्यक्त करती रहती है; इसके तन–मन में प्रिय –विरह संताप व्याप्त रहता है।

**दोहा–39 :**

**तरुनी लांबी नासिका, गोरी गर कंज माल ।**
**रैन दिना सुमिर्‍यौ करत, ब्यापति बिरह बियोग ।।**

**अर्थ**–गौड़ी राग की प्रस्तुति में ही नायिका तरुणी होती है, जिसकी नासिका लम्बी होती है। इस गोरे वर्ण की तरुणी के गोरे वर्ण गले में (रक्त कमल) कंज–माल बिराजती हैं । यह बाला रात दिन वियोग के विरह में प्रेमी का स्मरण करती रहती है।

दोहा–40 :

**बिद्याधर पूजा करै, पीत बरन छबि नैन ।**

**मालकउंसक सुगंध तन, चंवर ढुरै दिन रैंन ॥**

**अर्थ**–नायिका के नयनों में प्रीति के भाव रहते हैं । विद्याधर पूजा–अर्चना करते सुशोभित होते हैं। सभी के वस्त्र पीले वर्ण के रहते हैं । नायिका के शरीर पर पहनी हुई पुष्पों की मालाओं से अंग–अंग सुगन्ध से सुवासित रहता है और रात–दिन, चँवर डुलाये जाते हैं ।

दोहा–41 :

**रद दार्‌यौ तिल चिबक, परि कर सु बरो रंग पीति ।**

**गौरी जनमी माझ बन, जान कही यहु रीति ॥**

**अर्थ**–दांतों की पंक्तियाँ अनार के दानों के सदृश श्वेत आभा से प्रकाशित एवम् दर्शित होती हैं। उसकी ठोड़ी पर तिल होता है, कटि भाग समान रूप से क्षीणता लिये, श्रेष्ठ पीले रंग के वस्त्रों से विभूषित, प्रीति के श्रेष्ठ भावों से युक्त– नायिका से, प्रस्तुत की गई, राग की यह रीति,जो वन में ही उत्पन्न होती हैं, गौड़ी राग की रीति कही गई है । जान कवि कहते हैं कि सरबंगी ने उपर्युक्त प्रकार से यह 'राग' की रीति प्रकाशित की ।

दोहा–42 :

**गीत हि गावती मालुवा, छक्यौ फिरत चित चाइ ।**

**बरन कीर करननि पुहप, सांझ भयें घर आइ ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने 'मारवा–राग' जो कि एक आश्रय–राग है– प्रस्तुत किया। नायिका–मारवा (मालुवा) राग के साथ गीत गा रही है, उसका चित्त, उमंग से भरा–पूरा है। वह तोते के समान (पीत हरित) हरे वर्ण के वस्त्र पहन कर कानों में पुष्पों के आभूषण पहन सायं घर आती है।

दोहा–43 :

**कंचन तर सुर आभरन, पहिरावत कहि जान ।**

**पगनि परत, पति नामनत,रामन करि अभिमान ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने राग ''रामकली'' की प्रस्तुति करके राजा को बताया कि रंगभूमि में स्वर्णिम कल्पवृक्ष के समीप नायिका को नायक अभिमानपूर्वक स्वर्ण के आभूषण पहना देता है। नायिका

उसको रूष्ट जान कर प्रसादन करने के लिए पैरौं पड़ रही है, किन्तु नायक अभिमान प्रदर्शित करके, रुष्ट ही बना रहता है। यहाँ 'राग–रामकली' का संयोजन किया गया है।

**दोहा–44 :**

**माला गूंदत कलप तर,कनक कुंभ ढिंग लाहि ।**
**स्याम बरन है गुनकरी, केस बिसारत आहि ।।**

**अर्थ**–गुनकरी राग की प्रस्तुति करते हुये सरबंगी ने विवरण प्रस्तुत किया । नायिका श्याम वर्ण के वस्त्र धारण कियें है, कल्पवृक्ष के पुष्पों की गूंथी हुई माला धारण किये है, उसके समीप में स्वर्ण (सोने) के कलश सुशोभित हैं, और उसके केश खुले हुये हैं– इस प्रकार से राग 'गुनकरी' (गुणकली) की प्रस्तुति होती है।

**दोहा–45 :**

**गगन बरन बन बास है,चतुर सीस कर चार ।**
**भरी बियोग षंभावती, सुमिरन है भरतार ।।**

**अर्थ**–सरबंगी द्वारा आश्रय राग, जिसका थाट 'खमाज' है प्रस्तुत करते हुए, निम्न प्रकार से वर्णन किया– आसमानी (नीले) वर्ण के वस्त्र पहन कर, वन में रहती नायिका वियोग व्यथा से भरे भावों को अभिव्यक्त करती हुई अपने पति का स्मरण करती है। इस समय वह कुशलता पूर्वक अपने हाथ को अपने शीर्ष पर रखती है।

**दोहा–46 :**

**झूल हिंडोरैं रैन दिन, करत कलोल हिंडोल ।**
**चेरी चंवर ढुराइ हैं, द्वै चेरा मिठ बोल ।।**

**अर्थ**–जहाँ हिडोले में बैठ कर रात–दिन, झूल–झूल कर आनंद के साथ कन्लोल (क्रीडायें) करते हुये नायिका द्वारा गायन किया जाता है, दासी या दासियाँ चँवर डुलाती रहती हैं; दो मधुर भाषी सेवक भी वहाँ सेवा में रहते हैं, इस प्रकार की प्रस्तुति के साथ होने वाले गायन को 'हिंडोल राग' कहते हैं ।

**दोहा–47 :**

**द्रपन देषि बिलावल, भूषन लेत ऊतार ।**
**स्याम भई स्वोमी बिना, सेव करत हैं नारि ।।**

**अर्थ**–स्वामी के विरह संताप से व्याकुल नायिका दर्पण देखकर अपने आभूषणों को उतार लेती है। वह स्वामी के वियोग में सन्तप्त रहकर श्यामवर्ण की हो गई है। दो नारियाँ उसकी सेवा करती हैं । ऐसे दृश्य के साथ ''राग–विलावल'' की प्रस्तुति होती है ।

**दोहा–48 :**

**टोडी सुंदर सदन में, मिरग चरावति आहि ।**
**बरन कंवल इंदवर गहे, जग रीझत सुनि ताहिं ।।**

**अर्थ**–सुंदर धाम में नायिका अपने हाथों, मृगों (हरिणों ) को घास के कौर खिला रही होती है। इसका वर्ण नीलोत्पल आभा के साथ, वैसी ही मृदुता भी लिये होता है। ऐसे दृश्यांकन के साथ ''तोड़ी'' आश्रय राग की प्रस्तुति होती है। इसे सुन कर जगत् के सहृदय जन रीझ जाते हैं ।

**दोहा–49 :**

**नट नाराईन रक्त रंग, तुरंग भयौ असवार ।**
**झूझ करन गावत चल्यौ, कर सोहत करबार ।।**

**अर्थ**–नट सम्पूर्ण रूप से वैभव शाली रूप में और क्षत्रिय भेष में लाल वर्ण के वस्त्र धारण करके तथा अश्व पर सवार होकर, युद्ध करने के लिए गाता हुआ जा रहा होता है। उसके हाथ में तलवार शोभा प्राप्त कर रही होती है।

**दोहा–50 :**

**सुन्दर बरनी कनक तन, ऊदी आंगिया गात ।**
**बांह झुरावति छीन कटि, अंधावली सुहात ।।**

**अर्थ**–एक नायिका जिसका शरीर स्वर्ण के समान आभा लिये हुये होता है। ऐसी यह सुन्दरी अपने उन्नत वक्षस्थल पर कसी हुई अंगिया (चोली) धारण किये होती है। वह बांहें झुला रही होती है। उसकी श्रोणी (कमर या कटि) पतली होती है। ऐसे दृश्यांकन के साथ गायी जाने वाली विशिष्ट रागिनी को 'अंधावली' कहते हैं जो कि अति मनमोहक होती है।

**दोहा–51 :**

**चषि मूंदे बिथुरै चिहुरि, सुमिरत है भरतार ।**
**बसन भंगोहें जोग गति, गही देव गंधार ।।**

**अर्थ**–नायिका स्थिर आसन युक्त ध्यान–मुद्रा में अपने नेत्रों को बन्द किये बैठी है। यह विरहणी अपने स्वामी (नायक) का स्मरण कर रही है, इसका प्रियतम इसके अंग–अंग में व्याप्त है। इस नायिका ने (मंजीठ के रंग के) भगवा वस्त्र धारण करके, योग–मार्ग का आश्रय लेकर प्रियतम के दर्शनों की प्राप्ति की साधना को गायन में ग्रहण कर लिया है, यह 'देव–गंधार राग' है।

**दोहा–52 :**

**मलयागर तर निकटि है, भुज लांबी संगनार ।**
**चखि दीरघ रंग पीति है, दीपग राग बिचार ।।**

**अर्थ**–चंदन के तरू के समान, लम्बी भुजाओं वाली सुंदरी नायिका है, उसके नेत्र विशाल हैं, उसमें प्रीति भरी हुई है –इसे 'दीपक राग '(पट दीप की) हैं ।

**दोहा–53 :**

**पिय मूरति पाटी लिखत, यह धनासरी भांति ।**
**बरन हरित सुमिर्‌यौ करत, निसदिन अंसू ढरात ।।**

**अर्थ**–विरहणी नायिका इसके अन्तर्गत एक चित्र–पट्टिका पर प्रियतम का चित्र बनाती हुई दृष्टिगोचर हो रही है –इस भांति यह राग धनाश्री है । यह हरित वर्ण के वस्त्र धारण किये रहती है, प्रियतम का स्मरण हुई नायिका अहर्निश (रात–दिन) नेत्रों से आंसू गिराती रहती है।

**दोहा–54 :**

**चंदन पुहप सिर भंवर ढिग, मूरतिं मैंन बसंत ।**
**करि अविरती हरित रंग, करी चढ्यौ मैमंत ।।**

**अर्थ**–नायिका चंदन के वृक्ष की रूप शोभा को धारण किये हुये है। उसका सुन्दर मुख चन्दन का पुष्प है, उसके समीप जो काले केशों सहित शीर्ष है,वह भ्रमर की शोभा लिये हुये है। इस प्रकार के भावों में सजी नायिका की सुन्दर मूर्ति में,साक्षात् कामदेव की शोभा व्याप्त हो रही है। नायिका हरित वर्ण के परिधानों में है।

**दोहा–55 :**

**स्याम अंग मुख चंद्रमा, असतुति करि है देव ।**
**षरग गहे करदात कौं, यहै कान रै देव ।।**

अर्थ—श्यामल परिधानों (वस्त्रों) में सुशोभित अंगों वाली नायिका का सुन्दर उज्ज्वल मुख चन्द्रमा के रूप की शोभा को, धारण कर रहा है। यह मिलन की कामना को पूरा करने के लिये 'देव' की स्तुति कर रही है। इसके हाथ में दाँतदार 'खड्ग' तलवार है।

**दोहा–56 :**

**बैसारी गोरै बरन, सुघ रंग संग भरतार।**
**कंकुत कर करमनि पुहप, चंवर ढुंरावत नार॥**

अर्थ—नायिका उज्ज्वल गोरे वर्ण की है, सुख की भाव भंगिमाओं के साथ प्रसादन, इसके मुख पर आलोकित हो रहा है। इसका प्राण सर्वस्व प्रियतम उसके साथ है। यह नायिका हाथ में कंगन पहने हुये है। कानों में पुष्प अवतंसित (धारित) हैं और ऐसी नायिका की सेवा में एक स्त्री चंवर डुला रही है। बैसारी राग आश्रय राग है।

**दोहा –57 :**

**देषी मुरझाने बदन, द्रिग उनींद रतनार।**
**रंग कीनौ गोरें बदन, चँवर ढुंरावत नार॥**

अर्थ—ऐसी संभोग–संयोग से प्रभावित, नायिका दृष्टिगोचर हो रही है। उसकी आँखें अनिद्रा के कारण लाल–लाल हो रही हैं, यह गोरे वर्ण की सुन्दरी है, इसकी सेवा में एक स्त्री चँवर डुला रही है। यहाँ मेघ राग की प्रस्तुति हैं।

**दोहा–58 :**

**मेघ राग कीली करत, तिय को जत जतन चुषु।**
**गाढै आंलिगन भरत, स्याम बरन मन सुष॥**

अर्थ—मेघराग में नायिका श्यामल वस्त्र धारण किये हुये (अभिसारिका) है, नायक यत्न कर करके उसके मुख पर अपनी प्रेम–क्रीड़ाओं के साथ उसका प्रगाढ़ रीति से आलिंगन कर रहा है, उसके मन का सुख प्रकाशित हो रहा है।

**दोहा–59 :**

**बरन सष वन में रहत, सरबन लाषै ताहि।**
**धारै भेष मलंग कौ, यह मलार गति आहि॥**

**अर्थ**—नायिका शंख वर्ण की है, वन में रहती हुई —दृष्टिगोचर हो रही है, इसके कान लम्बे हैं और यह 'मलंग' (नग्न साधु) का भेष धारण किये हुये है। इस प्रकार यह गायन में (मलार) मल्हार राग—गति, प्रस्तुति की गई है ।

**दोहा—60 :**

**पहिरे बस्तर पुहुप के, चंदन कै बन माहि ।**
**गऊउ मलार हिये लगी, जिय कौं बिसरत नांहि ।।**

**अर्थ**—नायिका सम्पूर्ण रूप से पुष्पों के ही वस्त्र पहने हुये है, वह चन्दन के वृक्षों वाले वन में स्थित है। यहाँ गायन में गौड़ मल्हार राग की प्रस्तुति हो रही है। वह हृदय में प्रियतम की स्मृतियाँ रखकर गायन कर रही है।

**दोहा—61 :**

**बीन बजावत रैन दिन, गोरै रंग सारंग ।**
**स्रवन सुनत ही जान कहि, होत हरष अंग अंग ।।**

**अर्थ** —'सारंग' राग की प्रस्तुति में गौरवर्ण की नायिका अहर्निश (रात—दिन) बीन बजाती है। जान कवि कहते हैं कि इस राग को श्रवणों से सुनकर अंग— अंग प्रफुल्लित हो जाता है।

**दोहा—62 :**

**गिरबासी ढिंग चंदन द्वार, कर चूरि गियहार ।**
**नाम(राग) गाहै आसावरी, महा माननी नार ।।**

**अर्थ**—पर्वत पर चन्दन के वृक्ष के समीप हाथों में चूडियां पहने हुये और गलें में हार धारण किये हुये, महामानिनी नायिका, वेग के साथ 'आसावरी—राग' में सराबोर होकर (अवगाहन करती हुई) गायन प्रस्तुत कर रही है।

**दोहा—63 :**

**कर माला रूद्राछ की, जपी है गंगा तीर ।**
**जानहु भावक मोदनी, गरै भगौ हैं चीर ।।**

**अर्थ**—नायिका के हाथ में, रूद्राक्ष की माला है तथा गंगा के तट पर 'तप' करती दिखाई दे रही है। गले में (जोगियों के जैसे वर्ण के) भगवा— वस्त्र की पट्टिका पहने है। इस सुन्दर परिदृश्य के साथ मन को मुदित कर देने वाले ; मन—भावक राग की प्रस्तुति हो रही है।

दोहा–64 :

येक नार द्वे पुरुष संग, कंवल सीस तन कांति ।

रंग गऊर कांननि पुहप, श्री राग इह भांति ।।

**अर्थ**–एक नायिका है जिसका तन, कँवल के समान मृदुता से और चन्द्रमा सदृश उज्ज्वल कान्ति से सम्पन्न है, उसका वर्ण गौर है । कानों में पुष्प अवतंसित (आभूषित ) हैं और उसके संग में दो पुरुष हैं । इस परिदृश्य की प्रस्तुति के साथ गाये जाने वाले इस राग को 'श्री राग' कहते हैं ।

दोहा–65 :

मलयाचल गिर पुहप की, माला कंवल गात ।

पीत बरन है 'गूजरी', निसदिन बीन बजात ।।

**अर्थ**–नायिका पीत वर्ण के वस्त्र धारण किये है। उसका कोमल शरीर, पुष्पों की मालाओं से विभूषित होकर, मलयगिरि के चंदन के वृक्ष की सुगन्ध से युक्त, मनोरम शोभा को धारण किये हुये है। नायिका, रात–दिन बीन बजाती रहती है। यह 'गूजरी' राग है।

दोहा–66 :

तन सीतल कटि छीन अति, कंवल करन मधि स्याम ।

अंग संवारत पीत रंग, माल सिरी कल बांभ ।।

**अर्थ**–कल–कल स्वर वाली नायिका अपने अंगो को पीतवर्ण के वस्त्रों, आभूषणों एवं पुष्पों आदि से श्रृंगार युक्त बनाये है, इसका तन, चंदन व खश (उशीर) आदि के लेपों से शीतल है, कटि पतली है और इस सुन्दरी के कानों में ऐसे कमल अवतंसित हैं जिनके मध्यभाग श्यामलवर्ण के हैं । इस परिदृश्य में हो रहा गायन 'माल श्रीराग'का है। यह राग कल्याण थाट के अन्तर्गत आता है। प्रयोग काल संध्या समय है।

दोहा–67 :

बसतर पियरे मधि बन, रोवत गौरें गात ।

ककुभ रागनी मोहनी, अंगीया अरुन सुहात ।।

**अर्थ**–नायिका का गोरा शरीर पीले वर्ण के वस्त्रों से विभूषित हैं। उसके वक्षस्थल पर अरूण रंग

की चोली सुशोभित हो रही है। ऐसे सुन्दर परिदृश्य के साथ मोहिनी ककुभ रागिनी की प्रस्तुति हो रही है।

**दोहा–68 :**

**करत संजोग भतार सौं, रंग है पीत बिभास ।**
**बसतर पेन्हत पुहप के, आवत तनहि सुबास ।।**

**अर्थ**–बंगाला रागिनी की प्रस्तुति रंग भूमि में इस प्रकार से हो रही है कि नायिका पुष्पों की मालाओं आदि के द्वारा, सम्पूर्ण तन को पुष्पों के वस्त्रों के परिधान के रूप में आवृत किये हुये नायक के साथ संयोगावस्था में प्रेमपूर्वक क्रीडा–विलास कर रही हैं । इसके तन में मनोरम सुगन्ध व्याप्त है।

**दोहा–69 :**

**बैनी लांबी स्यांम बहु, बंगाला रंग सेत ।**
**राग रागनी तीस षट, सुनी राइ करि हेत ।।**

**अर्थ**–बंगाला राग श्वेतवर्णीय है। नायिका की वेणी बहुत लम्बी और काले वर्ण की है । यह सुंदरी श्वेत परिधान पहने हुये है। इन वर्णित परिदृश्यों सहित, अन्य विभिन्न राग–रागिनियों को मंचन के साथ राजा को मनोयोग के साथ सुनाया । राजा ने भी सम्पूर्ण अभिरूचि के साथ छत्तीस राग–रागिनियों को सुना ।

**चौपाई –42 :**

**ऊनंचास कहियत हैं तान । ते सब भलै सुनाई बान ।**
**मूरछंना कहिये इकईस । भलै सुनाई बिसवा बीस ।।**

**अर्थ**–जान कवि कहते हैं कि सरबंगी ने राजा जगरूप को भली–भाँति पूरी उनचास तानें सुनाईं । जान कवि के मत में इक्कीस प्रकार की मूर्च्छनायें (ग्राम) स्थिर स्वर व्यवस्था के साथ भली रीति से सुनाई।

**और जु काल कहै चौबीस । समझाई ते सभै जगीस ।**
**सुरति कहै बाईस सुग्यानी । कही बनाइ–ठनाइ बिनानी ।।**

**अर्थ**–सरबंगी ने राजा जगरूप को 'काल ' के चौबीस भेदों को भी भली–भाँति समझाया । श्रेष्ठ ज्ञानियों ने बाईस श्रुतियाँ वर्णित की हैं। सरबंगी ने पूर्ण 'बानों' के साथ उनको समझाया।

**फुनि करि निरति निझाई पातुर । राझि रहे पंडत चातुर ।**
**रंग रिक्त गति अति मन मोहै । घौटै की भौंरी हूं सोहैं ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने नृत्यकला की विशिष्ट शैली का प्रदर्शन इस प्रकार किया कि श्रेष्ठ नर्तकियाँ विस्मित हो गईं तथा कला–निपुण विद्वान् भी उसकी कला पर रीझ गये । रंग भूमि में रंजनकारी 'गति'के साथ उसने घोटे की भँवरी का प्रदर्शन सम्पूर्ण कौशल के साथ प्रस्तुत किया ।

**उरपति रपछल–बल पग छाजै । रंग–भौम मैं अधिक बिराजै ।**
**औघर भेद सुरमई रंग । मिरदंगहिं नाचै सरबंग ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने बल एवं वेग के साथ व्यवस्थित क्रम से रंगभूमि में 'नर्तन' में पग संचालन किया। उसकी नृत्यकला,सम्पूर्ण शोभा के साथ प्रतिष्ठित हुई । सरबंगी ने औघड़ का भेष धारण किया, सैकल (राख या भस्म) से सुरमई रंग धारण करके मृदंग–वादन के साथ नृत्य प्रदर्शन किया जो अत्यन्त विमुग्धकारी बना था।

**दोहा–70 :**

**निरत कला ऐसी करी, रीझ रह्यौ है राइ ।**
**दीनै साज मंगाइ (कै) बहु, अब द्यौं इनै बजाइ ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने ऐसी निपुणता से नृत्य– कला का प्रदर्शन किया कि राजा रीझ गया । राजा ने विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्र आदि मंगवाये। उसने उन साजों पर विभिन्न प्रकार की विशिष्ट ध्वनियाँ बजाकर सुना दीं ।

**भुजंगी छंद :**

**बजायै सम साज वै सब अंगी, तंबूरे खाजैं अंब्रिती म्रिदंगी ।**
**हुरक बीकठतार किनर, उपंगी, दुन्दभ ढोल कुंभ–खंजर सारंग सुरंगी ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने समस्त साज तंबूरा (तानपूरा) इसराज (खंजरी), अमृती, मृदंग, हुरक, वीकठतार, किन्नर–उपंगी, दुंदुभ, ढोल, कुंभ और सारंगी आदि को उत्तम रागों और तालों को अंगों, उपांगों के साथ मनोरम रीति से बजा कर विभिन्न प्रकार की ध्वनियां सुनाई ।

**सोरठा–4 :**

**मुवौ धनंतर नांहि, अजहूं जीवै जगत मैं ।**

**भाषौगे मन माहि, बैदक मेरी देषि कै ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने राजा से निवेदन किया कि वैद्यक के सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता 'धन्वंतरि' को आज भी मरा हुआ मत समझिये। हे राजन् । मेरा वैद्यक–ज्ञान देख कर आप निर्णय कीजिये । मैं आशा करता हूँ कि आप भी यही कहेंगे कि 'धन्वतंरि' (सरबंगी के रूप में ) आज भी जीवित है।

**दोहा–71 :**

**हस्त–पदी जो आनि, हौ और रदौती मूर।**

**'सोनां –रूपा' देउ करि, अबहि राइ हजूर ॥**

**अर्थः**– सरबंगी ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया,''हे, पृथ्वी के राजा हुजूर! अब मैं संगीत की प्रचलित शैलियों– 'हस्तपदी' सम्पूर्ण रदौती और 'सोना–रूपा' को कथा–रूपक अभिनय प्रयोग विज्ञान के अनुरूप, आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ।

**चौपाई–43 :**

**राइ कह्यौ अब बान चलावहु । यह विद्या हू हमहिं दिखावहु ।**

**कौड़ी बार बांधि कैं मारी । राजा अपने नैन निहारी ॥**

**अर्थ**–राजा जगरूप ने सरबंगी से कहा क़ि अब बाण चलाओ, यह धनुष चलाने वाली (तीरंदाजी) विद्या का, कौशल भी हमको दिखाओं । सरबंगी ने एक बाल में एक कौड़ी बाँधकर दूरी पर लटका दिया, इसके पश्चात् उसने कौड़ी पर लक्ष्य (निशाना) साध कर, अपने धनुष से बाण चलाया। सरबंगी के द्वारा चलाये गये तीर से, कौड़ी का बेधन (छिद्र) हो गया। इस कौशल को राजा ने अपनी आँखों से स्वयं देखा ।

**बहुरि ताल पैठ्यो सरबंग । जल पौढ्यौ बूड्यौ नहि अंग ।**

**राइ कह्यौ कविताई जानहु । गहर छांडि तौ बेगि बषानहु ॥**

**अर्थ**–इसके पश्चात् सरबंगी ने तैरने की विद्या का कौशल प्रदर्शन करने के उद्देश्य से तालाब में प्रवेश किया और जल में इस रीति से तैरता रहा कि उसका (शरीर का) एक भी अंग जल में नहीं डूबा । अब राजा ने पूछा,''क्या तुम काव्य कहना जानते हो ? यदि जानते हो तो विलम्ब त्याग कर शीघ्र काव्य सुनाओ।

**कागर लेषन और मसानी। राषै आगैं आनि बिनानी।**

**असतुति लिषि दीनी कर राजैं। तुम्ह कौ सकल बडाई छाजैं॥**

**अर्थ**–कागज पर लिखना स्याही के उत्तम प्रकारों के प्रयोगों के कौशल को दिखाओ। सरबंगी ने तब राजा की प्रशंसा परक स्तुति लिख दी, जिसका भाव यह था कि ''तुमको सकल बड़ाई छाजै'' अर्थात् आप में अपार गुण हैं। आपकी जितनी भी अधिक प्रशंसा कि जाये यह शोभा युक्त होगी क्योंकि आप गुण समुद्र हैं।

**सवईया–4 :**

**जैसे सुने हम तैसे निहारे, रूप उजागर सागर हौ।**
**गुन आगर दान सुजान पियारे ॥**
**चातुर आतुर हौ सुरकी। धुनि रीझत पंडित होत न न्यारै।**
**कौप किये तें अलोप निपजि ह्वै, तो पतिहारै पहार हूं जापे।**
**प्राची प्रतीची ऊदीची औ दचछन, जैसे सुने हम तैसे निहारै॥**

**अर्थ**–उसने भाव को भरते हुये काव्य– रचना प्रस्तुति की जिसमें प्रस्तुत किया कि जिस प्रकार के अनेक शुभ गुणों से सम्पन्न सुने थे; वैसे ही आपको प्रत्यक्ष में मैंने देखा है। आप उज्ज्वल रूप के सागर हैं। आप गुणों में अग्रगण्य हैं। परम सद्‌बुद्धिधारी हैं, दानी हैं, अत्यंत प्रिय हैं, चतुर हैं, क्षिप्रकारी हैं और भली नीति पर चलने वाले हैं।'ध्वनि' पर रीझने के प्रभाव में भी आपकी अवलोकना शक्ति लुप्त नहीं है अर्थात् आप ऐसे विशेष निर्लिप्त पंडित हैं। आप क्रोध में भी बुद्धि विवेक से कदापि च्युत नहीं होते हैं। विश्वास के अचल हैं; एक बार तो पहाड़ अपने स्थान से डिग सकता है किन्तु आपके प्रति अचलता में विश्वास करना उचित है। आप कदापि विश्वास के विपरीत कार्य नहीं कर सकते हैं। मैंने ,पूर्व, पश्चिम, उत्तर, और दक्षिण सम्पूर्ण दिशाओं में घूम फिर कर आपकी जो–जो प्रंशसायें सुनी थीं, आप में समस्त गुणों की उपलब्धता मैंने देख ली है।

**चौपाई–44 :**

**रीझे राजा औ प्रधान। सभनि निहार्‌यौ ले लै पान।**

**राजै कह्यौ सांच कहि मोकों। असु असवारी आवत तो कौं॥**

**अर्थ**–राजा और प्रधान दोनों उस पर रीझ गये । उपस्थित सभी प्रतिष्ठित सज्जनों ने हाथों से सम्मान का पान सरबंगी को देकर, उसे उच्च प्रशंसा की दृष्टि से देखा । ऐतत्पश्चात् राजा ने सरबंगी से कहा, एक बात मुझको, यह भी सच–सच बताओ कि क्या तुम अश्व की सवारी में भी निपुण हो ?

**जाहुं दुसहि तेरें बलिहारी । देखहु गेंद लै मिले सु वारी ।**

**ज्योतिष औ भंडार की सुरत । चौरासी आसन नहिं दुरत ॥**

**अर्थ**–मैं तुम पर बलिहारी हूँ। मुझे आशा है कि तुम अश्व सवार हुये रह कर ही, चलती हुई गेंद को उठाकर ले आओगे। सरबंगी ने ऐसा करके दिखा दिया। ज्योतिष विद्या और भण्डार का रख रखाव (लेखा–जोखा) सम्बन्धी ज्ञान सरबंगी ने प्रकाशित कर दिखाया। कष्ट साध्य चौरासी योगासनों की निपुणता भी उसने प्रदर्शित की।

**मैं जोतिष देख्यौ जोर । आवैगौ अरि ज्यौ घनघोर ।**

**ह्वैगी जैति तिहारी राइ । दुसहिं सीख सांचै कर आइ ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने राजा से निवेदन किया कि मैंने अपनी ज्योतिष विद्या से ऐसा 'भविष्य' ज्ञात कर लिया है कि आपके ऊपर शत्रु का घनघोर आक्रमण होगा। हे राजन् । आगामी युद्ध में आपकी विजय होगी, दुष्टों का दमन होगा । यह बात, सच होगी ।

**दोहा–72 :**

**जोतिष मेरौ सांच तौ, होइ तिहारी जैत ।**

**दुसह सीस कर आइ हैं, जुगन असीसहि अैत ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने कहा कि यदि मेरी ज्योतिष विद्या में सची गति है, तो मेरे द्वारा कही गई, सब बातें, सच–सच घटित होंगी । दुष्टों का आपके द्वारा दमन होगा । दुष्कर कार्य सिद्ध होंगे। मेरी यह शुभ आशीष सदैव आपका शुभ करेगी ।

**दोहा–73 .**

**तंत्र मंत्र तंतमि भर्‌यौ, देष्यौ मेरौ ग्यांन ।**

**चौदह विद्या राइ जू, मो हूं मैं पहिचान ॥**

**अर्थ**–हे राजन्! तंत्र–मंत्र रहस्यमय तत्वों से भरे– पूरे होते हैं। मैंने साधना अभ्यास से तंत्र–

मंत्र दोनों विद्याओं के ज्ञान में सिद्धि प्राप्त कर ली है। मैं अपने ज्ञान को प्रत्यक्ष दिखाता हूँ। मेरे पास चौदह विद्याओं का पूर्ण ज्ञान है।

**चौपाई–45 :**

**राइ कह्यौ कछु जानत खेल । मैरो इन बतियन सौं मेल ।**

**नांव रखायौ मैं सरबंगी । कछु कछु जानत हू सभ अंगी ॥**

**अर्थ**–राजा ने सरबंगी से पूछा, ''क्या तुम खोलों को खेलना जानते हो? मुझे खेलों को खेलना पसन्द है। सरबंगी ने बताया कि मेरा नाम सरबंगी रखा गया है। जैसा मेरा नाम है, वैसे ही गुण मैंनं अर्जित किये हैं। मैं सभी 64 कलाओं के समस्त अंगों को जानता हूँ।

**चौपर नरद और सतरंज । पुनि गंजिफा चिंता भंज ।**

**राइ कह्यौ सतरंज मंगावहु । मिली निज सेवक षेल रचावहु ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने बताया कि चौपड़, नरडे,शतरंज और चिन्ता दूर करने वाले गंजीफा खेल को मैं खेलना जानता हूँ। राजा ने अपने प्रधान से कहा कि शतरंज मंगवा लो तथा अपने सेवकों को साथ में लेकर इस सरबंगी के साथ शतरंज खेलो ।

**करी बहुत इन छल बल घात । निज सेवक सभ कीनै भ्रत ।**

**राजा कौं उपज्यौ रस– हास । निज सेवक कौ मिट्यौ हुलास ॥**

**अर्थ**–राजा ने अपने प्रधान से कहा कि शतरंज मगवा लो और अपने सेवकों के साथ में सरबंगी के साथ शतरंज खेलो । सरबंगी के साथ शतरंज खेलते समय, इस प्रधान और सेवकों ने छल के बल पर बहुत–सी बेइमानी की घातें चलाई; किन्तु सरबंगी ने निज कौशल से राजा के समस्त सेवकों की बुद्धि को भ्रमित करके खेल में पछाड़ दिया । सरबंगी द्वारा सभी सेवकों को भ्रमित कर देने से राजा को हँसी आ गई । उसके निज सेवकों की खेलने में उमंग ही समाप्त हो गई ।

**अबहिं राइ जू आप नरावहि । तो हमकौ नहिं दोष लगांवहि ।**

**षेलन लगे राइ सरबंगी । जानत हो भयौ मात उमंगी ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने राजा से कहा, ''हे राजन्! आपके ये खिलाड़ी अपनी रक्षा जब कर ही नहीं रहे हैं, तब खेल में मेरे द्वारा आक्रमण होने की बात कहकर,दोष मुझ पर लगायें, तो यह अनुचित

है।'' ऐतत्पश्चात् राजा स्वयं जब सरबंगी के साथ शतरंज खेलने को बैठ गये तब सरबंगी के हृदय में अपार उत्साह भर गया।

**सहंस मुहर राजा दी आन। बांह दई निज सेवक पान।**

**राजै कह्यौ सुनहु अगवानी । यह परधान करन की बानी ।।**

**अर्थ**–राजा ने प्रसन्न होकर एक हजार स्वर्ण मुद्रायें सरबंगी को भेंट में दी। उसने इन सभी स्वर्ण मुद्राओं को अपने हाथ से राजा के सेवकों में वितरित कर दिया । राजा ने कहा मैं सरबंगी को अपना प्रधान नियुक्त करूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा मैंने कर ली है।

**राजा जू जो करत सु छाजै । पै केसनि बिन नाहिं बिराजै ।**

**राइ कह्यौ कछु मांगहु माली । सांच कहत ना भाषत ठाली ।।**

**अर्थ**–सरबंगी ने विनम्रता पूर्वक निवेदन किया कि राजा जो भी कार्य करता है,वह उसकी शोभा वृद्धि करता है; किन्तु प्रधान के पद पर नियुक्ति से पहले सभा के श्रेष्ठ सदस्यों के पूर्व अनुमोदन से पद की प्रतिष्ठा में चार चाँद लग जाते हैं। राजा ने प्रसन्नता में भर कर कहा, हे माली (सरबंगी) ! कुछ माँगो। मैं तुम्हें सत्य रूप में, जो कुछ माँगोगे उसे दे दूँगा। मैं व्यर्थ में नहीं कर रहा हूँ।

**जो मांगहि सोई द्यौं तोहि । मन बांछित अपनौ कहि मोहि ।**

**दिन दिन राज राइ कौ बाढै । इह उरू जिनि इतते कोउ काढै।।**

**अर्थ**–तुम जो कुछ माँगोगे वही तुमको दे दूंगा। तुम अपनी मनवाँछित माँग को मुझको बताओ। सरबंगी ने कहा कि मैं ईश्वर से यही मंगल कामना करता हूँ कि आप श्री राजा साहब का राज्य दिन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त करे। पुनः मुझे इस बाग में रहने की इच्छा बनी हुई है। इसमें मुझे सदैव यह डर बना रहता है कि कभी कोई मुझे इस बाग से बाहर न निकाल दे ।

**भुजंगी छंद :**

**रहौं बाग मै तौल हौं दरस तेरौ, इहै दान,बड्डौ यहै मान मेरौ ।**

**करौं सेव ऐसैं करै जेम चेरौ, यहै बहुत मोकौ करै राइ नेरौ ।।**

**अर्थ**–सरबंगी ने अपनी माँग प्रस्तुत करते हुये विनम्रता पूर्वक निवेदन किया कि आप मुझे बाग में रहने की अनुमति प्रदान कर दीजिये। इस इच्छा की यदि आप पूर्ति कर देते हैं तो मैं इसे

अपने लिये बहुत बड़ा दान और बहुत बड़ा सम्मान समझूँगा। मैं यदि बाग में रहूँगा तो यहाँ आपके शुभ दर्शन प्राप्त करता रहूँगा। मेरे लिये यह सर्वाधिक सौभाग्य की बात होगी कि राजा साहब इस माँग को पूरा करके, मुझे अपने समीप रख लेंगे। मैं भी समीप रह कर आप श्री दरबार की इस भाँति सेवा किया करूँगा, जिस प्रकार कि एक दास अपने स्वामी राजा की सेवा करता है।

**चौपाई–46 :**

**राइ दई अपनी करवार। काढै तिह निरभै ह्वैमार।**
**राजै टेर्‌यौ माली हार। राषी याहि किये मनोहार ॥**

**अर्थ**–राजा ने सरबंगी को अपनी ओर से एक तलवार दी और निर्देश दिया कि जो कोई तुमको बाग से बाहर निकालने की चेष्टा करे, उसको तुम निर्भय होकर इस तलवार से मार डालना। इस पर भी सरबंगी आश्वस्त नहीं हुआ, तब राजा ने बाग की देखभाल करने वाले माली को बुलवा कर आदेश दिया कि इस सरबंगी को मान–सम्मान के साथ बाग में रखना।

**जौ याकौं इत नाहिन पांउ। तौ कौं तेरे ग्ररन मिलाऊ।**
**सपति द्यौस गुन याहि बिचारे। बहुरि आपसैं घर पग धारे ॥**

**अर्थ**–राजा ने माली को सचेत किया, मैंने सरबंगी को, इधर बाग में, भविष्य में कभी भी यदि सुरक्षित दशा में प्राप्त नहीं किया तो तुम्हारी ग्रीवा शरीर से जुड़ी हुई नहीं रहने दूँगा (अर्थात् तुम्हारी गर्दन काट कर धड़ से अलग कर दूँगा) राजा ने सम्पूर्ण दिवस तक, सरबंगी के श्रेष्ठ गुणों पर ही विचार किया। एतत्पश्चात् वह (राजा) अपने राजगृह को चले गये।

**चरचा हौइ रह्यौ सरबंगी। ऐसौ नांहि और बहु अंगी।**

**अर्थ**–सरबंगी के विषय में इस प्रकार की प्रशंसा सर्वत्र चर्चित हो गई कि इसके समक्ष और कोई दूसरा व्यक्ति बहुविध कला कौशल निपुण नहीं हैं।

**भुजंगी छंद :**

**कबी सुरा विद्याधर नरे सुर उमंगी।**
**जगत गुर अनंत रूप–मूरति अनंगी।**
**मोहा मोय गुन की गही सर्व अंगी।**
**लयौ भार येतौ कमठ ना भुजंगी ॥**

अर्थ—सरबंगी के विविध गुणों की प्रशंसा इस प्रकार होने लगी कि यह कवियों में सर्वश्रेष्ठ है। विद्यावन्तों में सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ है और सोत्साही व्यक्ति है। यह कामदेव के समान सुन्दर रूप वाला है। इसने समस्त कलाओं के सम्पूर्ण अंगों में निपुणता प्राप्त कर ली है और यह सद्गुणों की अपार (महा) राशि है। यह सरबंगी पुरूषार्थी है। शीलयुक्त है। यह शुद्ध चैतन्य से युक्त, अलूक्ष है जिस प्रकार पृथ्वी का भार उठाने का व्रत लिये हुये (कच्छप) कमठ एवं शेषनाग अपने द्वारा अंगीकार किये हुये कार्य को, महान् कष्टों में पड़ने पर भी पूरा करते हैं उन्हीं के समान यह सरबंगी भी अङ्गीकार किये हुये कार्य को प्रत्येक दशा में, भली–भाँति पूरा करने वाला हैं।

**चौपई–47 :**

**यहै बात पुर में बिस्तरी। कौतूहल कैं काननुं परी।**
**घरी घरी मैं(ठ) भरि हैं सांस। कहत कबहि द्यौं पूजे आस।।**

**अर्थ**—यही (सरबंगी की प्रंशसा की) बात छबिनेर पुर में फैल गई। राजकुमारी कौतूहल दे के कानों में भी ऐसी बात सुनाई पड़ गई। अब सरबंगी के गुणों पर रीझ कर तथा उससे मिलने को आतुर हो कर राजकुमारी वियोग के संताप के कारण घड़ी घड़ी में दीर्घ श्वाँसें भरने लगी। वह उस समय के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी, जब बाग में पूजन हेतु जाने की समयावधि प्रारंभ हो सकेगी। जिसके प्रारंभ होते ही, सरबंगी से मिलने की आशा पूरी हो सकेगी। वह अपनी मिलन की आशा के पूरे होने की प्रतीक्षा की बात प्रकट में कहने लगी थी।

**जबहि अवधि करतार पुजाई। अति उमंग सौ रेर फिराई।**
**रेर सुनत सब पुर थररानौ। सरबंगी चित सुख उपजान्यौ।।**

**अर्थ**—जब ईश्वर की कृपा से ऐसी समयावधि का शुभारम्भ हो गया, तब उसने अत्यन्त उमंग से बाग, में जाने के मार्ग पर (डुग्गी पिटवा कर) चेतावनी की उद्घोषणा करवा दी। उद्घोषणा को सुनकर नगर के निवासियों में भय व्याप्त हो गया। इधर सरबंगी के हृदय में (चित्त में) इस चेतावनी को सुनकर, अत्यन्त सुख उत्पन्न हो गया।

**भोर भयें धन उपबन आई। ठांव ठांव सब बान बनाई।**
**बैठी धन सरसी पर आइ। सरस दरस ससि ज्यौं झिलकाइ।।**

अर्थ–प्रभात होते ही, राजकुमारी का उपवन में आगमन हुआ। समस्त स्थलों को विविध प्रकार के शृंङ्गार से सज्जित किया गया। सौभाग्यवती राजकुमारी सरोवर के तट पर आकर बैठ गई। उनके रूप–सौन्दर्य का दर्शन ऐसा (सरस) आह्लादक था जैसे कि उदित होता हुआ शशि झलक रहा हो।

**सवइया–5 :**

**अधर अधर अधरस धर मधु से, मधु बैन मधुर अलापुनी समान हैं।**

**पाई मैंन झाई दिषराई दई नैननि मैं, आई चपलाई तरूनाई के उठान हैं।**

**निकसें उरोज लयें चोंज वै मनौज मौज, बाढै नंह नोज कंजकली परमान हैं।**

**बैसंध सुगंध मनफंध सिंधु सुंदर। ता आनंद की बानन सौं रीझे प्रभु जान हैं।।**

अर्थ–सरोवर के तट पर रूपवती ललनाओं के साथ में विराज रही सुन्दरी का वर्णन प्रस्तुत करते हुये जान कवि कहते हैं कि राजकुमारी और साथ की अन्य सखियों के अधर मधु से भरे हुये हैं। उनके मधुर आलाप और बोल भी समान रूप से चित्ताकर्षक हैं । उनके नयनों में कामदेव की मनोरम छवि झलक रही है। उनमें चचंलता है। अंग अंग में तरुणावस्था के कारण उठाव है। उनके (उरोज) वक्षस्थल भोग के लिये मन के ओज को लेकर चौगुनी उन्नति के साथ उदित (उभत) हुये हैं । वे वक्षस्थल विकसित कमल की कली के समान अन्तःस्थल में वृद्धित हो चुके हैं (बस खिलने को ही हैं)। उनकी आयु 'संधि' की किशोर अवस्था के कारण उनके तन में सुंदर (चित्ताकर्षक) मनोहारी सुगंध है, जो फन्दे के सदृश प्रभावी है। उनका रूप सौन्दर्य सिन्धु के समान अगाध है। उनके मुख की अवलोकन, चितवन आदि मोहक भाव भङ्गिमाओं पर, परम विवेकी सर्वसमर्थ–सहृदय जन–मुग्ध होते हैं।

**चौपई–48 :**

**कौतूहली बोली सुनि दाई। जानत किह कौतूहल आई।**

**माली येक सुन्यौ यह बाग। देखन कौ बाढ्यौ अनुराग।।**

अर्थ–कौतूहल दे राजकुमारी ने धाय माँ से कहा कि ''क्या तुम को मालूम है कि मैं तुम्हारे पास किसी प्रयोजन से कोई खोजपूर्ण कार्य करवाने के लिये आई हूँ। सम्भवतः तुमको मेरे मन की जिज्ञासा के विषय में ज्ञात नहीं होगा। मैं बताती हूँ। मैंने इस बाग में निवास करने वाले एक माली के विषय में चर्चा सुनी है, उसे देखने के लिये मेरे मन में अत्यधिक अनुराग उत्पन्न हो गया है।

बेग ताहि मो ढिगु लै आव। उहि गुन सुनिबै कौ चित चाव।

दाई चली संग लै चेरी। देत फिरी उपबन मैं फेरी।।

**अर्थ**–उसको शीघ्रतापूर्वक मेरे पास लेकर आओ। मेरे चित्त में, उसके संगीत आदि के गुण युक्त बोल सुनने की उत्कट अभिलाषा जागृत हो गई है। धाय माँ ने, एक दासी को अपने साथ में लिया और वह उस गुणी माली को खोजती हुई बाग में भ्रमण करने लगी।

देषैं कहा चुनत है फूल। कंवलानन चेरी रही भूल।

धाइ कह्यौ माली पन तान्यौं। राइ सुता कौ हारन बान्यौं।।

**अर्थ**–घूमते–घूमते वे दोनों उस स्थान पर पहुँची जहाँ वह सरबंगी (फूल) पुष्प चुन–चुन कर तोड़ रहा था। उसके सुन्दर रूप को देखकर कमल के सदृश सुन्दर रूप वाली दासी (तो) मोहित मुग्ध हो गई। धाय ने उस (सरबंगी) से व्यंग्य के साथ कहा, अरे तुमने पुष्पों को चुनते–चुनते यह कितना (अधिक) मालीपन का कार्य बढ़–बढ़ कर पूरा कर लिया है। क्या तुमसे राजकुमारी का स्वागत करने हेतु अर्पित किये जाने योग्य प्रेमहार अभी तक नहीं बन पाया है।

**दोहा–49 :**

फूले फूले फूलिये, हार किये बहुरंग।

नाहि समावति अंग मैं; फूलि रह्यौ सरबंग ।।

**अर्थ**–धाय माँ से शुभ संकेत प्राप्त करने के बाद सरबंगी, प्रसन्नता के कारण खिले हुये पुष्पों का चयन करके उनसे भाँति भाँति के रंग बिरंगे हारों के निमार्ण कार्य में निरत होने के समय में बड़ी उमंग के साथ हार बना रहा था । उसके तन के समस्त अंग विकसित (फूल) हो रहे थे । इस प्रकार से उसने अनेकों प्रकार के सुंदर सुंदर हार राजकुमारी को भेंट में देने के निमित बना कर तैयार कर लिये ।

**चौपाई–49**

कुंवर कह्यौ मैं अधिक संकाऊ । बिन टेरैं कैसैं ढिंग आऊ ।

अग्या सुनि ऊपजी मन हरिषा । सकूत तिन बरषी मानौं बरिषा ।।

**अर्थ**–कुँवर सरबंगी ने धाय माँ से कहा ''मैं शंका से ग्रस्त रहता हूँ कि बिना बुलाये यदि वहाँ पहुँच गया तो किसी प्रकार का अपमान होने का डर भी सम्भव है। इसलिए बिना बुलाये

राजकुमारी के समीप कैसे पहुँचू? अब आपके मुख से उस राजकुमारी की मुझे बुलाने की आज्ञा ज्ञात हो जाने से मन में हर्ष उत्पन्न हो गया हैं । अनवसर पर बिना सम्भावना के वर्षा को सौभाग्य मानना चाहिए। मेरे लिए भी यह बुलावा उपर्युक्त प्रकार के परम हर्षप्रद वर्षण के समान परम सौभाग्यकारी हैं।

**उमंग हुलास करी नौलाषी। बरन अनेक पुहप दुष नासी ।**

**लै गौन्यौ दाई कैं संग । अंग अंग ऊमंग भयौ सरबंग ॥**

**अर्थ**—इस शुभ आमंत्रण से मेरे चित में उत्साहपूर्ण आनंद भर गया है। इसके कारण मैंने 'नवलखा' माला, रंग बिरंगे पुष्पों से बनाई हैं, यह माला चित्त के दुखों का नाश कर देने वाली है । सरबंगी के तन के प्रत्येक अंग में उमंग भरी हुई थी, इस आनन्दमयी अवस्था में वह धाय माँ के साथ उत्तम नवलखा हार साथ में लेकर राजकुमारी से मिलने चल दिया ।

**करि जुहार दीनी नौ लाषी । रीझि रही बीबी फुनि दासी ।**

**अर्थ**—सरबंगी ने समीप में पहुँच कर राजकुमारी जी को प्रणाम करके, वह नवलखा माला भेंट की । उस प्रीतिदायी माला के उपहार को प्राप्त करके प्रियतमा राजकुमारी बहुत विमुग्ध हो गई तथा साथ में खड़ी दासी भी इस अनुपम प्रेमोपहार से रीझ उठी ।

**नराइन छंद :**

**महा सुरंग रंग रंग, पुहप देवे आपनि कौ ।**

**संवार बार बार कै, बिचार बानि बानि कै ।**

**रिझाइ नारि बसकरी, सुभाइ और ही भयौ ।**

**सनेह सरब अंग कौ, सु अंग अंग मैं छयौ ।।**

**अर्थ**—सरबंगी ने सौन्दर्य उपासना में निपुणतापूर्वक अत्यन्त सुन्दर, विभिन्न रंगों और विभिन्न आकार–प्रकारों के पुष्प चयनित करके विचारपूर्वक, श्रेष्ठ सजावट की दृष्टि रखकर ऐसे विशिष्ट मनोरम क्रम से व्यवस्थित करके प्रेमोपहार वाली माला रची। इस प्रकार की कौशल पूर्ण कला से उस नारी को रिझा (विमुग्ध) करके अपने वश में कर लिया । इस रीति से राजकुमारी ने अपने लिये, ऐसा उपेक्षित स्वभाव ग्रहण करना चयन किया जो कि राजकुमार सरबंगी की अपेक्षा के अनुरूप बना । सरबंगी के प्रति स्नेह के विभिन्न भावों भरा प्रेम माला के ग्रथन के प्रभाव से राजकुमारी के अंग अंग में व्याप्त हो गया ।

**चौपई संख्या–50 :**

**ऐसो कर्‌यौ भेद कछु नयौ । कौतूहल कौतूहल भयौ ।**
**राषि रही पै रहे न नैन । लागै दैन नेह कौ सैंन ।।**

**अर्थ**–सरबंगी ने माला में विभिन्न रंग बिरंगे पुष्पों को विशिष्ट संकेतों को देने वाले क्रम से गूंथ कर बनाया था जिससे कि कलावती राजकुमारी को संकेतों से प्रेम भावों के संदेश प्राप्त होने से अनुपम कौतुहल उत्पन्न हो गया । वह विचार पूर्वक अपने नेत्रों को हृदय के प्रेमपूर्ण आवेगों से युक्त करके, सरबंगी की ओर देखने से रोकने की चेष्टा करने पर भी संयम खो बैठी जिससे उसके नयन सरबंगी को स्नेह भरे संकेत देने लगे ।

**गयौ बाग में फिरि सरबंग। कौतूहल मन लीनौ संग ।**
**उठि ठाढ़ी भई मूरति काम । सजि बिछांवन गौनी धाम ।।**

**अर्थ**–एतत्पश्चात् सरबंगी वापिस बाग में (अपने स्थान पर) चला गया, उसके साथ ही कौतूहल दे का मन भी खिंचा चला गया । वह कामदेव की मूर्त्ति सुन्दरी कौतूहल दे, वहाँ से उठकर खड़ी हो गई और बाग में पहुंची जिसमें बिछावन आदि सम्यक् रीति से सजे हुए थे।

**निकटि सरोवर नीकौ सदन । तहां जाइ बैठी ससि बदन।**
**चेरी कह्यौ धाइ उहि टेरैं । कौन घाट गावत है हेरैं ।।**

**अर्थ**–सरोवर के किनारे पर ही यह उपयुर्क्त प्रकार का सुन्दर सदन सजावट से युक्त था उसी में जाकर वह सुन्दरी बैठ गई । राजकुमारीजी ने दासी को आदेश दिया कि धाय को निर्देश दो कि वह (धाय माँ) सरबंगी कलाकार को बुलाकर यहाँ ले आये। वह बाग में किस स्थान (घाट) पर गायन कर रहा है उस स्थान का पता लगा ले ।

**पवानी छंद–1 :**

**बुलाइ धाइ काछिया, सुनाइ घाट आछिया ।**
**कहा इहै स्रबंगीया, करैं महा तरंगिया ।।**

**अर्थ**–धाय सरबंगी को बुलाने गई । उसने आवाज लगाई, अरे ओ काछिया (हे माली), अरे यहाँ वहाँ क्यों गा रहा है? तुझे परम सौभाग्यप्रद स्थल पर गायन का अवसर मिला है। चल,

वही गायन सुनाना । समीप जाकर और गायन सुनकर धाय माँ ने कहा, ''क्या यही सरबंगिया है जिसकी सर्वत्र प्रंशसा होती है? यह तो गायन से हृदय में अनुराग पूर्ण भावों की महातंरगे उत्पन्न करने वाला है।

**चौपाई–51 :**

**निकट गई गुरमाली धाइ। लघु माली की बात बताइ।**

**कुल कौ कौंन कहां तें आयौ। कौनंहि उपबन कैं मुगलायौ।।**

**अर्थ**–इसको बुलावा देने के पश्चात् धाय माँ बड़े माली के पास पहुँची। उसने राजकुमारी के बुलावे आदि के विषय में लघुमाली सरबंगी से संबंधित सभी बातें जो घटित हुई थी, उस बड़े माली को बता दी।

**मोहि सुरत कछु नाहिन धाइ । या सौ दयावंत है राइ ।**

**याकैं कर दीनी करवार । उपवन तें काढै तिंह मार ।।**

**अर्थ**–माली ने उत्तर दिया– इसके कुल आदि के विषय में मुझे कुछ स्मृति नहीं आ रही है, इसके विषय में ऐसी जानकारी मुझे नहीं है, इसके विषय में मुझे यह तथ्य भली भाँति ज्ञात हैं कि राजा (आपका पिता) इसके प्रति दयावंत है। राजा ने स्वयं इसके हाथ में तलवार देकर इसे निर्देश दिया है कि तुम उपवन में रहो। तुम्हें जो कोई भी उपवन से निकालने की चेष्टा करे उसे (तलवार से) मार डालना ।

**बिततें उठि वाहि ढिगु आई । कर्‌यौ जुहार जानि गुर दाई ।।**

**अर्थ**–धाय माँ उस बड़े माली से उपयुक्त जानकारी प्राप्त करके उस सरबंगी के समीप आ गई। धाय माँ ने बड़े माली से यह जान कर कि यह अतिमहत्वपूर्ण (प्रतिष्ठित) व्यक्ति है, उसको विनम्रता पूर्वक (पास जाकर)प्रणाम किया ।

**दोहा–75 :**

**यहै कंवर मन मैं कर्‌यौ, यातें पाऊं सिध्धु ।**

**सावधान सेवा करौ, मत कर आवै रिध्धु ।।**

**अर्थ**–धाय माँ ने अपने मन में यह विचार सुनिश्चित कर लिया कि सरबंगी अब राजा का दामाद बन जायेगा, यह भविष्य की बात जानकर यदि मैं अपना आगामी स्वधर्म कर्त्तव्य ग्रहण

करूंगी तो इस पंथ से मुझे सिद्धि (सफलता) का श्रेय मिल जायेगा । मैं अब इसके कार्य को साधने में परम सहायिका–सेविका बनूँगी, इससे बहुत सम्भव है कि मुझे रिद्धि प्राप्त हो जाये।

**चौपई–52 :**

**असतुति राय–सुता सुब सुनी, वै गुनगाहक हैं तुम गुनी।**
**चल–विद्या कौ करहुं बिचार, वाकौं बहुत रागसौं प्यार।।**

**अर्थ**–धाय माँ ने सरबंगी को बताया कि राजकुमारी ने आपके प्रस्तुत प्रेम अभिव्यक्ति पूर्वक गाई गई स्तुति को सुना और उससे पूर्णतः प्रभावित हुई है। तुम गुणी हो और राजकुमारी गुणों की ग्राहिणी है। तुम नूतन छंद विद्या प्रवाह के प्रभावकारी बल को विचारपूर्वक अपने संगीत में भरो; इस राजकुमारी को राग से अत्यधिक प्रेम है।

**आगैं दाई पाछै माली, सांच करी विधना जो ठाली।**
**धार, धौरहर, जाइ जनायौ। वहु पौरी ठाढ़ौ है, आयौ।।**

**अर्थ**–इसके पश्चात् संदेश देकर बुला ले जाने वाली धाय माँ आगे–आगे और पीछे–पीछे सरबंगी, राजकुमारी के पास शीघ्र पहुचने को चल पड़े । परमेश्वर ने जो करना सुनिश्चित कर अभिव्यक्त किया था। उसे (प्रीति को प्रेषित करते हुए ) संयोग से सच में गतिशील कर दिया। धाय माँ ने राजकुमारी के निवास धवल गृह (शिविर) में प्रवेश करके समाचार दिया कि राजकुमारी कौतूहल दे जिसके लिये प्रेम में बावली हो रही है, वह (वशीकरण करने वाला) आ गया है तथा पोल में दरवाजे के अंदर खड़ा है।

**राइ सुता मुख मार्‌यौ सार । अबहि धार ऊहि लेहु हकार ।**
**जाइ जुहार कर्‌यौ सरबंग । मन जल निधि लै चैन तंरग ।।**

**अर्थ**–जब राजपुत्री को समाचार दिया तब उसने संक्षिप्त आदेश दिया कि हे धाय माँ? शीघ्रतापूर्वक उसको यहाँ बुलाकर तो ले आइये ।

सरबंगी को बुलाया गया, तब उसने राजकुमारी के समीप जा कर प्रणाम किया। इस समय उसके हृदय रूपी सागर में चैन की तरंगें हिलोरें ले रही थीं ।

**नैननि सैन करी परबीन । चेरन दई कुंवर कर बीन ।**
**लै कर बीन बजावत लाग्यौ । बैरागहिं गावत अनुराग्यौ ।।**

**अर्थ**–उस व्यवहार प्रवीण सरबंगी ने नेत्रों की चितवन से संकेत दिया। तब एक दासी ने बीन (वाद्य सुशिर) लाकर कुँवर सरबंगी के हाथ में दे दी ।

उस बीन को हाथ में लेकर सरबंगी बजाने लगा । वह अपने विराग के गीत को गाते समय पूर्णरूपेण अनुराग से भर गया ।

**सवईया :**

**हाइ हाइ येति छबि, कतहू तें पाई है ।**
**जोइ अंग देखिये, सुंचटक- मटक भर्‍यौ ।**
**अटकत मन मानू मैन की बनाई हैं ।**
**अति ही सलौंनी , कहा लौंन की निकाइ कहूं ।**
**सांभर औसरि, डैडवानौ झंड लाई है ।**
**कहै कबि जान, मथ काढी है, उदधि मैं ये ।**
**औंन ही तिलोतमा की झाई निरझाई है ।**
**येबु जग मधि अैसे, मानस हूँ उपजत ।।**

**अर्थ**–सरबंगी गीत गाते हुये वर्णन करने लगा । हाय रे हाय! ऐसी रूप शोभा, तुमने कैसे? कहाँ से प्राप्त की है। तुम्हारे जिस अंग पर भी दृष्टि डाली जाये,वही–वही प्रत्येक अंग अत्यन्त स्वस्थ एवं सुंदर गति से संचरित है। तुम्हारी सुन्दर मूर्त्ति मानो कामदेव के अंगो से निर्मित है, इसी कारण से मन आकर्षण में बंध जाता है। इसमें लावण्य का निकाय (संगठन) ऐसा अद्‌भुत है कि जिसका शब्दों में कथन असम्भव हो गया है। परम सौभाग्य की बात है कि सामान्य साँभर नमक से परिचित व्यक्ति के लिये यदि डीडवाना का श्रेष्ठ नमक उड़ेल दिया जाये तो वह व्यक्ति कैसा आंनदित होगा? इसी प्रकार से यह रूप–लावण्य डीडवाना के नमक के सदृश श्रेष्ठ एवं परम आनंददायी है। कवि जान कहते हैं कि तुम्हारा रूप सौन्दर्य ऐसा अद्‌भुत है कि यह अंगयष्टि वाला सुंदर तन या तो समुद्र का मंथन करके निकाला गया सुन्दर रत्न है और तिलोत्तमा अप्सरा के सुन्दर तन के निचोड़ से उत्पन्न रूप वाला (तन) है। यह भी ईश्वर की परम कृपा है कि जगत् के मध्य में मानुषी योनि से भी ऐसी सुन्दरी उत्पन्न हुई है।

सवईया :

पट दूरी भये तें कपटन रहत नैकु,
घूंघट उघारे, रंभ घूंघट करतु हैं ।
इंद सौ दरस, इंदपुरी की निरस होहि,
पदम बदन पदमनी हूँ उरिति हैं ।
रूप कौ सदन तन अैसौ न बरन हेम,
रूप कै तौ रूप कौनं ग्यांन मै धरतु हैं ।
मदन मदन रहै, महा-मन-मोहन तूं,
मैन की ज्यौ जनि मान, मैनके ढरति हैं ।

अर्थ-सरबंगी ने गीत में कहा कि हे सुन्दरी राजकुमारी कौतूहल दे ! अब आपने जब मन के अनुराग को प्रगट कर दिया है, अब चेष्टाओं में कपट तो व्यवहृत ही नहीं हो सकता है। आप साक्षात् रूपवती रंभा हैं, आप अपने प्रेम को उजागर करने के पश्चात् भी व्यर्थ में ही लाज संकोच (घूंघट) कर रही हैं। आपके सुन्दर मुख की छवि का दर्शन साक्षात् चन्द्रमा का आनंददायी दर्शन है। इससे इन्द्रपुरी में निरसता उत्पन्न हो गई है। आपके परम सुन्दर मुख की शोभा से पद्मिनी भी (हीनता का अनुभव करके) डरती हैं। आपका तन, रूप का आगार बना हुआ हैं । आपके तन का वर्ण स्वर्ण के समान उज्ज्वल हैं, इसके समकक्ष चाँदी के चन्द्रिका (रजत) वर्ण को कोई ज्ञान में लाना (मूल्यवान् समझना) भला क्यों चाहेगा । तेरे सुन्दर रूप से, अपने को (सौन्दर्य की तौल में) हीन मानकर कामदेव का अभिमान भी विनष्ट हो जाता है। आप तो मन को सर्वोत्कृष्ट रूप से विमुग्ध कर देने वाली हैं । आपको कामदेव से उत्पन्न मानकर अपने को रूप सौन्दर्य की तुलना में आपसे हीन (निम्न) मानकर मेनका अप्सरा भी डरती है।

चौपाई-53 :

राइ सुता कौं बाढी चांहि । चाहते है काढ़ौ उर आहि ।
राखि रहीपैं ज्यो न रहाइ । मुषतें दीनौ सार उडाइ ।।

अर्थ-राजकुमारी पर सरबंगी का वशीकरण सफल हो गया । उसके हृदय में सरबंगी को प्राप्त करने की अभिलाषा बढ गई । उसने बहुत विचार किया कि किसी प्रकार से मन को रोक कर

प्रेम को हृदय से निकाल कर बाहर कर दूँ। हृदय को प्रेम जाल से मुक्त करने की उसने बहुत चेष्टायें की, किन्तु हृदय पर उसका वश नहीं रहा । अब विवश होकर राजकुमारी ने प्रेम की अभिव्यक्ति करने में संकोच की रीति को भी त्याग दिया ।

**पैठ्यौ नेह होइकै बाइ। कैसे कर अंच ठहराइ।**

**उपजी चौंप गई सब लाज । गावन लागी लै कर साज ।।**

**अर्थ**–राजकुमारी कौतूहल दे के हृदय में, सरबंगी के प्रति प्रेम वायु बनकर प्रवेश कर गया। अब उसकी यौवन सुलभ– प्रेमाग्नि भला कैसे रूक सकती थी, वह तो तीव्र रूप में प्रज्वलित होने लगी । उसके हृदय में ऐसी उमंग जागृत हो गई कि उसने लज़्जा–संकोच को त्याग दिया। वह अपनी प्रेमाभिव्यक्ति को, साज लेकर गायन करके मुखरित (ध्वनित) करने लगा ।

**भुजंगी छंद :**

**सुन्यौ ग्यांन तेरौ, सही स्रब अंगी,**

**अबहिं ग्यांन मेरौ सुनहु तुम उमंगी ।**

**न जांनहिं पलुल मोहि, सागर तरंगी ।**

**सकै नाहिं करि·मोहि असतुति भुंजगी ।।**

**अर्थ**–राजकुमारी कौतुहल दे ने, सरबंगी के प्रति अपने हृदय के उद्‌गारों का गायन किया। वह कहने लगी कि मैंने तेरा ज्ञान संगीत के माध्यम से सुना व समझा, तेरा गायन सम्पूर्ण अंगों के विचार से परिपूर्ण हैं। हे उमंगयुक्त प्रिय गायक! अब तुम मेरा संगीत ज्ञान सुनो, उसका रसास्वादन करो। मैं प्रेम के सागर को संगीतमय तरंगों में उभार कर प्रस्तुत कर रही हूँ। तुम संभवतः मुझे प्रेम भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से संगीत ज्ञान का छोटा मोटा गढ्ढा (पल्वल) समझते होंगे । परन्तु वस्तुतःऐसा नहीं है। तुम मुझे कम मत समझो। मैं अगाध हूँ। अतः अब तुमने जो मेरी प्रंशसा अपने संगीत में की है, वह भुंजगी की स्तुति नहीं है, अपितु मैं स्तुति के लिये, सर्वथा पात्रता रखती हूँ।

**चौपई–54 :**

**सुनित कुंवर की सुधि बुधि गौंनी। येक पीति तैं बाढ़ी चौंनी।**

**बहुरि लगी गांवन यहु भाव। तातै अति बढ्यौ चित चाव।।**

**अर्थ**–राजकुमारी का प्रेमाभिव्यक्तिपूर्ण चित्ताकर्षक गीत सुनकर राजकुमार सरबंगी मुग्ध हो गया। वह सब कुछ भूल गया। एकमात्र प्रेम का भाव ही चौगुना बढ कर फैल गया। पुनः राजकुमारी यही 'प्रेम' का गीत गाने लगी, जिससे कि सरबंगी के हृदय में अनुराग की उमंग अत्यधिक बढ़ गई।

**भुजंगी छंद :**

**कहत नैन सौं मन बुरी गति तिहारी।**
**चटक रूप देखैं लगावत जुहारी।।**
**पर्‌यौ मन बिचारौ अबहिं नैन जारी।**
**हराये सबै ग्यांन सुधि–बुधि हमारी।।**

**अर्थ**–वह कह रही थी कि नयनों तक ही तुम्हारे प्रेम की गति हो, ऐसी बात नहीं है, अपितु तुम्हारी प्रीति का प्रभाव तन्मयता के साथ मन में भी अगाध व समाधि रूप में अवस्थित है। तुम्हारा प्रभावकारी दमकता आकर्षक रूप, देखने से मन के भावों को ताल और लय के साथ संगति देने लगता है। नयनों के माध्यम से मन ने प्रेम का विरह–संताप प्राप्त किया है जिससे हृदय विरह–ज्वाला से जल उठा है। इसने हमारे समस्त ज्ञान का हरण कर लिया है। हमारी विवेक बुद्धि भी हरण कर ली है। मैं विमुग्ध हूँ।

**चौपई–55 :**

**कौतिग चित कौं लागी कहन। काहे दहत नेह की दहन।**
**मौ उपज्यौ जैसौ दुख नयौ। काहू को जगमांहि न भयौ।।**

**अर्थ**–कौतूहल दे अपने चित्त की अवस्थाओं का विचार करती हुई मन को समझती हुई कहने लगी कि सरबंगी के प्रति स्नेह करने के कारण उसके विरह से सन्ताप, इतना अधिक कष्ट क्यों पहुंचा रहा है? स्नेह का ऐसा परिणाम मैं अनुभव कर रही हूँ। मेरे चित्त में जिस प्रकार का नया दुख, प्रिय–वियोग का उत्पन्न हुआ है, संभवतः ऐसा दुःख इस जगत् में किसी अन्य प्राणी को नहीं प्राप्त हुआ होगा।

**राजे, राव भौमपति रांने। मागि रहै, पैं नाहिन मानें।**
**अ़बहिं परी माली कै जाल। ये ते पर, सिर नाहिन बाल।।**

**अर्थ**—मुझसे विवाह करने के लिए, अनेक राजाओं, रावों, भूपतियों ने मेरा हाथ मेरे पिता से माँगा, किन्तु मेरे इस चित्त ने उनमें से किसी से भी विवाह सम्बन्ध करना स्वीकार नहीं किया। अब तो चित्त की अभिरुचि के कारण माली नायक के प्रेम–वशीकरण के बन्धनों में जकड़ली गई हूँ; इस माली के रूप में सबसे बड़ी कमी यह है कि इसके सिर पर बाल नहीं है।

**जाति पांति कौ भेद न जान्यौ। यहु बावर मन बासौं बान्यौं।**
**कहा कहेंगी सखी सहेली। जे निस–दिन मेरे संग खेली॥**

**अर्थ**—मैंने 'प्रेम–बन्धन' में बंधने में यह भी विचार नहीं किया कि यह गायक माली है और मैं क्षत्रिय वर्ण की राजकुमारी हूँ। मेरा यह चित्त ही इसमें अनुरक्त हो गया है और मेरे मन ने उसको साथी बना लिया है। सखी–सहेली क्या? क्या? कहा करेंगी; वे प्रिय को मुझ से निम्न श्रेणी का एवं हेय कोटि का बताया करेंगी। ये सखी–सहेली रात–दिन मेरे साथ खेली हैं अतएव ये सभी जीवन भर मुझसे इस संबंध में दोष बताया करेंगी।

**नीचै सीस हौइगो तात। मुख न दिखाइ सकेगी मात।**
**अपनौ तौ कछु नाही तंक। परिहै कुलनि कलंक, कलंक॥**

**अर्थ**—सभा–दरबार में, मेरे इस दूषित सम्बन्ध के कारण, मेरे पिता की प्रतिष्ठा गिर जायेगी। सभी लोग, मेरे ऐसे कार्य के लिए माता को दोष देंगे कि राजकुमारी ने माता से सही शिक्षा न मिलने के कारण दोष–युक्त व्यवहार ग्रहण किया है। मुझे व्यक्तिगत रूप से तो कोई कष्ट नहीं होगा, अपितु संयोग–सुख मिलेगा ही; किन्तु मेरे द्वारा किये गये इस विवाह–सम्बन्ध से मेरे प्रसिद्ध निष्कलङ्क कुल को कलङ्क लग जायेगा।

**जैतक कौतिग मन समझावै। ना समझै बुह पेमु डरावै।**
**समुझि बूझि की ना यह बात। सो जानै उपजै जिंह गात॥**

**अर्थ**—इन उपर्युक्त प्रकार के सोच–विचार के साथ कौतूहल दे ने अपने मन को बहुत प्रकार से ऊँच–नीच (व्यवहार की) समझाने की चेष्टायें की; किन्तु मन, समझानेसे भी नहीं माना, यह मन तो प्रेम के कारण पूरी तरह से समर्पित हो गया है। प्रेम ने इसे पराजित कर दिया है। 'प्रेम' में समझ–बूझ से ही सारे व्यवहार नहीं होते हैं। इसकी रीति को वही समझ सकता है, जिसने प्रेम किया हो।

**दोहा–68 :**

**सैनन देत बताइ मन, घेरत नेह अदूस।**
**नीकैं जानैं जान कहि, नैंन जुगल जासूस।।**

**अर्थ**–स्नेह बिना कोई चूक (गलती) किये, पूरे प्रयास करके मन को घेरे हुए हैं; मन की ऐसी स्थिति को नयन विशेष संकेतों से अभिव्यक्त कर देते हैं। जान कवि कहते हैं; दोनों नयन ऐसे गुप्तचर होते हैं जो मन के सोच को भली–भाँति जानते हैं और प्रकट भी करते हैं।

**दोहा–69 :**

**चैंन बिसाहत नेह कौं, मन दुष लहत अपार।**
**जान कहत आवत चरन, जैसे सिर कौ भार।।**

**अर्थ**–नयन, अपने विषय व्यवसाय के माध्यम से, स्नेह का आकर्षण ग्रहण करते हैं। किन्तु मन इस स्नेह के कारण विरह–सन्ताप से अद्‌भुत अपरिमित दुःख को प्राप्त करता है। जान कवि कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति, यद्यपि भार को सिर पर रख लें, तब भी उस भार को पैरों के द्वारा ही सहा जाता है इसी भाँति नयनों के माध्यम से प्राप्त, स्नेह वियोग के परिणाम स्वरूप प्राप्त सन्ताप को, मन को ही सहना पड़ता है।

**चौपई–56 :**

**देत देत सिषमन कौ हारी। दाई अपने निकटि हंकारी।**
**याकौ कहौ जु बैठे पलिका। ठाढ़े रहैं परैं, जिन फलिका।।**

**अर्थ**–राजकुमारी कौतूहल दे ने यद्यपि बुद्धि से 'हेय' और उपादेय–व्यवहारों पर विचार करके (ज्ञान से) उचित व्यवहार को ग्रहण करने की शिक्षा को देकर, समझाने की भरपूर चेष्टायें कीं किन्तु मन के स्नेह के प्रति दृढ, ठान लेने से वह पराजित हो गई। तब, उसने धाय माँ को अपने निकट बुलाया। उसने निकट आई हुई धाय माँ से कहा कि इस (सरबंगी माली गायक) से कहो कि यह पलंग पर बैठ जाये, खड़े रहने के कारण, कहीं ऐसा न हो कि इनको पैरों में (फलक) छाले पड़ जायें?

**दाई कह्यौ सोच जिय मांहि। नेह रोग कौ औषद नाहिं।**
**कर गहि लै परजंक बिठायौ। कौतूहल दे साज बजायौ।।**

**अर्थ**–दाई ने अपने हृदय में ऊँच–नीच का विचार करके यही निष्कर्ष निकाला कि स्नेह रोग की कोई चिकित्सा संभव नहीं है। अतः प्रिय का प्रिय से मिलना उचित ही है। उपर्युक्त प्रकार विचार करके, धाय माँ ने आत्मीयता और आदरपूर्वक, सरबंगी गायक का हाथ पकड़ कर मनुहारपूर्वक उसे पलंग पर बैठा दिया। इसके पश्चात् राजकुमार कौतूहल दे ने साज बजाया।

**बहुरि लगी गावंन, मन भावन। कुंवर नैंन उमंगे ज्यौं सावन।**
**बहुर साज कर लै सरबंगी। मोही अंगना कान्ति अनंगी।।**

**अर्थ**–साज बजाने के पश्चात् मन की अभिलाषा के अनुरूप वह भाव भरा गायन करने लगी। उसके संगीत को सुनकर कुंवर सरबंगी के नयनों में से अश्रु ऐसे बरसने लगे जैसे कि सावन के महीने में वर्षा हो रही हो। इसके पश्चात् कामदेव के सदृश सुन्दर शरीर की कान्ति वाले सरबंगी ने साज हाथ में लेकर ऐसा मनोहर संगीत प्रस्तुत किया कि जिससे वह सुन्दरी राजकुमारी उस पर मुग्ध (मोहित) हो गई।

**चौपई :**

**जेते साज कुंवर कर दीने। सकल बजाइ सकल बस कीनें।**
**द्यौंस घरी सुष माहिं बिहानीं। सांझ भई ससि किनि लषानी।।**

**अर्थ**–राजकुमारीजी ने उस समय, वहाँ जितने भी प्रकार के साज, सरबंगी के हाथ में दिये, उसने उन सभी साजों को भली–भाँति कुशलतापूर्वक बजा कर सभी चराचरों को वश में कर लिया। संपूर्ण दिवस भर की पूरी–पूरी घड़ियां सुख में व्यतीत हो गई। इसके पश्चात् सायम् (सांझ) हुई और कुछ समय पश्चात् चन्द्रमा की किरणें दिखाई दी।

**चौपई :**

**नैंननि–सैननि मैं डर पाइ। सरबंग दाई दयौ उठाइ।**
**कुँवर जाइ सरसी पर बैठ्यौ। पैम पुंज हिरदै मै पेठ्यौ।।**

**अर्थ**–इस समय धाय माँ ने अपने कर्त्तव्य की पालना करते हुए राजकुमारी को नयनों के संकेतों से डरा दिया। इस धाय माँ ने सरबंगी को भी पलंग से उठा दिया। राजकुमारी के शिविर से बाहर जाकर कुंवर सरबंगी सरोवर के तट पर जाकर बैठ गया। उसके हृदय में प्रेम की प्रभूत राँशि प्रवेश कर गई।

**चौपई अर्द्धाली :**

**गावन लाग्यौ लयौ तिंबूरौ। पैम नीर भीज्यौ सुर पूरौ।**

**अर्थ**–कुँवर सरबंगी, तंबूरा (तानपूरा) साज लेकर गाने लगा। उसका संपूर्ण स्वर प्रेम के रस से भीगा हुआ था।

**दोहा–70 :**

**तोहू मैं छबि न रही, मौहू कौं दुष दीन।**
**पापी सूरज बावरे, कत पछिम धंस लीन॥**

**अर्थ**–सरबंगी गाकर कह रहा था कि हे वियोग दुःख देने वाले एवम् धर्म विरुद्ध कार्य करने वाले अज्ञानी सूर्य! तुम पश्चिम दिशा में जाकर (सांझ का समय उपस्थित करके) क्यों छिप गये! तुम्हारी तेज युक्त शोभा भी समाप्त हो गई और मुझे भी तुमने प्रिया से विमुक्त करके दुःख दिया।

**चौपई :**

**निकस्यौ चंद महा उजियारौ। पै कौतिग कौं भयौं अनयारौ।**
**सगरी रैन, नैन न लगानैं। रीझे भीजै पलन सुकाने॥**

**अर्थ**–चन्द्रमा महान् उजाला करता हुआ उदित हुआ किन्तु उपवन के शिविर में स्थित और अपने प्रियतम से विमुक्त हुई राजकुमारी के लिये वह चन्द्रमा वियोग के दुख और निराशा के अंधकार को देने वाला (कारक) बन गया। प्रियतम से वियोग के दुःख के कारण, संपूर्ण रात्रि राजकुमारी को नींद नहीं आई। उसकी आँखें खुली ही रहीं। प्रिय पर रीझी हुई राजकुमारी के नेत्र निरंतर आंसुओं से भीगते रहे, वे एक पल को भी शुष्क नहीं हो सके।

**जुगत नाह नीदरिया नांहि। कैसे कै द्रिग येक समाहिं।**
**सुष भाज्यौ बाद्यौ बैराग। गयौ, बिरहु राग निस जाग॥**

**अर्थ**–कोई भी कैसी युक्ति सफल हो ही नहीं सकती थी, जो नेत्रों में नींद भर सके। अतः उसे निद्रा नहीं आई। उसके नेत्रों में, एक लम्बी–चौड़ी आकृति वाला प्रियतम समा गया था। अतः उसे नींद आना सम्भव ही नहीं था।

सवईया–9 :

भयौ है अडोल ससि छाडतन प्राची दिस,
कछु रिस मनहु प्रतीची धरी है।
मिग्र भयौ पंगुरौ थक्यौ है रथ तातें कीधौं,
और उडिगन धू अचल होड करी है।
जान कहै तमचर चिरी जम चंद गयौ,
पंथ चूक्यौ पंथ उग येक्कै हूं न भरी है।
सूरज बुरज कांहू से काहू रुसवा क्यौं हौ, सु घट्यौ नाहिं।
सोधन गई ठई ही भोर, वहो भूलि परी है।।

**अर्थ**–वह विरह राग गाकर कहने लगी कि विरह का दुःख भी स्थिर हो गया है। वियोग कराने वाली रात्रि भी अचल हो रही हैः– शशि गतिहीन हो गया है। यह पूर्व की दिशा को छोड़कर आगे नहीं जा रहा है। ऐसा लगता है कि मानों शशि ने पश्चिम की दिशा से कुछ रोष हृदय में धारण कर लिया है। शशि में स्थित मृग भी पंगु होकर बैठा है और गतिहीन हो गया है। इसीलिये चन्द्रमा का रथ सम्भवतः थक कर ठहर गया है और तारागणों ने सम्भवतः ध्रुव तारे से स्पर्धा कर ली है। इसीलिये वे अपनी दिशा स्थिति से गति नहीं करना चाहते हैं और वहीं के वहीं स्थिर होकर अवस्थित हैं। जान कवि कहते हैं कि गायन में राक्षसों के क्रियाशील होने की घड़ी बनी हुई है, वियोग की पीड़ा से प्राण निकलने की संभावना हो गई है, रात्रि में यमराज प्राणहरण करने हेतु इस सुगम, वियोग के कष्ट देने वाले निशा के अंधकार के पथ पर आरूढ़ हो चुके हैं। ऐसा लगता है कि वह पंथ में भटक कर थक गया है। अतः उसने एक डग भी नहीं भरा है, इसी कारण से मेरे प्राण बचे हैं। सूर्य तो ऊँचे बुर्ज पर अपने उच्च स्थान से हट कर चला ही नहीं है। सूर्य तो किसी के द्वारा कहीं पकड़ कर रख लिया गया है, छूटा ही नहीं है। भोर (सुबह) उसे (सूर्य को) ढूंढ़ने गई और कहीं पंथ भूल गई है, अतः ठहरी हुई है। इसी कारण आई ही नहीं है। इसीलिये यह वियोग का दुःख देने वाली रात्रि ठहरी हुई है।

चौपई–58 :

भोंर भयें धन घर कौ गौनी। कुंवर प्रीति तैं उपजी चौंनी।
चली जाति पै, मन–बुधि थोरी। घर उपबन, सुधि नाहिन बौरी।।

**अर्थ**–जब सुबह हुई, तब राजकुमारी, उपवन से राजभवन को गई। कुंवर की प्रीति ने उसके तन–मन में प्रसन्नता और उमंग भर दी थी। वह चली जा रही थी, किन्तु इस समय उसके मन में अल्प–बुद्धि वाला एक मात्र, राजकुँवर की प्रीति का भाव ही भरा था। वे बावली नहीं हुई थीं, उनके हृदय में, राजभवन में आ जाने पर भी आसक्ति भरी उपवन के शिविर की सुखदायिनी प्रीति की स्मृति अवस्थित थी।

**मन मधुकर तन संग न लगानौ। उपबन पुहपनि रह्यौ लुभानौ।**
**बैठ्यौ अंग आइ धौराहर। मन, उपबन ते भयौ न बाहर।।**

**अर्थ**–राजकुमारी का मधुकर रूपी, आसक्त मन, अब इस समय तन के साथ संसक्त नहीं था वह तो उपवन में प्रियतम द्वारा प्रेमोपहार–स्वरूप भेंट किये गये हारके गुणों की शोभा की स्मृतियों में मुग्ध और संसक्त था। राजकुमारी का शरीर तो धवलगृह मे़ आकर अवस्थित हो गया था किन्तु उसका मन उपवन की स्मृतियों में ही विचरण करता रहा। वह तन के साथ धवलगृह की सामान्य क्रियाओं की ओर आकृष्ट नहीं हो रहा था।

**कंवल छंद :**

**रह्यौ मन बाग मैं। बिरहु बैराग मैं।**
**जर्‌यौ दुष दाग मैं। नाहिं अनुराग मैं।।**

**अर्थ**–राजकुमारी का मन बाग में रह गया। विरह–वैराग में संलिप्त था। उसका मन प्रियतम के विरह से प्राप्त दुःख की ज्वाला से झुलस जाने के कारण दाग जलने के चिह्न से युक्त हो गया था और यह सब न कहकर उसकी दशा का वास्तविक वर्णन उपयुक्त शब्दों में करें तो कहेंगे कि उसका मन अनुराग की स्थिति में था।

**चौपई–59 :**

**ये ते मैं आई इकि चेरी। सुनि कौतूहल बतियां मेरी।**
**पछिम राजा के परधान। ऐसी भनक परी मो कान।।**

**अर्थ**–इस समय एक दासी उसके समीप आई और कहने लगी कि हे राजकुमारी कौतूहल दे! मैं जो बात कह रही हूँ उसे अवधान के साथ सुनो। पश्चिम दिशा के राजा के प्रधानमंत्री यहां राजा के पास आये हैं; ऐसी चर्चा मैंने अपने कानों से सुनी है।

**तोहि साक करिबै कौं आयै। अगवानी सनमुख चढ़ि धाये।**

**सुनि कौतूहल चिंता बाढ़ी। बात साक की जौ मुख काढ़ी॥**

**अर्थ**–तेरे विवाह का संबंध का प्रस्ताव लेकर आये हैं, किन्तु आगमन का तरीका शिष्टतापूर्ण नहीं कहा जा सकता। उनकी अगवानी करने के लिए हमारे नगर द्वार के रक्षक कुछ स्वागत-शिष्टाचारपूर्वक कर पाते, उससे पूर्व ही उन सबकी उपेक्षा करके वे लोग सैन्य शक्ति के बल पर आगे चल कर यहाँ राजभवन तक आ पहुँचे हैं। चेरी की बात सुन कर कौतूहल दे को अत्यधिक चिन्ता हो गई। उसने कहा कि यदि किसी ने भी मेरे विवाह सम्बन्ध की कैसी भी बात मुख से कही तो (ठीक नहीं होगा)।

**चौपई अर्द्धाली :**

**जीभ खांड आपन मौं मारूं। बा बिन पुरष न और निहारूं।**

**अर्थ**–राजकुमारी ने अपना संकल्प प्रकट करते हुए कहा कि मैं उस संगीतविद् माली के अतिरिक्त दूसरे किसी भी पुरुष के साथ विवाह नहीं करूँगी। यदि किसी ने मेरा विवाह सम्बन्ध किसी भी प्रकार से, माली को छोड़कर और दूसरे पुरुष के साथ करने की कुचेष्टा की तो मैं अपने 'जीव' को खण्डित करके मर जाऊँगी।

**छंद :**

**जाकैं रंग रातै नैना। अंतर पट तासौ सैना।**

**ता द्रिग ढ़ापें हूं डिठि आवै। कौऊ और न देष्यौ भावै॥**

**अर्थ**–राजकुमारी कहती है कि मेरा हृदय प्रियतम के प्रेम में रंग गया है। मेरे नयनों में उसी की प्रीति का रंग प्राप्त है; अन्तर पट पर प्रियतम के प्रेम के भावों के संदेश-संकेतों का रसास्वादनमय चित्र अङ्कित हो रहा है। चर्मचक्षु पलकों को बन्द कर लूँ तब भी मन की आँखों के प्रियतम का दर्शन-अनुभूति गम्य है। प्रियतम को छोड़कर अन्य किसी की भी छबि मुझे रुचिकर नहीं लगती है।

**चौपई-60 :**

**मिली परधान महा अनुरागे। आइ राइ कैं पाइन लागै।**

**पछिम के राजा की पाती। बांची राइ रंग हित राती॥**

**अर्थ**–राजा (पिता) से मिलकर पश्चिम के राजा के संदेश वाहक प्रधान ने महान् अनुराग प्रकट किया। उन्होंने समीप पहुँच कर राजा के चरणों को छूकर विनम्रता से प्रमाण किया। प्रधान ने राजा को पश्चिम के राजा की चिट्ठी दी। राजा ने वह चिट्ठी पढ़ी। उसमें, राजा के लिए हितकारी स्नेहभरी बातें लिखी हुई थीं।

**हम तुम्ह आइ साक नित नित कौ। हित मै हित बाढैगौ चितकौ।**
**मेरै पूत है महा प्रवीन। हौं वाकें लछिन कौं दीन॥**

**अर्थ**–हमारा और आपका निरन्तर साथ रहा है, हमारे आपके बीच सम्बन्ध और भी प्रगाढ़ हो जाये तो हम दोनों की ही भलाई है। इससे हम दोनों के हृदयों में प्रसन्नता अवस्थित हो जायेगी। ''मेरा एक महा प्रवीण पुत्र है। उसके अन्दर अनंत सद्‌गुण भरे हुए हैं। जिनका कि मैं, अति प्रशंसक हूँ।''

**दूनौं पष निरमल उजियारौ। बुधि–सागर–आगर गुन भारौ।**
**सुनी तिहारैं सुता सुलछिन। मोहि देहे राषौगे चछिन॥**

**अर्थ**–आपका 'कन्या पक्ष' और मेरा 'वर पक्ष' दोनों ही निर्देश एवं प्रशंसित कुल वाले पक्ष हैं। दोनों ही अनन्त बुद्धिवाले और सद्‌गुणों की अत्यधिक बड़ी राशि अर्जित (धारण) करने में अग्रगण्य हैं। मैंने सुना है कि आपकी भी एक विवाह योग्य पुत्री है जो कि श्रेष्ठ लक्षण संपन्न है। उसे मेरे पुत्र के लिये कन्या दान देकर अपनी विलक्षणता (बुद्धिमत्ता) का परिचय देंगे।

**धोरा सहंस सीलवंत तातै। पासै कुंजर अति मदमाते।**
**चेरी चेरा बहुत पठाये। नग मुकता नहिं जात गनाये॥**

**अर्थ**–प्रधान ने अवगत कराया कि पश्चिम के राजा ने विवाह प्रस्ताव के साथ भेंट भी भेजी है। उन्होंने भेंट स्वरूप एक हजार श्रेष्ठ, प्रशिक्षित एवं सदैव प्राण–प्रण से अनुशासन का पालन करने वाले तथा तीव्र वेग सम्पन्न घोड़े, उत्तम कोटि के निरंतर अत्यंत मदजल बरसाने वाले पांच सौ हाथी भेजे हैं। बहुत बड़ी संख्या में दास और दासियां भेजे हैं। श्रेष्ठ बहुमूल्य रत्न मुक्ता आदि असंख्य एवं अगणित राशि के रूप में भेजे हैं।

**त्रिभंगी छंद :**

**बहु कुंजर माते धोरा ताते। धौरै राते औ बहुरंगी।**
**कोऊ हरियारे कोऊ कारे। कोऊ छवीर छनि चंगी॥**

**वै बांधे सोहै चढ़ै, विमौहे, चपलानि मेहि गुनसंगी।**

**ते महा उमंगी रूप अनंगी, ताजे तरंगी है तिरभंगी।।**

**अर्थ**–पश्चिम के राजा ने विवाह के प्रस्ताव के साथ जो हाथी और घोड़े उपहार स्वरूप भेजे थे, वे उत्तम प्रकार और विशिष्ट कोटि के थे। बहुत से मदजल का वर्षण करने वाले, श्रेष्ठ जाति के हाथी भेजे थे। सदैव वेग धारण करने वाले एक हजार घोड़े भेजे थे। इन घोड़ों में कुछ घोड़े धवल (श्वेत) रंग के थे, कुछ घोड़े लाल वर्ण के थे, कुछ बहुत से रंगों के मिश्रण युक्त वर्ण शरीर वाले थे। कुछ घोड़े हरे–नीले वर्ण के थे, कुछ घोड़े श्याम वर्ण के थे और कुछ घोड़े धुएं (धूम) के रंग के थे, जो कि श्रेष्ठ शोभा धारण कर रहे थे। वे घोड़े बंधे हुए, शोभाजनक थे। घोड़े उन पर चढ़ने (सवारी) से विमुग्ध करने वाले थे। अपनी चपलता से मन को अत्यंत प्रसन्न करने वाले थे और वे सर्वश्रेष्ठ गुणों से युक्त थे। वे अत्यधिक उमङ्गों से भरे रहते थे, उनकी रूप–शोभा उनकी आकृति में क्षण क्षण में होने वाले परिवर्तन से निराली थी। वे शरीर के तीन स्थानों ग्रीवा (गर्दन), पैरों के एवं पूँछ के निरंतर वेग की तरंगों के साथ आकार को भङ्ग करते रहने के कारण अभिराम छटा वाले थे।

**चौपई–61 :**

**राजै कै चित चिंता बाढ़ी। मुख ते बात सभा मैं काढ़ी।**

**सुत आहि पै उलटी रीति। पुरस नांव सुनि करै अनीत।।**

**अर्थ**–पश्चिम के राजा के इस प्रकार के प्रस्ताव से राजा के चित्त में अत्यधिक चिन्ता बढ़ गई। उसने अपने सभा–दरबार में उक्त समस्त बातों को अपने मुख से प्रकाशित किया। मेरी तो पुत्री है, पश्चिम के राजा ने उल्टी रीति ग्रहण करके अपने पुत्र के विवाह सम्बन्ध का प्रस्ताव भेजा है और हाथी, घोड़े, रत्न, दास और दासियां भेंट में देने के लिए जो भेजे हैं, यह भी परम्परा से विपरीत व्यवहार है। इधर मेरी पुत्री राजकुमारी कौतूहल दे भी पारम्परिक रीति को मानने वाली सामान्य कन्या नहीं है; वह पुरुष से विवाह–संबंध की बात सुनकर कुछ भी धर्म विरुद्ध दुस्साहस करने को तैयार रहती है।

**बतियां ब्याहु चलावै कोइ। जीभ खांडि मरिबै कौ होइ।**

**वहै बात पाती लिख दीनी। जो परधाननिं आगैं कीनी।।**

**अर्थ**–यदि कोई व्यक्ति, राजकुमारी से विवाह कर लेने की चर्चा करना चाहे तो अपने जीवन

को नष्ट–विनष्ट करने की चेष्टा करने लगती है। राजा ने इन्हीं उपर्युक्त सभी बातों को, पश्चिमी राजा को प्रत्युत्तर स्वरूप तैयार की गई चिट्ठी में लिख दिया। राजा ने ऐसी उपर्युक्त बातों को सभा में प्रधान के समक्ष भी बता दिया था।

**काहू बित कैं हाथ न लायौ। मनोहार करि उलटि पठायौ।**

**चलत चलत राजा पैं आयो। कौतिग के कौतिग सब गायौ ।।**

**अर्थ**–राजा ने पश्चिमी राजा के प्रधान के साथ प्रेषित किये गये किसी भी प्रकार के धन को छुआ भी नहीं अपितु अनुनय–विनय करके समस्त वित्त प्रधान के साथ वापिस लौटा दिया। प्रधान वापिस लौट कर पश्चिमी राजा के पास पहुँच गया; उसने कौतूहल दे राजकुमारी के अद्‌भुत चरित्र के विषय में, जो कुछ उसके पिता ने बताया था वह सब चरित्र विस्तार से कह कर सुना दिया।

**पाती बांचि महा भमकानौं। बिसधरि ज्यौं बल खाइ रिसानौं।**

**मानस येक बेगि दौरायौ। कौतिग तातहि कहि जु पठायौ ।।**

**अर्थ**–राजा ने प्रधान से उपर्युक्त समाचार जान लेने के पश्चात् प्रधान द्वारा उसके हाथ में दी गई, राजकुमारी कौतूहल दे के पिता की चिट्ठी को पढ़ा। उस चिट्ठी को पढ़ कर वह राजा अत्यधिक रुष्ट हो गया। वह चोटिल विषधर के समान क्रोधावेश के वेग में फड़कने लगा। उसने क्रोध में भरकर आक्रमण करने की चेतावनी का संदेश कौतूहल दे के पिता को देने एक मनुष्य को, अत्यन्त तीव्र गति से भेजा।

**तो पर जौ हूं आऊं नांहिं। मोहि तात अंस ना मो मांहि।**

**जब लौं तेरौ सीस न भानू। तब लौं जीवत नाहिन जानू ।।**

**अर्थ**–उसका संदेश था कि यदि मैं तुझ पर आक्रमण न करूँ तो मुझमें मेरे प्रसिद्ध प्रतापी पिता का अंश ही नहीं है; यदि मुझमें मेरे पिता के सच्चे अंश विद्यमान हैं तो मैं तुझ पर आक्रमण अवश्यमेव ही करूँगा। मैं जब तक तुझ पर आक्रमण करके तेरा शीर्ष (सिर) नहीं मरोड़ूंगा तब तक मैं अपने जीवन को सार्थक रूप से प्रतिष्ठित कोटि का राजा जैसा जीवन नहीं मानूँगा।

**पवंगम छंद :**

**सीस काटि दै सिव कौ, लेउं असीस हूं।**

**तबहि जाइ अपनैं मन मांहि जगीस हूं।**

जौं लौं तेरौ गांवन मेरी डिठि परै।

तौ लौं निहचैं जानी जीवन ना जरै।।

**अर्थ**—उस राजा ने कहा, यदि आक्रमण करके मैं यत्नपूर्वक तेरा शीश काट पाऊँ तो उसे, भगवान् शिव को अर्पित करके उन्हें प्रसन्न करके आशीष प्राप्त करने का मेरा संकल्प है। ऐसा मनोरथ सफल हो जाने पर ही मैं समझूँगा कि मैं वास्तव में एक राजा हूं। जब तक आक्रमण किये जाते हुए तेरे गाँव, राजभवन आदि को (त्राहि-त्राहि करते हुये) अपनी दृष्टि से नहीं देख लूँगा तब तक यह निश्चित है कि मैं सची क्रियाशीलता वाले जीवन को धारण नहीं करूंगा।

**चौपई-62 :**

डर उपज्यौ, अति ही छबिनैर। आढ कौन दै उलट्यौ मेर।

निस दिन सोचत है अरि, आर। बाढ़ी चित मैं चिंत अपार।।

**अर्थ**—छबिनेर नगर में पश्चिम दिशा के राजा के द्वारा भेजे गये आक्रमण के चेतावनी भरे संदेश से सर्वत्र भय उत्पन्न हो गया। अब सबको, संभावित, मेरू पहाड़ के सदृश भारी आपदा लाने वाले संकट से बचा लेने वाली 'शक्ति' कौन हो सकती है-ऐसी चिन्ता पीड़ित करने लगी। वहाँ सर्वत्र, रात और दिन सभी के चित्त में यही चिंता व्याप्त रहने लगी कि शत्रु राजा की सेना से बहुत बड़ी पीड़ा सम्भावित है।

हाटन होइ रही हटितार। खुलत आहि थोरे घर द्वार।

कौतूहल सौं कह्यौ हकारी। जाग जाहु तौ सौंह हमारी।।

**अर्थ**—बाजार मे बैठे व्यापारियों में 'हाय यह क्या हुआ?' इस प्रकार कह कर लोग चिन्ता से पीड़ित हो रहे हैं-व्यापारियों को यह भी चिन्ता है कि 'शत्रु सेना' के लोग आक्रमण करके दुकानों के सामान को भी लूट सकते हैं। अब कभी भी लूटपाट हो सकती है। इस आशंका से प्रायः लोग घरों के दरवाजों को बंद ही रखते हैं-अत्यधिक आवश्यकतावश ही कोई-कोई व्यक्ति अपना घर का द्वार यदा-कदा अत्यल्प समय के लिए खोलता है। राजकुमारी कौतूहल दे को बुलाकर राजा (पिता) ने सावधान करते हुए उससे कह दिया है कि तुम्हें हमारी सौगन्ध है कि तुम सुरक्षा में अनिष्ट-निवारण के लिए घर से बाहर कदापि नहीं जाना।

तेरैं लयें भये ये सोर। चिंता मैं बीतैं निस भोर।

इतहिं फिरत वाके जासूस। तोहि गहैं ह्वै दोस अदूस।।

**अर्थ**–राजा ने राजकुमारी कौतूहल दे से स्पष्ट कह दिया कि पश्चिम देश के राजा ने अपने पुत्र के साथ तेरा विवाह करवाने के लिए जो प्रस्ताव भेजा था, उसे ठुकरा देने के कारण ही यह आक्रमण बदले की भावना से है। रात और दिन (भोर एवं सायं) का पूर्व समय इसी भयपूर्ण चिन्ता में व्यतीत होता है। उस शत्रु के गुप्तचर सिपाही छद्मवेश में हमारे नगर में स्थान–स्थान पर इस अवसर की ताक में फिर रहे हैं कि तुझको; बिना कोई चूक किये सफलता से पकड़ कर ले जायें।

**बरष हरष बिनु येहूं बीत्यौ। बिरह जुवारी सुष गध जीत्यौ।**

**अर्थ**–राजकुमारी का पूरा वर्ष 'उत्सव' मनाने के लिए गमन के बिना ही व्यतीत हो गया। विरह रूपी प्रतिपक्षी जुआरी दुर्भाग्य से जीता और सुखी रहकर फला–फूला। भाग्य के जुए में राजकुमारी हार गई।

**दोहा :**

**ताप चपक रद्रूप के, बान कलाप चलाइ।**
**पाप संताप अलाप दुष विरह बिलाप बिहाइ।।**

**अर्थ**–राजकुमारी का वह वर्ष प्रेम करने के पाप को स्वीकार करके सन्ताप के दुःख को आलापों से अभिव्यक्त करने के साथ विरह से पीड़ित होकर रुदन करते हुए व्यतीत हुआ। वियोग ने रूद्र रूप धारण करके अपने प्रेम के विरह जन्य–स्मरण रूपी चाप पर, एक के बाद एक दुःख रूपी बाण समूहों को चलाकर उस राजकुमारी के हृदय को अपार कष्ट दिया था।

**छन्द नाराइ :**

**लग्यौ असाढ़ आइ धाइ गाढ सौंधिना गज्यौ।**
**सुनंत मोर सोर ठौर ठौर अंग सुख भज्यौ।**
**भयौ बियोग रोग चिंत है अनंत मिंत बिना।**
**परै न नींद भावती दुखी रहें निसा दिना।।**

**अर्थ**–जब आषाढ का महीना प्रारम्भ हुआ तब मेघ समूह वेगपूर्वक दौड़ते हुए आ गये और प्रगाढ़ गर्जन करने लगे। स्थान–स्थान पर मयूरों के शोर को सुनकर राजकुमारी के अंग–अंग का सुख पलायन कर गया। प्रियतम समीप में नहीं होने के कारण अनन्त दुःख व चिन्तन देने

वाला वियोग का रोग व्याप्त हो गया। सुन्दरी को, रात और दिन में नींद नहीं आती थी। वह निरन्तर दुःखी होती रही थी।

**भुजंग छंद :**

**कठिन गाज घन की कुंवर ना सुहावै,**
**सुने केक केका दुगम अति बिहावै।**
**ररत नाउ कौतिग इही पंथ धावै,**
**बिरह नेह की पीर तन कौं पिरावै।**

**अर्थ**—कुँवर को मेघों के कठोर गर्जन की ध्वनि रुचिकर नहीं लगती है। वियोग की अवस्था में मयूरों एवं मयूरियों के केरव को सुनने से उसके हृदय में विरह का दुःख इतना तीव्र हो जाता था कि उसका जीवन अति कठिनाई के साथ व्यतीत हुआ था। प्रेम के पंथ पर निष्ठापूर्वक चलने वाला वह राजकुमार एकनिष्ठ होकर कौतूहल दे के नाम का ही निरन्तर नाम रटते हुए अनवरत स्मरण करता रहा था। विरह की अवस्था में प्रेम द्वारा प्रदत्त पीड़ा, उसके सम्पूर्ण तन को, परिव्याप्त करके अवस्थित थी।

**गैणद छंद–1 :**

**लग्यौ सावन झूलि हैं, घर घर हिंडोरा तान।**
**मोहि दूभर जाइ ना, सुख बिना पोषन प्रान।**
**हरे कारे अषुन पियरे, जलद बिरहु निधांन।**
**मोर अंबुप कोकिला दैं, तनहिं पावक आनि।।**

**अर्थ**—विरह से व्याकुल राजकुमारी कहती थी कि सावन का मास है, इस समय घर–घर में 'हिंडोला' गायन की तानों के साथ सौभाग्यवती कामिनियाँ संयोग सुख के राग गाती हुई झूले झूलेंगी। प्रियतम से वियोग होने के कारण मेरे लिए तो जीवन धारण करने में ही अत्यन्त कठिनाई उत्पन्न हो गई है। प्रिय के संयोग सुख के अभाव में प्राणों का पोषण ही अति कठिन हो गया है।

**चंदाणा छंद :**

**धूमरे धूमरे धौंधये धामरे।**
**असित औ सेत पीरे हरे सांवरे।**

बिना कौतूहली नहि मन कौं पगैं।

सिषि पिक चातिक बैन सरसे लगे ।।

**अर्थ**—सावन के महीने ने राजकुमार सरबंगी को भी वियोग ने पीड़ित किया। सावन के माह में, धुयें के रंग वाले घूम घूम कर चलते हुये विपुल आकार धारण किये हुये और आवारापन की गति वाले मेघ जो कि कहीं तो, श्यामल और श्वेत, कहीं–कहीं पर पीले और हरे और किसी अन्य स्थान पर श्याम वर्ण के थे, वास्तव में अत्यधिक मनोहर लग रहे थे।

मयूरों, कोयलों और चातकों के बोल अत्यन्त सरस लग रहे थे किन्तु प्रियतमा कौतूहल दे के अभाव में, वियोग पीड़ा सन्तप्त हृदय वाले राजकुमार सरबंगी को उपर्युक्त प्रकार के मेघ, मयूर, कोयल एवं चातक रव, सुखी करने वाले अनुभूत नहीं हुये।

**ताणी छंद :**

भयौ भादुवा निस अंधियारी स्याम घटा नारी डरवै।

तैसीये पिक कोकिल बोलैं, तैसी ये कौंधा तरपै ।।

तै सोई महरौ घन घहरै सुनि कौतूहल थहरावै।

सरबंगी बिन नाहि उमंगी अंनग अंग अंगियालावै ।।

**अर्थ**—भादों के माह में प्रियतम से बिछुड़ी हुई, कौतूहल दे ने अनेकों प्रकार से विरह–सन्ताप प्राप्त किया। भादवा के महीने में रात्रियां अंधकार से भरी होती थीं, श्याम मेघ–घटायें आकाश में घिरती थीं–ऐसे वातावरण में प्रियतम से वियुक्त वह नारी भयभीत होती थीं। इतने पर भी विरह–व्यथा को संदीप्त करने वाली कोयलें बोलती थीं, उसी प्रकार मेघों में बिजली कौंध जाया करती थी, जो अत्यधिक भयभीत करती थी। इसके अतिरिक्त कौतूहल दे थर–थर काँपने लगती थी। सरबंगी के वियोग के कारण कौतूहल दे उदास रहती थी, मुख्य अंगों पर विशेष प्रभाव डालने वाला कामदेव, ऐसे वातावरण में उसके अंग–अंग में व्याप्त होकर अत्यधिक पीड़ादायी हुआ था।

**बिजोहा छंद :**

घनाघन बरसि है। कुंवर ज्यौ तरस है।

जबहि मुष परसि है। तबहिं जा सरसि है ।।

**अर्थ**–भादवा मास में कौतूहल दे के वियोग से पीड़ित सरबंगी की दशा ऐसी थी जिसका वर्णन इस प्रकार है कि भादवा के मेघ सघनता से बरसते रहे हैं, कुँवर सरबंगी का हृदय, राजकुमारी कौतूहल दे से मिलने के लिये तरस रहा है। जब, सरबंगी कौतूहल दे के मुख का अपनी आँखों से दर्शन–स्पर्श करेगा, तभी उसका हृदय प्रसन्न होकर विकसित हो सकेगा।

**पवंगम छंद :**

**लाग्यौ महा कुवार घटी बरषा कहैं,**
**कौतूहल चषि बरिषत तौऊ ना रहैं।**
**रैन दिन मन–मोहन कौ मारग तकैं,**
**फूलन लागें कांस कुंज सारस बकैं।।**

**अर्थ**–क्वार के माह में, राजकुमारी कौतूहल दे ने विरह–पीड़ा किस प्रकार सही उसके विषय में वर्णन है कि माह–क्वार में वर्षा कम हो गई थी, उस समय में भी राजकुमारी कौतूहल दे की आँखों से आँसूओं की वर्षा हो रही थी; उसके नेत्रों की अश्रु–वर्षा, फिर भी रूकी नहीं थी। वह रात–दिन अपने प्रियतम के आने के मार्ग को निहारती रहती थी और व्याकुलता से प्रतीक्षारत रही। वर्षा कम होने पर यत्र–तत्र काँस (सरकण्डा) समूह उत्पन्न हो गये और सारस बोलने लगे थे।

**रासा छंद :**

**सुकित चातिग रंभा–चिन्ता दूर भई।**
**स्वात बूंदि कैं पायें, उपजी चौंप नई।**
**कुंवर कहै परसावहु मोकौं प्रान घई।**
**मेरैं तो कौतूहल ही है स्वात दई।।**

**अर्थ**–ऐसे समय में सुकृती चातकों और कदली वृक्षों की चिन्ता दूर हो गई थी क्योंकि इन्हें स्वाँति की बूँद उपलब्ध हो गई थी। अतः चातक को प्राण मिले और कदली को कपूर की प्राप्ति हो गई। विरही कुँवर के लिए तो उसकी जीवन–सर्वस्व स्वाँति की बूँद–कौतूहल प्रिया थी, जो उसे मिल नहीं सकी थी। कुँवर सरबंगी तो यही कहता था कि मेरे प्राण क्षय (नष्ट) हुये जा रहे हैं, मेरे लिए तो 'कौतूहल दे' ही स्वाँति की बूँद है, कोई मुझे उसका संयोग–स्पर्श करा दे, तभी मेरा जीवन बच सकेगा।

**रोड़क छंद :-**

**आयौ कातिग मास भई है रैन उज्यारी।**
**भयौ कमोदनि चैन, रही हैं षिलि कैं भारी।**
**चंद सुधा स्रव कहिये पै, बरिषै विषधारी।**
**कौतूहल बिन पीय, जु न्हाई लगी अंध्यारी।।**

**अर्थ**–कार्तिक मास में राजकुमारी कौतूहल ने प्रियतम के वियोग के कारण अपार कष्ट सहा था। कार्तिक महीने में रात्रियाँ, चन्द्रिका से उज्ज्वल थीं। कमोदनि अपने प्रियतम चन्द्रमा के प्रकाश के स्पर्श से अत्यधिक रूप से सुखी होकर विकसित हो गईं। ऐसे समय में, सुखी जनों के लिए तो चन्द्रमा अमृत वर्षण कर रहा था, किन्तु कौतूहल चूँकि प्रियतम के वियोग की अवस्था में दुःखी थी, अतः उक्त चन्द्र–सुधा–वर्षण भी उसे विष वर्षण का मृत्युकारी कष्ट दे रहा था। इस समय मेघों में दिखाई पड़ जाने वाली विद्युत् लेखा की चमक भी वियोग–सन्ताप बढ़ाने वाली होकर अंधकार युक्त लग रही थी। अत्यधिक व्याकुलता से उसकी आँखों के आगे अंधेरा छा जाता था। प्रियतम से मिलन के समय जो वस्तुयें सुख देती हैं; वियोग के समय वे ही वस्तुयें सन्ताप में वृद्धि का कारण बन जाया करती है।

**धवल छंद :**

**दुष पावत है सरबंग जू। अंग अंगहि दहै अनंग जू।**
**मन नाहिन न रही उमंग जू। बिन कौतिग दे कैं संग जू।।**

**अर्थ**–सरबंग ने भी कार्तिक के महीने में, प्रियतमा के वियोग के कारण अत्यधिक कष्ट प्राप्त किया। वर्णन है कि सरबंग ने भी वियोग का कष्ट सहन किया। कामदेव ने उसके अंग–अंग को सन्तप्त करके, उसे पीड़ित किया। 'कौतूहल दे' से मिलन नहीं हो पा रहा था। इस कारण से उसके हृदय में उमंग नहीं रही, वह उदास हो गया था।

**अरिल छंद :**

**आइ लग्यौ है जग में अगहन,**
**तुम जानत या बीगरी अगहन।**
**मोहि गहत प्यारै हौ अगहन,**
**अबहिं जात है सातिर अगहन।।**

**अर्थ**—अगहन के महीन में, प्रियतम सरबंगी के वियोग के दुःख से व्याकुल राजकुमारी के वचन इस प्रकार के थे–''जगत् में अगहन का महीना आरम्भ हो गया है। हे प्रियतम! तुम जानते हो कि तुम्हारे मिलन के अग्रहण के कारण मेरे सुख–चैन का आधार ही नष्ट हो गया है।

हे वियुक्त प्रियतम! तुम मुझे स्मृतियों में जकड़े (बांधे) हुये हो। यह तीव्र कष्ट देने वाला अत्याचारी अगहन मास अभी–अभी तो उत्पन्न हुआ ही है (आगे चलकर कितना कष्ट देता जायेगा?) यह शातिर क्या अभी चला जायेगा? कदापि नहीं! यह तो भाँति–भाँति के कष्ट देगा।

**मरिल छंद :**

**पावक नेह देह कौं दाहै।**
**मानहु लता जराई दहै।**
**बिरह करौंत होइ उर चीरी।**
**आये मींत न पाई धीरी॥**

**अर्थ**—स्नेह की अग्नि, प्रियतम से वियुक्त राजकुमारी को, सन्तप्त करती रहीं, उसकी दशा ऐसी हो गई जैसे कि वह अग्नि की ज्वालाओं से जली हुई लता हो। विरह रूपी दराँती ने उसके हृदय को चीर डाला था। वह विरह–व्यथा से पीड़ा प्राप्त करती रही। उसके प्रियतम के अनागमन के कारण, उसने धैर्य–सान्त्वना प्राप्त नहीं की।

**गंधणा छंद :**

**माह पूस अब लाग्यौ वै सीतर सलिता।**
**करी चिंत हौं पीरी नांहिं रही कलिता।**
**मलिन भये अंग अंग, रही नाहिं उज्जलिता।**
**कौतूहल दे छली नेह छल बल छलिता॥**

**अर्थ**—पौष के महीने में, अब सरिता का जल शीतल हो गया है। विरहिणी कौतूहल दे, अपनी दशा पर स्वयं विचार करके, यह निष्कर्ष निकालती है किं मैं विरह व्यथा के कारण रक्ताल्पता से पीले (दुर्बल) शरीर वाली हो गई हूँ; अब मैं उज्ज्वल वर्ण के स्वस्थ शरीर वाली नहीं रह पाई हूँ। स्नेह के छल के बल से कौतूहल दे, को छल लिया गया; उसका सुन्दर रूप, स्वास्थ्य सुख–चैन सब कुछ छलिया स्नेह ने हरण कर लिया।

षंजा छंद :

कुँवर रोइ है, हाथ धोइ है। नाहिं सोइ है, दुषित षोइ है।।

अर्थ–पौष माह में, प्रियतम से वियुक्त रहे राजकुमार सरबंगी ने भी अपार कष्ट सहा, उसका वर्णन इस प्रकार है कि–कुँवर रोता है, उसने इस समय में प्रियतम को अपने हाथ से खो दिया है, वह सोता नहीं है। वह दुःख से व्याकुल होकर रोता रहा है।

चांवर छंद :

माह मास आईयौ जु सीत कौ समंद है।
सनेह देह दाहि है बियौग कौ कमंदि है।
परै न चैंन कौतिगी, सुमार मरि है।
पहार हार चिंत है, तुसार जारि जरि है।

अर्थ–माघ का महीना आ गया, इसमें अथाह शीत परिव्याप्त हो गया। स्नेह ने धनुष बन कर वियोग के सन्तापकारी बाणों की वर्षा करके कौतूहल दे के शरीर को सन्ताप से जलाया। विरह की तीव्र मार से, कौतूहल दे अत्यन्त व्याकुल हो गई; और वह मरणासन्न अवस्था में पहुँच गई। उस पर दुःख के पहाड़ टूट पड़े। उसने विचार कर लिया कि मेरी पराजय हो जायेगी; उसकी अवस्था पाले से जलाये पौधों या लता के सदृश हो चली है।

सीमाण छंद :

बिहाइ कुंवर चिंत मौ। प्रान रहैं मिंत मैं।
नींद रैन ना परै। द्यौस हूं दुषी टरै।

अर्थ–पौष माह का समय कुँवर सरबंगी ने विरह पीड़ा से संतप्त रहते हुए चिन्ता करते–करते व्यतीत किया। उसके प्राण तो प्रियतमा में बसते थे, अतः प्रियतमा से मिलन न होने की स्थिति में, वह निष्प्राण–सदृश हो गया था। उसको रात्रि में, निद्रा का सुख प्राप्त नहीं होता था तथा दिवस भी दुःख का अनुभव करते–करते व्यतीत होता था।

लीला सिरषा छंद :

फागनि नागनि पौंन उसैं तन रैन दिना।
षेलत डोलहिं बाम न भावहिं लाल बिना।

चंदन केसर केसू नाहिन जात गिना।
चैन परै नहि पी बिन कौतिग यक छिना।

**अर्थ**—फागुन के महीने की पवन, रात–दिन विरहिणी कौतूहल दे के तन को नागिन के डँसने के सदृश, कष्ट देने वाली हो गई। अन्यान्य स्त्रियाँ प्रसन्नता के साथ 'फाग' खेलती रहीं किन्तु विरहिणी, कौतूहल को, प्रियतम के मिलन के अभाव में, 'फाग' खेलना रास नहीं आया। अन्य कुछ स्त्रियाँ चन्दन और केसर मिश्रित रंग से फाग खेलने में अथाह आनन्द प्राप्त करती रहीं किन्तु प्रियतम के मिलन के बिना राजकुमारी कौतूहल दे को एक क्षण को भी चैन प्राप्त नहीं हुआ।

**बीजूमाल छंद :**

आयौ भाषैं बसंता जू, नेहा हाथी मैंमंता जू।
धायौ सरबंगी कौ भारी, बाचै कैसैं बिना पियारी।।

**अर्थ**—बसन्त माह के समय में, सभी कहने लगे कि बसन्त का आगमन हो गया है, अब स्नेह, उच्चकोटि के मदजल बहाने वाले (हाथी) कुञ्जर के समान गतिशील हो रहा है। काम ने तीव्र वेग से सरबंगी पर आक्रमण कर दिया है, प्रियतमा के मिलने और उसके द्वारा सहायता किये जाने के अभाव में सरबंगी का (वियोग व्यथा से) सुरक्षित रहना कठिन है।

**त्रिभंगी छंद :**

आयौ है चैता बिरहा अैता तर पषरैता होइ रहौ।
बहु दूरहि दौरैं बिटपी मौरैं बोलैं भौरे नाद गहें।
दैं कौंरी कौंरी गादर गौरी, डौंरी सी ह्वै अंग दहै।
बोलैं पिककारी जे पिय न्यारी, ते दुष–जारी पाप सहैं।

**अर्थ**—चैत्र मास में विरह ने अत्यन्त दुःख उपस्थित किया। इस हरे भरे सरबंगी रूपी वृक्ष के प्रसन्नता रूपी हरे पत्र शुष्क होकर झड़ गये। चैत्र मास के तीव्र वेग ने विटपों को पत्रों से रहित कर दिया। ऐसे वातावरण में, मोर बोलते थे; भँवरे गुंजन से नाद उत्पन्न करते थे। विरहावस्था के कारण, गदराये (माँसल) शरीर की गोरी के अंगों को जला कर पतली रेखा मात्र आकार का शरीर धारण करने वाली बना देने वाला वह कौन है? निश्चय ही यह चैत्र ही है। इस समय में

काली कोयलें बोला करती हैं–जिसकी ध्वनि को सुनकर प्रियतम से वियुक्त नारियाँ स्नेह से उत्पन्न पाप के परिणामस्वरूप विरह से जलाई जाने का दुःख सहन किया करती हैं।

**धारी छंद :**

**पिंक पुकारैं। अगिन जारैं।**
**कुंवर दुषिया। नाहिं सुषिया।।**

**अर्थ**–चैत्र मास में राजकुमार की विरहावस्था भी इसी प्रकार की वर्णित हैः–कोयलें बोलती थीं, जिससे सरबंगी को विरह और भी जलाने लगता था। कुँवर दुःख प्राप्त कर रहा था; वह सुखी नहीं था।

**पधरी छंद :**

**वैसाष लगें तर लाग फर।**
**भई किसलय नौतन रूप बर।**
**मेरौ मन भावन नांहिं धरि।**
**छतिया रतिया दिन रही जरि।।**

**अर्थ**–वैशाख मास में विरह–पीड़ित राजकुमारी ने अपनी विरह वेदना इस प्रकार व्यक्त की–वैशाख माह के आरम्भ में, वृक्षों पर फल लग रहे हैं। वृक्षों पर नई–नई कोंपले लग रही हैं, जिसके कारण वृक्षों ने नवीन प्रकार का श्रेष्ठ–सुन्दर रूप धारण कर लिया है। मेरा मन का चाहा हुआ प्रियतम सरबंगी घर पर नहीं है। मेरी छाती रात–दिन वियोग की ज्वाला से जल रही है।

**झमका छंद :**

**अगनि नेहा दही देह।**
**चैन–मेह नहीं गेह।।**

**अर्थ**–प्रेम रूपी वियोग से प्रभावित अग्नि ने मेरे शरीर को जला डाला है। मेरे घर में चैन की वर्षा नहीं हो रही है।

**सवईया 10 :**

**लूटत हैं दुष छूट न पावत,**
**फूटजि मैं चित फूटि गयौ है।**

ताव तजे भक लाद कल्यानहि।

तावत जेंम कलाद कल्यानहिं;

ताती बयार त्यौं अंग तयौ है।

गात मै रातौ रह्यौ रंग नाहिन,

पीत की पीत तें पीत मयौ है॥

द्वादस मास ऊदास भये तिय,

दीरघ जेठ बियोग दयौ है।

लूटत हैं दुष छूट न पावत॥

**अर्थ**—विरहिणी कौतूहलदे को, ज्येष्ठ के महीने में भी वियोग के सघन सन्ताप को सहना पड़ा; उसका विस्तार से वर्णन करते हुए कवि ने बताया है कि उसके सुख–वैभव, रूप–रंग और चैन को प्रियतम के वियोग से उत्पन्न दुःख लूटते रहे, वह इन दुःखों से किसी भी माह में, किसी भी ऋतु में, किसी प्रकार मुक्त नहीं हो सकी। विरहिणी कौतूहल दे कहती थी कि धैर्य त्यागने के कारण मेरा चित्त फूट कर बिखर गया है अर्थात् निराशा व्याप्त हो जाने से तन के किसी अङ्ग–उपाङ्ग पर नियन्त्रण नहीं रहा है। मिलने की आशा नहीं रही, यही एक तत्व था जिससे तन–मन में जीवन संचरित था। अब निराशा की बन्द घुटन में चित्त घिर कर भकला गया है, उसमें कल्याणकारी मिलन के विश्वास का 'जीवन' समाप्त हो गया है। तप्त हवा से कौतूहलदे का वियोग से दुर्बल तन पूर्णतः भुन गया है। शरीर में, रक्त की पूर्णता से युक्त अपेक्षित रूप वाला रंग विद्यमान नहीं रहा है। शरीर का रंग पीली आभा वाला हो गया है। पूरे के पूरे बारह महीनों के समय ने कौतूहल देवी को वियोग की उदासी से भर.दिया। ज्येष्ठ मास ने भी उसे अत्यधिक वियोग दिया।

**चौपई–63 :**

बिरह अगिन जरि कारी भई। अरूनाई सब ही भजि गई।

दाई कह्यौ प्रान तूं मेरौ। रूप कौन गुन पकड़यौ तेरौ॥

**अर्थ**—विरहाग्नि से ज्वलित तन–मन वाली कौतूहल देवी श्यामवर्ण की हो गई तथा अरूणाई उसके तन से पूर्ण–रूपेण पलायन कर गई। धाय माँ ने कहा, ''तू तो मेरा प्राण है, किस अवस्था के गुण के परिणामस्वरूप तेरा रूप, उज्ज्वल वर्ण के विपरीत हो गया है।

कथा बिथा की मोसौं भाषहु। करौं उपाइ न मन मैं राषहु।

कौतूहल चषि आंसू ढारे। धाइ पाइ कौं पान पसारे॥

**अर्थ**—मुझे अपनी व्यथा की कथा बता दो, मन में कुछ भी रहस्य छिपा कर मत रखो। मैं तुम्हारी व्यथा को दूर करने के लिए पूरे-पूरे उपाय करूँगी। कौतूहल देवी अपनी आँखों से आँसू गिरा रही थी और हाथों से धाय माँ के पैरों को आँसुओं के पानी से धोने लगी।

बात मोहि जिन जान हुँ ठाली। मेरौ मनौ बस कीनौ माली।

रोग कह्यौ अब करहु उपाव। मुये करहुगे कौंन पसाव॥

**अर्थ**—कौतूहल देवी ने धाय माँ से निवेदन किया कि मेरी व्यथा अकारण ही उत्पन्न नहीं हो गई है। मेरे मन को माली ने वश में कर लिया है। मैंने अपने रोग का कथन कर दिया है, अब तुम इस कष्ट से मुक्ति प्राप्त करने का उपाय करो। मेरी मृत्यु ही हो गई तब उसके पश्चात् जीवन कैसे दे सकोगी? समय रहते ही रोग से मुक्ति का उपाय करो।

**चंदामाला छंद :**

बिरह बैरी दहै। कहौ कौलौं सहै।

अब उपाव ना लहै। जीव तन ना रहै॥

**अर्थ**—राजकुमारी ने धाय को अपनी व्यथा की कथा इस प्रकार बताई – प्रियतम के वियोग ने शत्रु का रूप धारण कर लिया है, यह मुझे जलाता है। बताओ! कब तक सहन करूँ? अब वियोग के दुःख को दूर करने का कोई भी उपाय उपलब्ध नहीं है। यह प्राण तन को त्याग कर जा रहे हैं।

**चौपई-64 :**

दाइ कह्यौ धीर दै मन कौं। उहि ढूंढन जैहूं उपवन कौं।

कौतूहल बोली सुनि दाई। षट् रित मोकौं दुखित बिहाई॥

**अर्थ**—धाय माँ ने कौतूहल देवी से कहा कि मन में धैर्य धारण करो। उस माली को ढूँढने के लिए मैं बाग में जाऊँगी। कौतूहल ने कहा कि हे धाय माँ! सुनो! षट् ऋतुओं का समय मुझे वियोग देते हुये व्यतीत हुआ है।

**चौपई :**

**अब कौलौं हूं, धीरज धरि हौं। जरि बरि गई कहां लौ जरिहौं।**
**येक मास हूं जान न दैहौं। तौ साची जौ आनि मिलै हौं।।**

**अर्थ**–अब कितने समय तक मैं धैर्य धारण करती रहूँगी। मैं पूर्णरूपेण जल कर नष्ट हो चुकी हूँ। वियोग मुझे और कितना और कब तक जलायेगा? धाय माँ ने कौतूहल दे से कहा कि मैं एक मास का समय व्यतीत नहीं होने दूँगी, उससे पूर्व ही यदि मैं सत्य बोलने वाली हूँ तो तेरे प्रियतम को लाकर तुमसे मिलवा दूंगी।

**दाई मास कौंन कौं आवै। मोहि भयौ पल बरिष सतावै।**
**द्वादस मासन भेंट्यौ नाहिं। जीवत रही सु अचिरज आहि।।**

**अर्थ**–कौतूहल देवी ने धाय माँ से कहा कि एक महीने तक प्रियतम के मिलने की प्रतीक्षा के लिये जीवन भला किसका बचा रहेगा? अर्थात् मैं वियोग की पीड़ा को इतने लम्बे समय तक सहन नहीं कर पाऊँगी। मुझे वियोग का दुःख एक पल को भी सहन करना पड़े तो वह मुझे एक वर्ष के समान लग रहा है। अब एक पल की भी देर मत करो, तुरन्त उपाय करो। मेरा प्रियतम बारह माह से मिला नहीं है, मैंने उसके वियोग के दुःख को इतनी लम्बी अवधि तक सहा है। इतने दीर्घकालीन दुःख को अनवरत सहते रहने पर भी मैं क्यों जीवित हूँ, इस पर विचार कर मुझे आश्चर्य हो रहा है।

**अबहि मास जौ मोहि बतावहु। दई सौंह जीवत नहिं पावहु।**

**अर्थ**–अब पुनः आगे एक माह तक मिलन हेतु प्रतीक्षा करने के लिए तुम मुझसे कह रही हो? अब विधाता की शपथपूर्वक मैं बता रही हूँ कि एक माह तक तो मैं जीवित नहीं रह पाऊँगी। ऐसी स्थिति में तब उससे मिलाने के लिए तुम मुझे जीवित प्राप्त नहीं कर सकोगी।

**पाइक छंद :**

**विरहा बैरी निस दिन जारै।**
**येक घरी सुख नाहिं हमारै।**
**अब मोकौं जो मास बतावहि।**
**हाडन ऊपर मास न पावहि।**

**अर्थ**—कौतूहल देवी ने धाय माँ को बताया कि वियोग मेरा शत्रु बन कर रात–दिन मुझे जलाता रहता है और एक घड़ी भर के समय के लिए भी सुख उपलब्ध नहीं हो सका है। हे धाय माता! अब तुम जो यह आश्वासन दे रही हो कि एक माह के अन्दर प्रियतम माली को बुलाकर ले आओगी और मुझसे मिलवा दोगी, इस प्रकार की शिथिल चेष्टा से मुझे सुख नहीं मिलेगा। एक मास तक यदि मुझे वियोग का दुःख सहन करना पड़ा तो मेरी हड्डियों के ऊपर माँस नहीं रहेगा अर्थात् मैं कंकाल मात्र रूप में अवशिष्ट रह पाऊँगी।

**चौपई–65 :**

**संझा लौं मन कौं दै धीरज, मधुकर आनि मिलाऊं नीरज।**
**सांझ भये दाई उठि चली, सोधत फिरैं पुहप ज्यौं अली।।**

**अर्थ**—धाय माँ ने राजकुमारी कौतूहल देवी से कहा कि तुम आज संध्या तक मन में धैर्य धारण करो, मैं मधुकर रूपी माली को ले आकर नीरज रूपी तुम (राजकुमारी जी) से मिलवा दूँगी। सन्ध्या के समय धाय ने, वहाँ से उठ कर प्रस्थान किया। वह उस माली (सरबंगी) को उपवन में उसी प्रकार की चाहत से ढूँढने का प्रयास करने लगी जिस प्रकार कि एक दीवाना भँवरा पुष्प को खोजता फिरता है।

**पदमाकर पर न्हावत पायौ, दुरि दुरि देख्यौ नाहि लषायौ।**
**आये डिस्ट चरन लौं बार, रीझी धाइ यांहि ब्यौहार।।**

**अर्थ**—तब धाय माँ ने देखा कि पद्मों से भरे सरोवर के किनारे पर वह स्नान कर रहा है। उसने उसको छुप–छुप कर देखा। जब धाय माँ स्वयं को छुपाकर, माली (सरबंगी) को स्नान करते हुए देख रही थी, तब उसने उस माली के सिर से लेकर चरणों तक लम्बे बालों को देख लिया। धाय माँ उसके इस व्यवहार पर मुग्ध हो गई।

**मोहि लषै तो ह्तैं निसंक। प्रगट भेद हौं न कैतंक।**
**दाई कौतूहल पैं आई। भेद मरम की बात जनाई।।**

**अर्थ**—धाय ने मन में विचार कर लिया था कि यदि यह इस समय मुझे इस अवस्था में देख लेगा तो भेद खुलने के भय से मुझको मार डालेगा। तदनन्तर धाय वहाँ से प्रस्थान कर राजकुमारी कौतूहल दे के समीप पहुँची और माली के मिल जाने तथा उसके बालों के होने की रहस्यपूर्ण सचाई की बात उसको बताई।

मैं वहु न्हावत पायौ बेसन। अचिरज भयौ देषि कैं केसन।

चरननि लौं लांबे अति कारे। मनमोहन करतार संवारे।।

**अर्थ**–धाय ने कहा कि मुझे वह उपवन में सरोवर के किनारे पर स्नान करते हुए मिला था। उस अवस्था में उसके बालों को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। उसके बाल सिर से लेकर पैरों तक लम्बे और अत्यन्त काले वर्ण के हैं। उसके बाल विधाता ने इतने सुन्दर बनाये हैं कि मन को मुग्ध कर लेने वाले हैं।

**दोहा :**

कै पावस की आहि रित, कै मावस की रैन।

कै मधुकर कै म्रिगमद चिकुर निहारें नैंन।।

**अर्थ**–धाय कह रही है कि मैंने उसके काले केशों को देखा तब मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि उसके केशों के पावस की काली घटा वाली ऋतु छटा दिखा रही है मानो अमावस्या की रात्रि की सघन अंधकारमयी शोभा बिखर रही हो या भँवरे की सी शोभा थी अथवा उसके केशों की शोभा काले निसोथ की छटा प्राप्त किये हुये थी।

**चौपई–66 :**

कौतूहल कौतूहल भयौ। नेह नेह में उपज्यौ नयौ।

सुनहु धाइ उह द्वै सुत राज, भेष कर्‌यौ यहु मेरैं काज।।

**अर्थ**–कौतूहल देवी के मन में, माली के सिर में लम्बे काले केशों के होने की बात सुनकर आश्चर्यमयी जिज्ञासा उत्पन्न हो गई। उसके हृदय में माली के प्रति प्रेम की नयी उमंग उत्पन्न हो गई। कौतूहल दे ने, धाय को माली के विषय में अपनी विशिष्ट जानकारी देते हुए इस प्रकार बताया कि, धाय माँ सुनो! वह राजा का पुत्र है, उसने मुझ (कौतूहल दे) को प्राप्त करने के लिए ही माली का छद्म भेष धारण कर लिया है।

अब बाकी गति नीकैं पाई। पीत पीत मैं भई सवाई।

गहर छांडि अबि घेरी धाइ। बूडतहूंअ लै पार लगाइ।।

**अर्थ**–अब उसके रंग–रूप की भी अच्छी (व्यवहार) गति ज्ञात हो गई है, अतः प्रियतम में, मेरी प्रीति मात्रा और अनुपात में सवा गुनी बढ़ गई है। (अब समाज में एवं सखी–सहेलियों में भी प्रियतम को साथं लेकर चलने में मुझे संकोच नहीं होगा। तब उसकी संचारण गति, समाज में

व्यापक रूप से हो सकेगी, ऐसा उसका सोच था)। राजकुमारी कौतूहल दे ने धाय माँ से कहा कि हे मेरी धाय माता! अब तुम विलम्ब (देर) मत करो। अब मैं डूबने के समीप हूँ। अतः शीघ्रता से मुझे बचाने का उपाय करो।

**बोल सुनहुं कौतूहल मेरौ। पठइ देइ वापै इक चेरौ।**

**जाइ कहै राजा जू टेरत। फेर–फारकैं इत कौं फेरत।।**

**अर्थ**–धाय माता ने कहा कि हे कौतूहल दे! मेरी युक्ति को ध्यान से सुनो। उस माली के पास एक सेवक को भेज दो। उस सेवक को समझा दो कि वह माली (सरबंगी) से जाकर यह कहे कि ''राजाजी उसे बुला रहे हैं।'' इसके बाद उस माली को वह सेवक घुमा फिरा कर यहाँ तुम्हारे पास पहुँचा देगा।

**हस्त त्रिभंगी छंद :**

**चेरा धारै छदम बनावै, भेद भितावै लै, आवै।**

**राजा जू टैरें, आनहु मेरैं, बाकौं नेरैं ज्यों गावै।**

**धन भाग तिहारे, महा उज्यो तू प्यारे।**

**महपति भावै, जिहि सुनि, जरि जीजै।**

**आनंद कीजै, तन मन भीजै, अनरावै।।**

**अर्थ**–धाय ने कहा कि कोई दास छद्मपूर्ण बातें बताकर उस माली को इधर ले आवे। राजकुमारी बुला रही है, इस भेद को वह छिपाकर रखे। 'राजा जी बुला रहे हैं कि–माली को गायन के लिए मेरे पास बुला कर ले आओ।' उस चेरा को समझाओ कि वह उस माली को बधाई देते हुए कहे कि प्यारे! तुम्हारा परम सौभाग्य जागृत हुआ है अब तुम्हारा भविष्य महान् उज्ज्वल है। तुम्हारा गायन राजा को रूचिकर लगता है, यह सुनकर अन्यान्य व्यक्तियों का हृदय तो द्वेष से जलने लगेगा, तुम तो आनन्द प्राप्त करोगे। तुम्हारा तन और मन तो प्रसन्न होगा। तुम्हारा तो भाग ही जग जायेगा।

**चौपई–67 :**

**कौतिग चेरौ येक बुलायौ। सिष बुधि दे कैं बाग पठायौ।**

**जाइ कह्यौ माली धनिभाग। राइ सुन्यौ चाहत हैं राग।।**

**अर्थ**—राजकुमारी ने धाय माता के द्वारा बताई युक्ति के अनुसार एक सेवक को बुलाकर उसे कार्य योजना समझा कर उपवन में भेज दिया। उस सेवक ने उपवन में माली के समीप जाकर कहा कि तुम्हारा परम सौभाग्य जागृत हो गया है क्योंकि राजा तुमसे राग सुनना चाहते हैं।

**बोहत चाह सौं टेरत तोकौं। येक स्वास दौरायौ मोकौं।**

**सुनत चले उठिकैं सरबंगी। देही बिरह रंग मैं रंगी॥**

**अर्थ**—उन्होंने अत्यधिक अभिलाषा रख कर तुमको बुलवाया है और इस निमित्त मुझे एक श्वाँस के समय भर में दौड़ा कर भेजा है। उस सेवक के मुख से राजा द्वारा बुलाये जाने का आदेश सुनकर, राजकुमार सरबंगी तत्काल उठकर चल दिये। उनकी आत्मा और शरीर, दोनों पर वियोग का प्रभाव परिव्याप्त था।

**भयौ पीन बल गिरि–गिरि जाइ। चेरा गहि गहि लेत उचाइ।**

**कौतूहल धौराहर द्वार। चेरैं लै पैठायौ चार॥**

**अर्थ**—सरबंगी वियोग–व्यथा से पीड़ित रहने के कारण क्षीणकाय हो गया था। अतः निर्बलता से चलते समय वह बारम्बार गिर पड़ता था। चेरा (सेवक) उसे गिरते समय संभाल कर उठा लेता था। कौतूहल दे, अपने धवलगृह के द्वार पर बैठ कर इस बात की प्रतीक्षा कर रही थी कि कब वह सेवक माली बने राजकुमार को अपने साथ में लेकर यहाँ पर आयेगा।

**मिली चार चषि, दोउ चार। आसू चले महानरनार।**

अर्थ—शीघ्र ही सेवक सरबंगी को साथ में लेकर राजकुमारी के समीप आ गया। तब सरबंगी और राजकुमारी दोनों के चार चक्षु आपस में मिले। आँखों ने हृदय में व्याप्त प्रेम को अभिव्यक्त कर दिया। स्त्री और पुरुष·दोनों की आँखों से अत्यधिक रूप से अश्रु–वर्षा होने लगी।

**सोरठा :**

**जबहि भयौ द्वै चार, तबहि दोइ यैक्वै भये।**

**पीत बिचार बिचार, चांर चार दोऊ मिले।**

**अर्थ**—जब दोनों की आँखे मिलकर चार हो गई, तब उन्होंने परस्परिक सची प्रीति का अनुभव कर लिया और वे एकात्मकता में बंध गये। प्रीति की गहनता का विचार कर करके परस्पर की चारों आँखों में दोनों ने झांक कर, हृदय की बात को समझ लिया कि दोनों के हृदयों में परस्पर समान रूप से अगाध अनुराग भरा हुआ है।

**ताणी छंद :**

**आईया भाईया। मोहना सोहना।**

**अर्थ**–विरह के कष्ट के बाद मिलन की प्रसन्नता में (आईया भाईया) वे मेरे मन को भाने वाले एवम् मेरे हृदय को मुग्ध करने वाले हे शोभन। इस प्रकार बोलने लगे।

**चौपई–68 :**

**जीवन नीके आनि जिंवाये। जीवन मूरी कैं संग षाये।**
**अचयौ भोजन दोऊ अघाये। पंच शास्त्र जल दोऊ आनि धुवायै।।**

**अर्थ**–राजकुमारी ने अपने प्रियतम का स्वागत करते हुये अनेक विध अच्छे–अच्छे भोजन लाकर उसे खाने के लिये दिये। सरबंगी ने ऐसे अनेक विध भोजन, जीवनदायिनी औषधिमूल प्रियतमा के प्यार–मिलन के साथ खाये। दोनों (युग्म) ने साथ–साथ भोजन किया तथा वे दोनों तृप्त हो गये। सेवक ने पाँच प्रकार से शुद्ध एवं सुवासित जल लाकर इन दोनों के हाथ धुलवाये।

**धाइ–आइकैं जीभ उघारी। सुनि सरबंगी बात हमारी।**
**कौतूहल कौ अंचयौ लौंन। ताकी सौंह भाषहु तुम्ह कौन?**

**अर्थ**–धाय माता ने जीभ खोलकर कहा कि हे सरबंगी! हमारी बातों पर ध्यान दो। तुमने राजकुमारी कौतूहल दे का नमक खाया है। अब उस नमक की तुम्हें शपथ देकर पूछ रही हूँ। ''तुम सच–सच बताओ कि तुम कौन हो?''

**कहौ सांच अपनी सब बात। काकौ पूत कहा है जात।**
**कुंवर कह्यौ मै भेद दुरायौ। अबलौं काहू सौं न लषायौ।।**

**अर्थ**–तुम अपने विषय में समस्त बातें सच–सच बता दो कि तुम किसके पुत्र हो? तुम्हारी जाति क्या है। कुँवर सरबंगी ने कहा कि मैंने अपने सच्चे स्वरूप के विषय में कुछ भेद छिपा कर रखा था। अब तक मैंन्ने किसी को, सही पता–ठिकाना अपने विषय में प्रकाशित नहीं किया।

**जो कछु या पर होई बिहानी। सब सरबंगी कही कहानी।**
**धन बोली सुनि मूरति मैंन। जेतौ विरह तितोई चैंन।।**

**अर्थ**–इसके पश्चात् सरबंगी ने घटित सम्पूर्ण कहानी कह कर प्रकाशित की। स्त्री कौतूहल दे

कहने लगी, ''हे कामदेव की साक्षात् मूर्त्ति! जितना विरह का दुःख अनुभव किया, उतना ही चैन भी मिल गया है।

**जो आपहि दुष नाहिन दैहै। सो काहू विधि चैन निपैहै।**

**अब चित तें सभ चिंत निबार। विरह दुसंह मार्‌यौ करतार॥**

**अर्थ**—जो अपने आपको दुःख नहीं देगा, वह किसी प्रकार सच्चा चैन प्राप्त नहीं कर पायेगा। अब चित्त में से समस्त आशंकाओं भरी चिन्ताओं को निकाल कर दूर कर दो। जगत् का निर्माण करने वाले विधाता ने कठिन विरह को नष्ट कर दिया है। हमारा मिलन हो चुका है।

**सवईया–9 :**

**रूपराइ नंद इंद बदन कहात।**
**जासौ केते दुख देषि कर, आई कँवलावती॥**
**कहा कहा कीनौ, मधुकर, मधुमालती कैं।**
**कहा कहा कीनौ धौ कुंवर म्रिगावती।**
**केतौ दुष देख्यौ पुरंदर, कलावंत काज।**
**कैसैं कै परमरूप पाई कनकावती।**
**कंचन तें कुंदन ह्वै, ज्वाला की झरफ सहै।**
**लहै बिन दुःषु कोऊ लहत न भांवती॥**

**अर्थ**—जान कवि ने कतिपय प्रेम कथायें गेय–काव्य के रूप में रची हैं। उन्हीं कथाओं के संदर्भ में अभिप्रेत निष्कर्ष का कथन करते हुये वे बता रहे हैं कि रूपराइ के पुत्र इन्दु बदन ने अनेक कष्टों को सहने के पश्चात् अपनी अभीष्ट प्रिया कंवलावती को प्राप्त किया।

मालती को प्राप्त करने के लिए मधुकर को कितने–कितने कष्ट सहने पड़े। राजकुमार ने मृगावती को प्राप्त करने के लिए, किस प्रकार के अनेकों कष्ट सहे। राजकुमार परमरूप ने भी अनकों प्रकार के अगाध कष्ट सहे तब उसे प्रिया कनकावती मिल सकी।

मनुष्य को अपने मन की अभिलषित कोई भी वस्तु बिना अपार कष्ट सहे नहीं मिल पाती है। अभिलषित की प्राप्ति के लिए मनुष्य को कष्ट सहकर, अपने गुणों को निखारना पड़ता है; अपने अन्दर तपस्या से योग्यता अर्जित करनी पड़ती है। मनुष्य निरन्तर धैर्य के साथ कष्टों

रूपी ज्वालाओं की दहक को सह–सह कर वह और भी सुन्दर गुणों वाला कुन्दन बनता है। मनुष्य में भी पूर्णता तभी आती है जब वह निरन्तर कष्ट सहकर भी अभ्यास पूर्वक अपनी योग्यताओं को विकसित करे।

**चौपई–69 :**

**जैसे वस्त्र पेन्हत राइ। तैसे वाकौं दये मगाइ।**
**झट पट बसन लै सौंपे धाइ। नीकैं राखी इनकौ माइ॥**

**अर्थ**–राजाओं के पहनने योग्य बहुमूल्य वस्त्र राजा ने उस माली सरबंगी के लिए मँगवा दिये। राजा ने बहुमूल्य रेशमी वस्त्र अपने हाथ से चयन करके धाय को सौंप दिये। उन्होंने धाय को निर्देश दिये कि हे माता! इनको भली प्रकार से आदर पूर्वक रखना।

**इनहूं लौं आवैगौ काज। मेरै मन यौं होत अगाज।**
**सरबंगी कौतूहल प्यारी। करहिं कलोल ऊंमंगनि भारी॥**

**अर्थ**–इनसे भी हमारा प्रयोजन सिद्ध होगा, मेरे मने में ऐसा पूर्वाभास हो रहा है। सरबंगी और उसकी प्रिया कौतूहल देवी, भारी उमंगों के साथ प्रेम क्रीड़ायें करने लगे।

**कौतूहल दे, लैकर साज। गावत भावत रही विराज।**
**गांवन लग्यौ बहुरि, सरबंगी। जी, रीझत कौतूहल अरधंगी॥**

**अर्थ**–कौतूहल देवी अपने हाथ में कोई भी मनचाहा वाद्य यंत्र लेकर अभिलषित प्रकार का गीत गाती हुई शोभा प्राप्त करने लगी। सरबंगी, कौतूहल देवी के साथ उसे रिझाने हेतु बार–बार संगत करने लगा।

**सवईया–10 :**

**येक हैं परेषबे कौं देषिबै कौं दोइ हैं।**
**नेह मद मैन मद जोबन कै माते मद।**
**पीति रीति रंग राते, हातौ नहिं होइ हैं।**
**करिहिं कलौल केल कीला रसु मांहि।**
**रैन दिन छिन–छिन चैन ही में खोइ हैं।**
**नांहिन चल लत कछु, रहे ह्वै मलीन हीन॥**

विरह–वियोग चिंत, आंसू कर धोइ हैं।

हिलि मिलि रहे, षिलि, षिलि डह डहे मन।

**अर्थ**–कोई भी परीक्षा करके देखे तो वे एकरस मालूम पड़ते थे किन्तु चर्म चक्षुओं से देखने पर तो वे पृथक्–पृथक् दो शरीरों (अपने–अपने) को धारण किये हुये थे। वे दोनों समान रूप से, स्नेह रूपी कामदेव के यौवन के मद से प्रभावित थे। वे प्रेम की निराली रीति वाले रंग में रंगे हुये थे। वे एक–दूसरे से पृथक् नहीं हो सकते थे। वे विभिन्न प्रकार की लीलाओं के रस में सब कुछ भूल कर उमंगों के साथ अनेकों 'काम–क्रीड़ायें' रचते थे। उन्हें रात और दिन, दोनों ही समयों में निरंतर प्रेम क्रीड़ायें करना रुचिकर लगता था, वे रात–दिन का समय चैन से व्यतीत कर रहे थे। वे गति करते हुये भी, तृप्त नहीं हो रहे थे, उनमें उदासी भी नहीं आ रही थी। अब, मिलन हो जाने से वे सबल थे। वे दोनों पूर्व के वियोग की चिन्ताओं वाले आँसूओं को, अपने हाथों से प्रसन्नताओं से धो रहे थे। उन दोनों के मन अब हिल–मिल कर खिलखिला रहे थे तथा खिल–खिलाकर उमंग के साथ हिल–मिल रहे थे। उनके मन अब हृष्ट–पुष्ट हो रहे थे।

**चौपई–70 :**

निस दिन लागे करन कलोल। पीति रीति बाढ़ी रंग चोल।

अस्ट जाम बीतत हैं सुख मैं। येक पल कहूं होत न दुख मैं।।

**अर्थ**–सरबंगी और कौतूहल दे अहर्निश प्रेम–क्रीड़ाओं में निरत रहने लगे। उनकी परस्पर बढ़ती प्रीति की रीति के अनुरूप उनके प्रेम में वासना का आवेग भी प्रस्फुटित रूप से उजागर होने लगा। आठों प्रहर, इस प्रेमी युगल के, सुख में व्यतीत होने लगे। वे दोनों अब, एक पल के लिए भी, दुःख की स्थिति का अनुभव नहीं करते थे।

येक द्यौंस घहरन नीसान। सुनत हुलास पुरी थररान।

यें ते मांहि भनावा पायौ। पछिम कौ राजा चढ़ि आयौ।।

**अर्थ**–एक दिन निशान (आक्रमण की ध्वनि बजाने वाले नगाड़े) की घनघोर भयंकर ध्वनि सुनते ही उस आनन्दमयी नगरी में भय की कँपकपी विद्यमान हो गई। इतने ही समय में कानों में ऐसी भनक पड़ी कि पश्चिम दिशा के राजा ने आक्रमण कर दिया है।

**गैणद छंद :**

चढ़ौ राजा पछमी, दल–बल सजे अग्यांन।
धाक दुंदभ गहर सौं, मनौं घना–घन घहरांन।
रौर उपजी ठौर–ठौर, लंकेस हू थररांन।
कौन जौ सनमुख चढ़ै, भये देस देस भजांन।

**अर्थ**–पश्चिम दिशा के राजा ने अगणित संख्या में सैन्य–दल के विभिन्न प्रकार के बल के साथ आक्रमण कर दिया। दुंदुभियों एवं भयंकर ध्वनि करने वाले नगाड़ों की गम्भीर ध्वनियों से ऐसा लग रहा था मानों सघन मेघ–समूह चोटों की तीव्र ध्वनियां कर रहे हों। स्थान–स्थान पर भारी कोलाहल होने लगा। सभी स्थानों की प्रजायें कहने लगीं कि रावण के समान अत्याचारी और अभिमानी कोई राजा उन्मत्त होकर मिथ्याचारपूर्वक आक्रमण कर रहा है। ऐसा कौन होगा भला, जो ऐसे बलशाली के समक्ष आकर प्रतिकार कर सके? देश–देश में प्रजाजन घर–गाँव छोड़कर पलायन कर रहे थे।

**रोड़क छंद :**

चढ्यौ राइ जगरूप, सुमिरकैं सिरजन हारै।
मेरै तौ तूं येक वाहिकैं दल बल गारै।
होइ न्याव पर दई, दया कर ताकौं तारै।
जो अन्याई होइ, तास लै भौमहि मारै॥

**अर्थ**–अब जगरूप राजा ने जगत् का निर्माण करने वाले सर्वशक्तिमान् का स्मरण करके–प्रत्याक्रमण युद्ध आरम्भ क़र दिया। राजा ने ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहा कि मेरा सहायक तो एकमात्र तूं ही है। तूं ही इस शत्रु के बड़े सैन्य दल के पैरों की भूमि में, दल–दल की कठिनाई उत्पन्न करके उसे अशक्त बना सकता है। ईश्वर! तुम न्याय के साथ सहायक होकर, दया करके मुझ जैसे आर्त को संकट से मुक्ति दिला सकते हो। हे प्रभु ! जो अन्याय कर रहा हो, उसे अपने नियन्त्रण में लेकर जमीन पर पटक कर मार दो।

**गीतक छंद :**

चढि दोइ दल ठाढे भये, पाषर संजोग सुहावने।
जोध विरोधे, क्रोध मैं, सनमुख भये डर पावने।

**नालैं बंदूकैं छूटि हैं, दुहूं वोर सीष फूटि हैं।**
**धर-धूर सूरज छाइयौ, जग अंधकार जनाइयौ।।**

**अर्थ**–दोनों राजाओं के सैन्य दल लड़ाई के लिये तैयार होकर खड़े हो गये। उन सैनिकों ने कवच धारण कर लिये थे। अतः वे सभी सुशोभित हो रहे थे। योद्धा क्रोधपूर्वक परस्पर लड़ने लगे, वे एक-दूसरे के समक्ष भयंकर रूप धारण करके लड़ने में प्रवृत्त हुये। युद्ध में तोपें और बंदूकें तीव्र ध्वनि करती हुई चल रही है। इससे दोनों पक्ष की सेनाओं की अग्रिम पंक्तियां तितर-बितर हो गयी हैं। दोनों ओर की सेनाओं के युद्ध से सूर्य ढ़क गया है तथा जगत में अन्धकार व्याप्त हो गया है।

**गीतक छंद :**

**बोल्यौ कंवर, तब, कौतूहली, यह रौर कैसी नगर मैं।**
**मानस फिरत है दौरते, कोऊ बगर मैं, कोउ डगर मैं।**
**राजा प्रतीची आईयौ, मो तात सनमुख धाईयौ।**
**सिर परी कठिन कठोर जू। मेरैं लयैं ये सोरजू।।**

**अर्थ**–कुँवर सरबंगी ने कौतूहल दे से कहा कि नगर में यह कौलाहल क्यों व कैसे उत्पन्न हो गया? मनुष्य दौड़ते फिर रहे हैं। कोई जन समूह तो रास्ते पर भागता दिखाई दे रहा है, कोई मैदानी-जंगल में, चले जा रहे हैं। कौतूहल देवी ने, उसको बताया कि पश्चिमी दिशा के राजा ने आक्रमण कर दिया है। मेरा पिता राजा भी उसके समक्ष-युद्ध करने जा पहुँचा है। अब यह कठोरतम आपदा शीर्ष पर आ चुकी है। यह आक्रमण मेरे कारण हुआ है।

**भुजंगी छंद :**

**मंगाये बसन, कपट के, हे जु, डारे।**
**बहुत भाँति बानिक बने, ते उंतारे।**
**चले जूझकौं स्रबअंगी उज्यारे।**
**गहर ना कियौ, जाइ वै दल हकारे।।**

**अर्थ**–कौतूहल दे से, उपर्युक्त प्रकार से सुनकर राजकुमार सरबंगी ने मिथ्या सजावट के समस्त प्रकार के वस्त्र आदि सब उतार कर रख दिये। सरबंगी, युद्ध के लिए चल पड़े। उनके

मुख पर उत्साह की उज्ज्वल आभा अवस्थित थी। उन्होंने विलम्ब नहीं होने दिया, शीघ्र शत्रु–सेना के सम्मुख जा पहुँचे तथा शत्रुओं को युद्ध के लिए ललकारा।

**बंध छंद :**

**काढ़ि लई करवार सरबंगी। पाइक जूथ रंग्यौ रत रंगी।**
**देषत राइ कह्यौ सुनि संगी। है यहु तौ ऊहि मालिक अंगी।।**

**अर्थ**–सरबंगी ने म्यांन से तलवार निकाल कर युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। शत्रु सेना के समूह पर वह शूरवीर टूट पड़ा। अब वह योद्धा, युद्ध के रंग में रंगा हुआ था। राजा ने उसको, युद्ध करते हुये देखकर, अपने साथ के प्रमुख सेनापति आदि साथियों से कहा कि मेरी यह बात सुनो, देखो! यह तो वही माली का लड़का है।

**गैण छंद :**

**सूरवीर निहारिये यहं देहु घोरा आंनिं।**
**अरिन दल कौं, दल मलैगौ, सांच मेरैं जांन।**
**जूथ पाइक सभ भजाये, लह्यौ भेष–रैमान।**
**असु चढ़ै तेईस दैहैं, दुसहिं सीस निदान।।**

**अर्थ**–इस शूरवीर का निरीक्षण कीजिये, इसे सवारी के लिये घोड़ा लाकर दीजिये। यह घोड़े पर सवार होकर जब युद्ध करेगा, तब शत्रुओं के सैन्य दल को मसलकर नष्ट कर देगा–ऐसा मेरा अनुमान सत्य प्रमाणित होगा। जितने सैन्य दलों को सम्मुख पाया, उसने उन सभी को तितर बितर करके पलायन करने को विवश कर दिया। अश्वारूढ़ उसने घोड़े पर सवार रहमान का रूप धारण कर लिया था। उस शूरवीर सरबंगी ने अनेकों शत्रुओं के सिरों को, तलवार से काट–काट कर, मुण्ड–माल तैयार कर ली, इस प्रकार उसने रूद्र रूप धारण करके शिव को प्रसन्न कर दिया है।

**नाराइच छंद :**

**भयौ सुबार सर्ब अंग कहत मार मारही।**
**सहै न भीर, भीर कौं, जुझारं सौं जुझार ही।**
**अनेक रूण्डिमाल, दई लाल लाल ईस कौं।**
**किल–किलाँहि जुग्गनी जगीस दैं असीस कौं।।**

**अर्थ**—सरबंगी अश्व पर सवार होकर युद्ध कर रहा था। उसके सम्पूर्ण अंगों में, मारामार करने की उमंग भरी हुई थी। बड़ा सैन्य दल, बड़े सैन्य दल से युद्ध कर रहा था; शूरवीर योद्धा से शूरवीर योद्धा ही युद्ध करता था। सरबंगी ने अनेक रूण्डों की रक्तिम मालायें भगवान् रूद्र (शिव) को अर्पित कर दीं। योगिनियाँ किलकिला रही थीं, राजा जगरूप उसको आशीर्वाद दे रहे थे।

**धारी छंद :**

**सार चाषैं, हाथ राषें, देह आड़ैं, दल न छाड़ैं।**

**अर्थ**—युद्ध भूमि में वीर सैनिक तलवार की धार का स्वाद चख रहे थे लेकिन तलवारों के प्रहारों के बीच में योद्धाओं के शरीर अवरोध उत्पन्न कर रहे थे। सैनिक युद्ध में, प्राण रहते अपने, अपने दल को छोड़ कर नहीं जाते थे।

**पवंगम छंद :**

**पछिम राइ रिसाइ, सनमुख आईयौ।**
**आगै ते सरबंग सिंघ ज्यौं धाईयौ।**
**दहुंवन तन रत रैनी रंग रंगाईयौ।**
**अंत गिरायौ राव महाजस पाईयौ।।**

**अर्थ**—पश्चिमी दिशा वाला राजा क्रोधित होकर सम्मुख आ गया। सरबंगी तत्काल सिंह के समान उस पर आक्रमण करने को आ गया। दोनों का तन रणक्षेत्र में युद्ध में प्रवृत्त हो गया; अन्य में युद्ध करते-करते सरबंगी ने पश्चिम के राजा को मार कर डाल दिया। इस प्रकार सरबंगी ने महान् यश प्राप्त किया।

**सवईया :**

**मानहु कलिंदा लयौ बेलि सौं ऊपारिकैं।**
**सजि दल-बल, महा प्रंबल; सबल धायौ, कल-मल्यौ।**
**सेस चाहै भाज्यौ भर डारि कैं।**
**लियें अति कोहैं छछोह धरें, धोह चित,**
**बाहत है लोहनी की बिधि अरि नारी कौं।**

गयौ गिरि मुंड, इछ्या रूंड-माल
आयौ सिव लागी नहीं रही, नैंक लागैं करवार कैं
कर गहि केस लयौ, धरतें उचायौ सीस।

अर्थ—युद्धभूमि में, सरबंगी ने पश्चिमी दिशा के राजा के पक्ष के सैनिकों के शीर्ष उनके धड़ से इस प्रकार काट कर उड़ाये, मानो वह सहज ही में बेल से तरबूज (कलिन्दा) तोड़ रहा हो। अपने पक्ष के सैनिकों को सरबंगी के हाथों से मारा जाता हुआ देख कर शत्रु राजा अपने दल के बल को सजा कर, महाप्रबल होकर, पूरे वेग से आक्रमण करने के लिए चढ़ आया। इतने बड़े सैन्य-दल के भार से पीड़ित होकर, पृथ्वी को अपने फन पर धारण करने वाला शेष नाग, व्याकुल हो गया और यह इच्छा करने लगा कि इस असह्य भार वाली पृथ्वी को सिर से ही हटाकर, भाग क्यों न जाऊँ? वह शत्रु राजा क्षुभित होकर, अत्यन्त कोप करने लगा; उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल था। इस पर, जब सरबंगी ने तलवार के हाथ चलाये तब, पश्चिमी राजा की सेना रूपी नारी का अत्यन्त प्रगाढ़ मात्रा में रक्त (लहू) बहा।

रूद्र (शिव) की इच्छा के अनुसार, सरबंगी ने पश्चिमी राजा की ग्रीवा (गर्दन) पर तलवार का प्रहार किया, उससे उसका शीर्ष धड़ से कट कर गिर गया। सरबंगी साक्षात् शिव के रूद्र रूप में प्रकट हो गया। रक्त बहते रुण्डों की मालायें उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। उसके हाथ से हल्के प्रहार के साथ तलवार शत्रु राजा की ग्रीवा पर पड़ी और उसने, कटे शीर्ष को केश पकड़ कर धड़ भाग से ऊपर उठा लिया।

**चौपई-71 :**

**जैत भई फिरि आयौ राइ। लै लै सरबंगी गरलाइ।**
**कह्यौ सौंह तोकौं करतार। जाति पांति कौ देहु विचार॥**

**अर्थ**—जीत (विजय) हो गई, एतत्पश्चात्; राजा वहाँ आया। राजा ने सरबंगी को, बारम्बार समीप लेकर अपने गले से लगाया। राजा ने सरबंगी से कहा-''तुमको विधाता की शपथ है; तुम अपनी जाति-पाँति के विषय में सही (सच्चा) परिचय प्रदान करो।''

**षाइ सौंह सरबंगी बोल्यौ। जिहं लग वाहि भेद सौं डोल्यौ।**
**सगरौ मरम जनायौ अपनौ। पाप-संताप बिरह कौ तपनौ॥**

**अर्थ**–सरबंगी ने विधाता की शपथ खाकर उत्तर दिया, ''जितने समय तक, व्यावहारिक आवश्यकता हुई मैं अपने वास्तविक परिचय को छिपा कर कार्य–सिद्ध करता रहा था। सरबंगी ने अपने रहस्यमय वास्तविक परिचय को प्रकाशित किया; राजकुमारी कौतूहल दे के प्रति स्नेह के पाप के कारण विरह कृत सन्ताप के कष्ट को कैसे–कैसे सहन किया? आदि सभी रहस्य प्रकट कर दिये।

**हरषायौ सुनिकै जगरूप। ग्याता लह्यौ दमाद अनूप।**

**आनंदन हरिषन चित चाइ। बाभन तब ही लये बुलाइ।।**

**अर्थ**–राजा जगरूप उसका परिचय सुनकर हर्षित हो गया। उसने अनुपम ज्ञाता दामाद प्राप्त किया था। उसके चित्त में हर्ष और आनन्द से अपूर्व उत्साह भर गया था। उसने, उसी समय श्रेष्ठ ब्राह्मण बुलवा लिये।

**भुजंगी छंद :**

**पढ़ें बेद पंडित, कियें ग्यांन तोरा। बरे कोटि दीपग भयौ गांठ जोरा।**

**करैं कुंवर मन मैं, निरंजन निहोरा। बने, दिव्य दोउ किसोरी किसोरा।।**

**अर्थ**–विवाह–कर्म प्रारम्भ हुआ। पण्डित ज्ञान कर्मी सर्वोत्कृष्ट विधि के विधान के अनुसार वेद पढ़ रहे थे। करोड़ों दीपक जल रहे थे, ऐसी शोभ सम्पन्न निशा में, सरबंगी और राजकुमारी कौतूहल दे के वस्त्रों के छोरों में गाँठ लगा कर 'गाँठ–जोरा' की परम्परागत विवाह–रीति को, विधि–विधान पूर्वक सम्पन्न किया गया। कुँवर सरबंगी इस समय मन में निरंजन से विनम्र प्रार्थना कर रहे थे कि सबका कल्याण हो। उस समय, विवाह के विधि–विधान पूर्वक सम्पन्न होने से पूर्व में स्नेह करने वाले, दोनों किशोरी और किशोर के मुख पर, अब धार्मिक दिव्य आभा–आलोकित होने लगी थी।

**भुजंगी छंद :**

**सदन आइ बैठे मदन, द्रणमाते। करहिं केल कीला उमंग–रंग–राते।**

**महारूपवंते उजागर सुहाते। छबीले रंगीले, रसीले सुजाते।।**

**अर्थ**–विवाह के उपरान्त, सरबंगी और कौतूहल देवी 'केलि सदन' में आकर बैठ गये। उन दोनों की आँखों में कामदेव का मद झलक रहा था। वे वासना के रंग में रंगे हुये, उमंग पूर्वक, उद्दाम काम–क्रीड़ायें करने में लगे हुये थे। दोनों के रूप में महान उज्ज्वलता आ गई थी; वे

शोभा सम्पन्न थे। इस समय वे प्रेमी युगल प्रेम–क्रीड़ा करने में, छबीले रंगले रसीले और सुन्दर गति–संयुक्त थे।

**सवईया–15 :**

**अंक भरे परजंक बिराजैं, मयंक मुषी उर लाल बसी है।**
**दंपति जो रति–पत्ति–रत्ति, किधौं यहु अैंन जुन्हाई ससी है।**
**देत अल्प गन स्याम अंगी, दरकी तन की छबि यौं निकसी है।**
**जान निहारि बिचारि कह्यौ; सुतौ कारी घटा मनु बीज लसी है।**
**मैन की कीनी है, मानहु माननि मोहनि है, मन मोहन मोह्यौ।**
**संग रहै, अरधंग करी, रंग भंग, मोती अंग अंग हू ढोह्यौ (दोह्यौ)।**
**सेत अंगी दरकी अंकमाल भैंट्यौ निकस्यौ तन ता मधि सोह्यौ।**
**जान अद्‌भुत बात भई यहु रूपै की खांनि मैं कंचन जोह्यौ॥**

**अर्थ**–कामदेव की ही मूर्त्ति से बनी हुई वह रूप–गर्विता राजकुमारी, मन को मुग्ध करने वाली थी, उसने मन को मोह लेने वाले सुन्दर सरबंगी के हृदय को विमुग्ध कर लिया। उसने, उसे अर्द्धाङ्गिनी बनाकर, प्रेम रंग–पाग कर संग रख लिया था। सरबंगी ने उसे मानों अपनी माँग का मोती बना कर इतना मूल्यवान् प्रेम दिया कि उसे अपने अंग–अंग पर धारण करके वहन किया। वह श्वेत वर्ण के अंगों वाली सुन्दरी उमंग से उछल कर, उसके अंकमाल से बाहर निकली। उस समय, सरबंगी के शरीर के शोभा श्यामल निशीथ के सदृश ज्ञात हो रही थी। जान कवि कहते हैं कि इस समय का वर्णन बड़ा अद्‌भुद् है–इस समय सरबंगी की रूप शोभा ऐसी थी जैसे–चांदी की खान में से निकलते हुए ‘कंचन’ को देखने में जो रूप शोभा होती है।

**सवईया–16 :**

**केलि करैं पति कांम कलोल, अलोल तिया अंगमाल भरी है।**
**मानत है रति जानत ज्यौं, जिय छाड़ित नाहिन गाढ़ी करी है।**
**लागि स्रमजल चंदन खौर, बही कुच तें उपमा यौं ररी है।**
**जान कहै कवि सूरिज देषि सुमेर ते मानहुं द्रास ढरी है।।**

**अर्थ**—पति सरबंगी काम–केलि रचाने लगा। उसने अर्द्धाङ्गिनी को अपनी गोद में स्थित करके पूर्ण रूप से आलिङ्गन में समाविष्ट कर लिया है। उस समय जैसे–जैसे मन की इच्छा का, आवेग उत्पन्न होता है उसी के अनुरूप रतिक्रीड़ा करने लग जाता है। वह स्त्री को छोड़ नहीं रहा है; उसने कौतूहल दे को प्रगाढ़ रीति से आलिङ्गन में ले रखा है। तीव्र आवेग के साथ संभोग–क्रीड़ा करने में, निकले 'स्वेद' (पसीने) के जल से, प्रिया के कुचों पर लेपित चन्दन का अङ्गराग (खौर) बह कर हट गया है। उसकी उपमा जान कवि ने इस प्रकार वर्णित की है कि उन संभोग–श्रम से निकले स्वेद जल से कुचों पर से बहते चन्दन के लेपन की रूप–शोभा ऐसी हो रही है, जैसी कि तप्त सूर्य के सम्पर्क से स्वर्ण के सुमेरू पर्वत पर से बर्फ हट गई हो। उसी प्रकार के सादृश्य वाले स्वर्णाभा वाली चोटियों वाले कौतूहल देवी के कुच सुशोभित हो रहे थे।

**सवईया–17 :**

**दंपति केलि करें हित मैं चित मांहि उमंग अनंग किसोरे।**
**दोऊ रसीले हैं दोऊ रंगीले हैं, छबीले सरूप अनूपम गोरे।**
**टुटे बलया हूं फुटीं, पुनि केस छुटे कहि जान ज्यौं घोरे।**
**सीस तें अैंसे परे मुकता मंग कारी घटा बरषे मनुचोरे।।**

**अर्थ**—दंपति–युगल सरबंगी और कौतूहल देवी आनन्दपूर्वक काम–क्रीड़ायें करते थे। वे अपनी किशोर वय के कारण, चित्त में कामदेव कृत उमंग से परिपूर्ण रहते थे। जान कवि उनकी संभोग क्रीड़ा का चित्रण करते हुये कहते हैं कि दोनों आनन्द में भर रहे हैं, उनमें यौवन का रंग भरा हुआ है, काम–वासना की लालसा में उनमें तीव्र गति का स्फुरण हो रहा है। उनका रूप सुन्दर है और अनुपम रीति से उज्ज्वल है।

रति क्रीड़ा में हार टूट गये हैं तथा एक दूसरे के गले में पड़ी हुई बाहों के बन्धन खुल गये हैं। जान कवि कहते हैं कि केश जो बंधे हुये थे वे आवेगपूर्वक किये जाते हुंए संभोग के कारण बंधनों से ऐसे मुक्त हो गये हैं जैसे कि घोड़े बन्धनों के तनिक से शिथिलन से वेग से मुक्त होकर दौड़ जाते हैं।

शीश पर मोती, विन्यस्त थे, वे भी काम–क्रीड़ा में काले केशों की माँग में से निरन्तर तीव्रता से ऐसे गिरे जैसे कि मानों काली घटा से श्वेत, उज्ज्वलवर्ण के ओलों की वर्षा हुई हो। जोकि मन का हरण करने वाली (आकर्षक) हो।

सवईया–18 :

मैन हुलास किये सब रैन बिहांन भये, अरसानहिं जोहैं।
मंजन कै चषि, अंजन दै मुख; अंजन षै, छबि रंभ हुं दोहैं।
मोती हरा कुच चंदन षौरि जु ताप रयौं कच जूथ बिमोहै।
गंग धारैं सिर, अंगि बिभूति, कैलास कैं कंदिर संकर सोहै।।

अर्थ–पूरी रात्रि तक उमंग से काम–क्रीड़ायें करने वाले, वे दोनों, प्रभात–समय में आलस्य भरे निहार रहे हैं। नींद भर, सोये नहीं होने के कारण मनो–मस्तिष्क का नियन्त्रण शिथिल होने के कारण, उन दोनों ने अंजन (चूर्ण) को आँखों में लगा लिया है। अंजन को मुख–रंजन चूर्ण समझ कर खा लिया है, इससे उनकी रमणीय रूप शोभा–हास्यानंद उत्पन्न कर रही है। गले पर पड़ी मोतियों की माला लटक कर ऐसे कुच पर हिलती हुई अवस्थित हो रही है, जिस पर चन्दन का लेपन है और संभोग में शिथिल हुये बंधन वाले केश, आच्छादित हो गये हैं। इस मन को मुग्ध करने वाले दृश्य की तुलना सिर पर श्वेत गंगमाल धारण किये, अङ्गों में श्वेत और उज्ज्वल विभूति लपेटे हुये, कैलाश पर्वत की (केशों से बनी) कंदरा में विराज रहे शिव से करने पर सादृश्य बन जाता है।

चौपई–72 :

चैंन माहि केतक दिन गये। कुंवर राइ ढिगुं ठाढ़े भये।
आइस अबहिं देहु मोहि राइ। मात तात के परसौं पाइ।।

अर्थ–इस प्रकार सुखपूर्वक विलास करते हुये कुंवर सरबंगी ने कितने ही दिन व्यतीत कर दिये। एतत्पश्चात्, कुँवर सरबंगी; राजा के पास जाकर खड़े हो गये। वे राजा से कहने लगे कि हे राजन्! मुझे इसी समय आज्ञा प्रदान कीजिये ताकि मैं यहाँ से प्रस्थान करके अपने माता–पिता के चरण स्पर्श कर सकूँ।

भुजंगी छंद :

मगाये तुरी ऊंट हाथी अपारा। गने नांहिं जैहैं गनैं जो संसारा।
बहुत लाल नगजूथ मुक्ता उज्यारा। दयौ दाइजौ बहु, कियौ नाहिर रठारा।।

अर्थ–राजा ने सरबंगी को विदाई देने के शुभ अवसर पर भेंट करने के लिए, अपार संख्या में,

अश्व, ऊँट और हाथी मँगवा लिये। सारा संसार उन्हें गिनने की चेष्टा करे, तब भी वे गिने नहीं जा सकते थे। उसने बहुत से 'लाल' नगों (रत्नों) के समूह एवं उज्ज्वल मोतियों के समूह सहित प्रगाढ़ दान किया। राजा ने उसको और अधिक नहीं रोका।

**भुजंगी छंद :**

**बिदा होइ सरबंग घर कौं सिधारे। लये संग पोषन संतोषन पियारे।**
**परस दरस भये तें गये पाप सारे। रहे नांहि रंचक पिता पग निहारे॥**

**अर्थ**—विदा होकर सरबंगजी अपने घर पर सफलतापूर्वक पहुँच गये। वे अपने हृदय को संतुष्ट रखने वाली एवं प्राणों को पोषण प्रदान करने वाली प्रिया कौतूहल देवी को भी संग में लेकर आये थे। माता–पिता के दर्शन एवं स्पर्श से उनके समस्त पाप पूर्णतः दूर हो चुके थे। उन्होंने आदरपूर्वक अपने पिता के चरणों की ओर निहार कर देखा।

**भुजंगी छंद :**

**महा चौंप हरिषा भयौ चैंन नगरी। गयौ सोच चिंता रही फूल सिगरी।**
**बजैं ढौल दुंदुभ नफीरी उपंगी। करैं न्रित उमंगन बिराजैं म्रिदंगी॥**

**अर्थ**—उस नगरी में महान् उत्साह और हर्ष सहित चैन भर गया। वहाँ सभी प्रजाजन आदि आनन्द मनाते हुये नृत्य करने लगे और मृदंग बजाने लगे। नगरी में अतीव शोभा परिव्याप्त हो गई।

**भुजंगी छंद :**

**करैं दांन राजा, कियौ जग अजाची।**
**उदीची व दछिन औ प्रतीची व प्राची।**
**रह्यौ नाहिं जाचिग, सुनी रीति साची।**
**सुआई तमासैं सुकेसी ध्रिताची।**

**अर्थ**—कुँवर सरबंगी के पिता राजा जी ने ऐसा प्रभूत दान दिया कि सारा जगत् अयाचक हो गया। उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में कोई भी याचक़ नहीं रहा, उसकी नीति रीति प्रजाओं के अनुकूल और सत्य की अनुगामिनी थी। उसके यहाँ उत्सव में ऐसा मनोरंजन पूर्ण खेल मनाया गया जिसमें स्वर्ग की अप्सरायें सुकेशी एवं धृताची भी आई थीं।

**दोहा :**

सोलह सै पचहतरै, कथा कथी यहु जांन।
फूटे-टूटै जोरियहु, जुरतें राषहु कान॥

**अर्थ**–जान कवि का कथन है कि संवत् सोलह सौ पचहत्तर में यह कथा कही है। इसमें त्रुटि हो तो उसे संशोधित करके कथा को सही 'अभिप्रेत' लक्ष्य के अनुरूप जोड़ने का, संयमपूर्वक कार्य कर लेवें।

**पुष्पिका :**

इति कथा कौतूहली की संपूरन भई समतु 1773॥

1/78॥चैत सुदी॥10॥ मंगलवार दसतषत फतेहचंद ताराचंद कै का सवईया॥18॥ चौपई-72॥ दोहा-85॥छंद 60॥ कवित-20॥सोरठा-6॥साराही-228॥

**अर्थ**–इस प्रकार 'कथा कौतूहल देवी' की सम्पूर्ण हुई। सं. 1773 (सन् 1716 ई.) चैत्र शुक्ला 10 (दशमी) मंगलवार दसतषत फतेहचंद ताराचंद का। सवईया॥18॥ चौपई-72॥ दोहा-85॥छंद 60॥कवित-20॥सोरठा-6॥साराही-228॥

# कथा मधुकर–मालती

दोहा–1 :

आदि अगोचर सुमिरिहौं, स्रिस्ट करन करतार।
येक सब्द ही मैं (में) कर्‌यौ, सब कछु सुरग पतार।।

**अर्थ**–रचनाकार न्यामत खाँ 'जान' कवि कहते हैं कि इस प्रेम–कथा की रचना करते समय, ग्रन्थ के आरम्भ में, मैं जगत्–निर्माणकर्त्ता परमेश्वर का स्मरण करता हूँ। परमेश्वर इन्द्रियों से देखा और जाना नहीं जा सकता है। ऐसे सर्वशक्तिमान् ज़गत्कर्त्ता ने एक शब्द जगत् ('ब्रह्म', 'ओइम्') में स्वर्ग और पाताल आदि समस्त सृष्टि को रचा है।

दोहा–2 :

मानस कंचन कसन कौं, कर्‌यौ कसौटी नेह।
बारह बांनीं होत हैं, कसै पेम सैं देह।।

**अर्थ**–मुनष्य समस्त सृष्टि में उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ है, जिस प्रकार समस्त धातुओं में सोना है। सोने में भी कंचन सर्वोत्कृष्ट होता है। तब मनुष्य को भी विवेकाधारित शिष्ट मानवीय पंथ पर चलते हुए अपार कष्टों के ताप को सहकर भी पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। वास्तव में मानव को ईश्वर की सृष्टि से स्नेह करना चाहिए।

मनुष्य को सबसे पहले समर्पण भाव से सच्चा 'नेह' करना सीखना चाहिए। नेह करने में जब मनुष्य की लगन लग जाती है, तब वह राग–द्वेष से हीन हो जाता है। वह अपनी जाति–पाँति, अमीरी–गरीबी, अहंकार आदि को भूल जाता है; तब वह शुद्ध मानव बन जाता है–यही 'कंचन' स्वरूप है। ऐसे स्वरूप के बिना तो मनुष्य अनेकविध अज्ञान के पाशों में बँधकर मानसिक चैतन्य के दूषित होने से विभिन्न भेद–भावों में अपनी जाति–पाँति, ऊँच–नीच, रंग–रूप आदि क्षुद्र–कामनाओं से सृजित – श्रेणियों में विभक्त हो जाते हैं। 'प्रेम' की शिक्षा पूरी होने पर मनुष्य को शुद्ध चैतन्य प्राप्त हो जाता है और जब वह अपने 'नफ़स' (देह के पाशविक आवेगों) पर नियन्त्रण करना सीख जाता है।

दोहा–3 :

दुगम अगम दुष की बिधा, सुगम करत हैं ताहि।
करता दींनदयाल हैं, सबकी पूरत चाहि।।

**अर्थ**–संसार में दुःख ही दुःख है। दुःखों के समय, मात्रा व रूपों के विषय में अनुमान लगाया जाना कठिन होता है। दुःख मुझे न मिलें, ऐसी चाह सबको ही होती है। जो जगत्कर्त्ता पर विश्वास करता है, उसे सर्वशक्तिमान् के समक्ष अपने हृदय की शुद्धता एवम् निरभिमानता के साथ दुःख निवृत्ति के लिए ऐसी आशा करनी चाहिए कि जब वह अपने को अन्य प्राणियों के समक्ष दीन ही प्रस्तुत करेगा तब वह सर्वशक्तिमान्–ऐसे दीन पर प्रेम दर्शायेगा और उसके दुःखों को दूर कर स्थायी सुख देगा।

'जान कवि' कहते हैं कि दीनदयाल सबकी चाह पूरी कर देते हैं, यह बात भी इन्होंने अपनी काव्यमय कहानियों में प्रमाणित की है। ईश्वरीय तरीके भी आश्चर्यजनक होते हैं। ईश्वर चाहत ही बदल देते हैं जैसा कि इनकी 'कथा कनकावती' में द्रष्टव्य है।

**दोहा–4 :**

**दूजैं सुमिरौं नवी कौं, करता जिह जिय़ मांहिं।**
**मिले अकेले होइ कैं, संग न राषी छाहिं॥**

**अर्थ**– पुनः अब मैं, इस ग्रन्थ की रचना के आरम्भ में (नबी) पैगम्बर मोहम्मद साहब का स्मरण करता हूँ, जिनसे मिलते समय जगत्–निर्माणकर्त्ता अल्लाह–पाक ने हृदय में कोई परदा (छिपाव) नहीं रखा। किसी छाया को भी बीच में बाधक नहीं बनने दिया। दोनों सम्पूर्ण रूप से समात्मभाव से मिले। इन्होंने प्रारम्भ में पंथ की शिक्षाएँ दीं।

**दोहा–5 :**

**अब बरनौं कवि जांन कहि, मधुकर मालति पीति।**
**मिलि बिछुरंन दुषु सुष सकल, प्रगटावत हौं रीति॥**

**अर्थ**–कवि जान कहते हैं कि अब मैं मधुकर–मालती की प्रीति का आख्यान इस काव्य 'कथा–मधुकर–मालती' में प्रस्तुत कर रहा हूँ। इस कथा में, उनके मिलने, बिछुड़ने, दुःख एवम् सुख प्राप्त करने आदि के समस्त वर्णन को उत्तम कथन–शैली के माध्यम से वर्णित कर रहा हूँ।

**दोहा–6 :**

**इक मधुकर पुनि मालती, दुहव़नि साचौ नेह।**
**देह देह सुषु ना कह्यौ, सहे सकल दुषु देह॥**

**अर्थ**–इस काव्य–कथा के वर्णन में एक मधुकर है तथा दूसरी मालती है। दोनों में परस्पर सच्चा स्नेह है। उन्होंने सम्पूर्ण प्रकार के देह सम्बन्धी कष्ट सहे हैं। किन्तु देह के क्षुद्र सुखों को ही वास्तविक सुख नहीं माना है, अपितु आत्म–सुख को ही सुख माना गया है।

**पवंगम छन्द–1 :**

**सोई सांची पीति, जु ह्वै दहूं व़ोर की।**
**पीत न दीप पतंग, तंग न चंद चकोर की।**
**नीर मीन न ही पीति, पीति सारस (स) रस।**
**ना जीव़त बिन देषें पीतम कौ दरस।।**

**अर्थ**–जो दोनों और हो वही प्रीति सच्ची कही गई है। जान कवि ने कहा है कि पतंगा दीपक की किसी भी वस्तु का पान नहीं करता है किन्तु उनकी प्रकृतिनिष्ठ प्रीति होती है। चन्द्रमा और चकोर प्रत्यक्ष रूप से किसी सूत्र में बँधे नहीं हैं किन्तु चकोर को चन्द्रमा की चाह रहती है। मछली सदैव जल को पीती रहती है, इसीलिए जल में रहती है। (जल से बाहर निकलते ही मर जाती है); इसमें प्रकृतिनिष्ठ कोई आधारभूत कारण अवस्थित है जिसके कारण, मछली को जल से प्रेम होता है।

इसी प्रकार सारस के जीवन के पोषण का आवश्यक आधार सरोवर होता है। अतः विशेषोक्तिपूर्वक कहते हैं कि प्रियतम को देखे बिना प्रेम करने वाले का जीवन संकटग्रस्त रहता है। प्रिय का दर्शन, प्रेमी के जीवन का पोषण होता है।

**चौपई–1 :**

**नगर अजौध्या है सुषु सागर। रतन तहां बसिहै सौदागर।**
**अति धनव़ंत कर्यौ करतार। आव़त नाहिं दर्ब कौ पार।।**

**अर्थ**–एक नगर अयोध्या नाम का है। यह नगर सुखों का सागर है। वहाँ रतन नाम का सौदागर (व्यापारी) रहता था। ईश्वर ने उसे अत्यधिक धनवान बनाया था। उसके पास इतना अधिक द्रव्य (धन) था कि उसकी मात्रा का अनुमान लगाना सम्भव नहीं था।

**ताकौ पुत्र रूप अभिरांम। मधुकर कहव़त ताकौ नांम।**
**निस बासुर व़हु गुर ढिगु पढ़ि है। ग्रंथ बिना कछु रस्न न रटि है।।**

**अर्थ**–उसका पुत्र अत्यधिक सुन्दर था। उसका नाम मधुकर था। वह रात–दिन गुरू के पास रहकर पढ़ा करता था। वह ग्रन्थ के बिना, अपनी जीभ से कुछ भी याद किया हुआ पढ़ने में समर्थ नहीं हुआ था अर्थात् ग्रन्थ की सहायता से ही पढ़ पाता था।

**होत होत ज़ब भय़ौ किशोर। चंचल चषि चितव़त चहु व़ोर।**

**द्वारैं ठाढ़ौ हौ दिन येक। कहूं लरिकटा जात अनेक।।**

**अर्थ**–समयानुक्रम से धीरे–धीरे उसकी आयु बढ़ी और वह किशोरावस्था में पहुँच गया। उसके नेत्र चंचल रहते थे। वह चारों ओर देखा करता था। एक दिन द्वार पर खड़े उसने देखा कि अनेक लड़के–लड़कियाँ जा रहे हैं।

**किती य़ेक कन्या तिन मांहिं। रूपव़ंत बरनी नहीं जाहिं।**

**सब .ये पढ़न जात चटसार। य़ेक य़ेक तें रूप अपार।।**

**अर्थ**–उन्हीं लड़कों के साथ कितनी ही कन्यायें भी जा रही हैं। उनमें कुछ कन्यायें तो ऐसी सुन्दर थीं कि उनकी सुन्दरता का वर्णन ही नहीं किया जा सकता। ये समस्त लड़कियाँ पढ़ने के लिए पाठशाला में जाया करती थीं। सभी लड़कियाँ रूप में एक से बढ़कर एक थीं।

**काहू के पग मनमथ पर्यौ। काहू कैं नैननि मैं बस्यौ।**

**सब मैं य़ेक छबीली बांम। आहि मालती ताकौ नांम।।**

**अर्थ**–किसी के पैर इतने सुन्दर थे कि वे कामदेव का प्रभाव उत्पन्न करते थे। किसी के नयनो में ऐसा सौन्दर्य था जो कामदेव के प्रभाव को उत्पन्न करता था। उन समस्त कन्याओं में सबसे अधिक आकर्षक (छबीली) लावण्यमयी एक नारी है–उसका नाम मालती है।

**औ रतराइन हैं ब़हु चंद। करता करी रूप की कंद।**

**निकसे हैं कुच थोरे थोरे। कनक बतूला गोरे गोरे।।**

**अर्थ**–रूप–शोभा में जहाँ अन्य कन्याओं को तारागण कहा जाय तो उस उपमा से मालती को 'चन्द्रमा' कहना उचित है। ईश्वर ने उसे रूप की इकट्ठी राशि बनाया है। उसके कुच अभी छोटे–छोटे ही निकले हैं, जो कि रंग में गोरे–गोरे हैं और रूपाकृति में कनक के किंचित् उठे हुए (बल्ब) फूल सदृश हैं।

**भय़ौ उजारौ छाती तिया। मनहुं जराइ धरे द्वै दिया।**
**मधुकर देषत मुरछित भय़ौ। मालति बास मगन ह्वै गयौ।।**

**अर्थ**–कुच उभर आने से मालती की छाती अब स्पष्ट दिखाई देने लगी है। स्पष्ट उभार के कारण दोनों कुच मानो जलते हुए दीपक के रूप में रखे हुए हैं। मधुकर उस मालती को देखते ही, उसके रूप के प्रभाव से उन्माद छा जाने के कारण मूर्च्छित हो गया। मालती उसके चित्त में बस गई; वह उसके रूप को देखकर आह्लादित हो गया।

**म्रिगनैनी तीय़ देषति भाई। पर्यौ भोंम मानौ म्रिगी आई।**
**मालति मधुकर रूप निहार। परी भोम पर षाइ पछार।।**

**अर्थ**–मधुकर उस मृगनयनी के नेत्रों के वशीभूत हो गया। वह, उसे देखते ही अच्छी लगी। वह उसके रूप के प्रभाव से मूर्च्छित होकर भूमि पर ऐसी अवस्था में गिर गया, मानों उसे मिरगी रोग हो गया हो। मालती भी मधुकर के रूप का अवलोकन करके समान रूप से प्रेम के वशीभूत होकर भूमि पर गिर पछाड़ खाकर गिर गई।

**मधुकर मालति रीझत नित। इन अलि हर्यौ मालती चित।**
**मधुकर काहू लय़ौ उचाइ। लाग्यौ तकन डिस्ट ठहराइ।।**

**अर्थ**–एक सखी ने, दूसरी सखी से कहा कि मधुकर और मालती नित्य परस्पर देखकर रीझते हैं। इस मधुकर ने मालती का चित्त आकर्षित कर लिया है। उसी समय किसी ने मधुकर को हाथों का सहारा देकर उठा लिया। उस समय भी मधुकर का चित्त मालती के ध्यान में लगा हुआ था; अतः उसकी दृष्टि ठहरी हुई थी।

**अलि कौं बहुत पूछि उहु रह्यौ। पैं कछु भेदु न अपनौ कह्यौ।**
**मालति सषिय़नि लई उचाइ। रोव़त संग सषिन कैं जाइ।।**

**अर्थ**–ऐसे भ्रमर रूप मधुकर से, सहारा देने वाले ने अनेकविध परिचय पूछा, किन्तु अपने परिवार, जाति या अन्य पते–ठिकाने का भेद उस मधुकर ने, उसको नहीं बताया; क्योंकि वह मालती में प्रेमाधिक्य के कारण अपना वैशिष्ट्य भूल गया था। मालती को भी सखियों ने जमीन से उठा लिंया। वह रोती हुई अपनी सखियों के साथ चली जा रही थी।

**पूछ रही कछु नांहिं लषाइ। पैं नीकी विधि परत न पाइ।**
**सहु आगैं कौं पाव़ चलाव़ै। मन फिरि फिरि पाछैं कौं आवै।।**

**अर्थ**–सखियों के पूछने पर उसने उत्तर दिया कि मुझ कुछ भी ज्ञात नहीं हो रहा है। उसका अवधान मधुकर में अटका हुआ था। उसके पैर सही रीति से नहीं चल रहे थे। मालती आगे को पैर रखती थी किन्तु उसका मन बार–बार पीछे चल रहे मधुकर के दर्शन की स्मृति में जाकर लग जाता था।

**दोहा–7 :**

**मन इतऊ पल–पल फिरत, होइ रह्यौ चकडोर।**
**जेतक पग आगैं धरत, द्रिग प्रीतम की .बोर॥**

**अर्थ**– मालती की दशा ऐसी बन गई कि मन बारम्बार मधुकर के रूप–रंग के वशीभूत होकर फिर 'शून्य' दर्शन वाली हो गई थी। वह अपनी वर्तमान गति को नियन्त्रित नहीं कर पा रही थी। वह पग तो आगे रखती थी किन्तु उसके मन की आँखे प्रियतम के दर्शन में अटकी हुई थीं।

**पवंगम छन्द–2 :**

**रीझे उर के नैन, रूप प्रीतम तकत।**
**नैसक चल्यौ न जाइ, मिटी तन की सकत।**
**आगैं परत न पाइ, रहे ह्वै कैं यकत।**
**गिरत परत मतवारौ, ज्यौं मद मैं छकत॥**

**अर्थ**–प्रियतम के रूप के प्रति रीझे हुए हृदय के नयन, उसी रूप की स्मृति से व्याप्त थे। तन में प्राण–शक्ति का अभाव हो गया था। अतः संसार में जैसे सामान्य रूप से चलना चाहिए वैसे उससे अब चला ही नहीं जा रहा था। अब 'चित्त' के चलने की क्रिया को नियंत्रित न करने की दशा में दोनों पग एक प्रकार के रक्त–संचार से युक्त थे, न कोई एक पग आगे जाता, न कोई पग पीछे की ओर, दोनों इकट्ठे हो रहे थे।

अब, वह चित्त के चलने में अनवधानता से पीड़ित होकर ऐसे चलती थी, जैसे कि कोई मद्यपान करने से नशे के प्रभाववश गिरता–पड़ता हुआ चलता है।

**चौपई–2 :**

**अति मुरझानीं मालति नारि। गिरत परत पुहंची चटसार।**
**डिस्ट मालती आई नांहिं। मधुकर बहुरि पर्‌यौ घर मांहिं॥**

**अर्थ**—अत्यन्त दुर्बल और मुरझाई हुई नारी मालती इसी भाँति गिरती–पड़ती चाल से पाठशाला में पहुँच गई। उसकी दृष्टि की क्षमता अब भी वापिस नहीं लौट सकी थी। मधुकर भी उसी प्रकार की दशा में घर पर पड़ा था।

**मधुकर सेव़क घर लै गये। मात तात तकि बौरे भय़े।**

**मात तात जेतौ बिललाव़त। मधुकर कछू न भेदु लषाव़त।।**

अर्थ—मधुकर के सेवक मधुकर को घर ले गये। मधुकर अस्वस्थ दशा में अचेत पड़ा रहा। उसकी दशा को देखकर माता–पिता की बुद्धि भी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई थी। माता पिता काफी विलाप करके मधुकर से पूछते थे कि तेरी ऐसी दशा किस कारण से हुई लेकिन मधुकर उन्हें इस बारे में कुछ भी भेद नहीं बताता था।

**मात तात उठि बाहर आइ। मधुकर पास पठाइ धाइ।**

**धाइ धाइ आइ उत भागी। हाइ हाइ कर रोव़न लागी।।**

**अर्थ**—माता–पिता तो उठकर बाहर आ गए और मधुकर के पास उसकी 'धाय' को कमरे में भेज दिया। वह पालन–पोषण करने वाली धाय माता उसके पास तीव्र गति से दौड़ती हुई पहुँची और मधुकर की अवस्था देखकर मन में अत्यन्त दुःखी होकर 'हाय–हाय' कर जोर से रोने लगी।

**कहत पूत कत भोजन षात न। काहे तें भाषत मुष बात न।**

**कौन रोग उपज्यौ घट माहीं। कौन सोग तें बोलत नाहीं।।**

**अर्थ**—वह कहने लगी कि पुत्र मधुकर! तुम किस कारणवश भोजन नहीं कर रहे हो और अपने दुःख के कारणों को प्रकाशित क्यों नहीं करते हो। तुम्हारे तन में कौनसा रोग उत्पन्न हो गया है। कौनसा ऐसा शोक तुम सहन कर रहे हो, जिसके कारण तुम पहले की भाँति बोलते नहीं हो।

**मधुकर कह्यौ रोग कछु नाहीं। पै हौं पढ़ि न सकौं घर माहीं।**

**हौं के गुर कै द्वै ढिंगु छाहीं। संगी और पढ़न कौ नाहीं।।**

**अर्थ**—मधुकर ने (असली बात को छिपाकर) उत्तर दिया कि–''मुझे कोई रोग नहीं हुआ है; परन्तु मैं घर में पढ़ नहीं सकूँगा। मेरे गुरू के समीप हम दोनों (गुरू–शिष्य) की छाया ही साथी है और कोई पढ़ने में साथ का व्यक्ति नहीं रहता है।

पढ़ि कोऊ ना सकत अकेलौ। य़ा दुष तें हौं भय़ौ दुहेलौ।
मो पठव़ौ ऐसी चटसार। जहां लरिकटा होंहि अपार।।

**अर्थ**—इस प्रकार अकेले रहकर तो कोई पढ़ नहीं सकता है। इसी दुःख से मैं ऐसा शोकग्रस्त—अनमना हो गया हूँ। मुझे, ऐसी पाठशाला में पढ़ने के लिए भेज दो, जहाँ मेरी अवस्था के अनेक बच्चे पढ़ने आते हैं।

षेलौं हंसौं पढ़ौं मन लाई। इतहिं अकेलैं पढ्यौ न जाई।
दाई कह्यौ कहा य़हु बात। जा काजैं भोजन नहीं षात।।

**अर्थ**—उनके साथ हँसू—खेलूँ और मन लगाकर पढ़ा भी करूँ। इधर वर्तमान में इन गुरूजी के पास मात्र अकेले रहकर पढ़ना मुझे अच्छा नहीं लगता है। धाय माता ने कहा, अच्छा! बस यही बात है, इसी कारण से तुम भोजन तक भी नहीं करते हो।

जत तुम इंछ्या तितहिं पठाव़हिं। सुष पाव़हु तिहिं भांति पढ़ाव़हिं।
मात तात हू कै मनु भाई। धाइ धाइ यहु बात जनाई।।

**अर्थ**—जहाँ तुम्हारा मन लगे उसी पाठशाला में हम तुमको पढ़ायेंगे। जिस प्रकार सुखपूर्वक तुम पढ़ सको, उसी प्रकार से हम तुम्हें पढ़ायेंगे। धाय माता ने मधुकर की पढ़ने के विषय में जो कठिनाई थी, उसे शीघ्रता से उसके माता—पिता को जाकर कह दिया। माता—पिता को भी यह बात पसन्द आ गई।

मधुकर कौ गुर लय़ौ हकार। बिदा कर्‌यौ कछु दै तिंह बार।
मधुकर पठय़ दय़ौ चटसार। जहां पढ़त ही मालति नारि।।

**अर्थ**—माता पिता ने मधुकर के पहले वाले गुरुजी को घर पर बुलवा लिया तथा उनको कुछ संतोषजनक धन आदि देकर विदा कर दिया। इसके पश्चात् मधुकर को उस पाठशाला में पढ़ने के लिए भेज दिया, जहाँ मालती नाम की वह लड़की पढ़ती थी।

देषत उपज्य़ौ दहुव़नि चैंन। सुष ही मैं बीतत दिन रैन।
पढ़त बिहाव़तु है दिन रात। षेलत हंसत करत पुनि बात।।

**अर्थ**—पाठशाला में बैठकर पढ़ने वाले मधुकर और मालती दोनों को परस्पर देखने से चैन प्राप्त होने लगा। अब उनके रात और दिन का समय सुख में ही व्यतीत होने लगा। वे साथ—साथ

खेलते थे, बातें कर लेते थे, पुनः हँसते थे। अब वे दोनों रात एवं दिन पढ़ाई करने में व्यतीत करने लगे।

**वै वाकौं वै वाकौं हेरैं। कछू न अंतर बैठत नेरैं।**
**रुदन हंसन निस घौंस बिहावत। बिरह रुवावति मिलन हंसावत।।**

**अर्थ**—पाठशाला में मधुकर और मालती परस्पर एक दूसरे का अवलोकन करते थे। वे परस्पर मिलकर ऐसे बैठते थे कि उनके बीच में कुछ भी दूरी नहीं होती थी। मधुकर और मालती के दिवस अब कभी हँसने और कभी रोने में व्यतीत होते थे। विरह सहना पड़ता था, तब वे दोनों रो उठते थे; जब उनको मिलने के अवसर प्राप्त हो जाते थे, तब वे प्रसन्न होते थे।

**दोहा–8 :**

**इत मधुकर उत मालती, बाढ़तु पैमु हुलास।**
**निस दिन छिंन छिंन जान कहि, ज्यौं सलिता चौमास।।**

अर्थ– जान कवि कहते हैं कि जिस प्रकार वर्षाकाल में दिन और रात के समय, नदी में जल क्षण–क्षण में बढ़ता चला जाता है, उसी के समान इधर तो मधुकर के हृदय में और उधर मालती के हृदय में प्रेम की उमंग बढ़ती जा रही थी।

**पवंगम छन्द–3 :**

**जैसे दुतिया चंदकला नित बढ़त है।**
**ज्यों सलिला चौमास रैंन दिन चढ़त है।**
**चढ़त चढ़त जो रहै, पीति सो जानिये।**
**घटत घटत हीं जाइ सु कहा बषानियें।।**

**अर्थ**—जिस प्रकार द्वितीया तिथि से आरम्भ होकर चन्द्रमा की कला नित्य बढ़ती जाती है। सरिता वर्षाकाल में (चतुर्मास) रात और दिन में निरन्तर जल से वृद्धि को प्राप्त होती चली जाती है। प्रीति में भी निरन्तर वृद्धि होते रहने का गुण होता है। जो घटती चली जाये, वह प्रीति नहीं कही जा सकती है।

**चौपई–3 :**

**इक मालति तन जोबन आयौ। दूजें पैमु रूप प्रगटायौ।**
**नेह मदन प्रगटी मुषु जोति। जो देषत सों बौरा होति।।**

**अर्थ**—मालती के शरीर में कुछ तो यौवन के कारण रूप–शोभा में वृद्धि हो गई थी; एक–दूसरे से प्रेमासक्ति ने भी उसके रूप–सौन्दर्य में अत्यधिक बढ़ोत्तरी कर दी। प्रेम तथा कामदेव के प्रभाव से उसके मुख में सौन्दर्य युक्त ज्योति (दमक) प्रकट हो गई जिसके कारण से जो भी कोई मालती को देख लेता था, वह बावला (दीवाना) हो जाता था।

**मालती ही (छो)री सौदागर। उन देषी यहु रूप उजागर।**
**मालति गुर सौं कह्यौ बुलाई। अब मालति चटसार न जाई।।**

**अर्थ**—मालती वस्तुतः एक सौदागर की पुत्री थी। उसने इस मालती के यौवन–सम्पन्न रूप को देखकर विचार किया। उसने हितकारी निर्णय लेकर मालती के पाठशाला के गुरू से कहा कि अब मालती पाठशाला में पढ़ने के लिए नहीं आया करेगी।

**ईक सिषु इतही देहु पठाइ। ज्यो मालती कौ जाई पढ़ाइ।**
**मालति मनमथ लय़ौ निव़ास। प्रगटी है जोबन की बास।।**

**अर्थ**—अब आप एक ऐसे शिष्य को घर पर ही भेजने का प्रबन्ध कर दीजिए जो मालती को यहाँ आकर पढ़ा जाया करेगा। मालती के पिता उस सौदागर ने गुरुजी से निवेदन किया कि मालती अब सयानी हो गई है। इसके शरीर में कामदेव ने निवास करना प्रारम्भ कर दिया है। इसके तन में यौवन की गन्ध प्रकट हो गई है।

**य़हु मेरैं ज्यो मैं डरु आई। जिन कौ मधुकर बास लुभाई।**
**तबहिं कह्यौ गुर नीकी बात। कौंन काज कौं य़हु उत जात।।**

**अर्थ**—मेरे हृदय में यह डर उत्पन्न हो गया है कि कहीं कोई पुरुष उसके रूप का लुब्धक न हो जाये। ऐसा सुनकर गुरु ने उससे कहा कि आपने सही विचार प्रकट किये हैं। ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसके लिए मालती को घर से पाठशाला पढ़ने के लिए जाना आवश्यक हो।

**इतहीं इक सिष देउं पठाइ। व़हु मालति कौं जाइ पढ़ाइ।**
**गुर घर बात चलाई जाइ। सुनत पर्‌यौ मधुकर उर घाइ।।**

**अर्थ**—मैं अपने शिष्य–अध्यापक को आपके घर भेज दिया करूँगा जो कि मालती को घर पर ही पढ़ा जाया करेगा। गुरू ने अपने घर जाकर, मालती के पिता के द्वारा बताई गई बातों के विषय में चर्चा की। मालती को घर में ऱोक कर पढ़ाने की बात को सुनते ही मधुकर के हृदय में चोट लगी और घाव हो गया।

**मालति दुषु मधुकर मुरझात। बिन देषैं कंटक गड़ि जात।**
**मधुकर रोवत निस दिन जात। जल पीवत ना भोजन षात॥**

**अर्थ**—मालती से नहीं मिल पाने के कारण मधुकर उदास रहने लगा और उसका तन क्षीण हो गया। मालती को नहीं देख पाने के कारण उसके हृदय में वियोग रूपी शूल चुभा रहने लगा। मधुकर की दशा, मालती के वियोग के कारण बुरी होने लगी। मधुकर रात और दिन रोता रहता था। वह न तो भोजन करता था और न पानी ही पीता था।

**ज्यों ज्यों मालति डिस्ट न आवै। त्यों त्यों मधुकर अति दुषु पावै।**
**माता-पिता कहैं का भयौ। तेरौ रूप बरन फिरि गयौ॥**

**अर्थ**—समय बीतता जा रहा था। अब मालती के दर्शन के बिना, विरह की पीड़ा की निरन्तरता के कारण मधुकर का दुःख भी अत्यधिक बढ़ गया था। मधुकर के माता-पिता उसे देखकर कहने लगे कि, 'तुझको क्या हो गया है; तेरा रूप एवं रंग परिवर्तित हो गया है।' जैसा रूप-रंग होना चाहिए वैसा न होकर, गिरी अवस्था को प्रकट करने वाला चिन्ता का विषय बन गया है।

**बात लजावत कछू न भाषै। मन कौ दुष तंन ही मैं राषै।**
**तबहिं पिता उठि गुरू बुलायौ। मधुकर प्यारैं पास पठायौ॥**

**अर्थ**—माता-पिता द्वारा पूछने पर भी मधुकर अपनी उदासीनता का सही कारण बताने में लज्जा का अनुभव करता था; अतः मर्यादा-संकोचवश उसने मालती के वियोग की पीड़ा को प्रकाशित नहीं किया। वह अपने मन के दुःख को, अपने तन में ही रखे रहा। उसने मुख खोल कर, मन के दुःख को शरीर से बाहर शब्द के रूप में निस्सृत नहीं होने दिया। तब पिता ने जाकर गुरू को बताया और उन्हें बुलाकर मधुकर के पास भेज दिया।

**गुर पूछी मधुकर सौं बात। काहे तूं रोवत दिन रात।**
**मधुकर सरब बिथा प्रगटाई। रंचक गुर तें नाहिं दुराई॥**

**अर्थ**—गुरू ने मधुकर से सब बात पूछी, ''तूं रात-दिन क्यों रोया करता है।'' मधुकर ने गुरू को अपनी व्यथा के विषय में सब कुछ प्रकाशित कर दिया। कोई छोटी से छोटी बात भी अपने गुरू से छिपाई नहीं।

**अब गुर कछू उपाव उपावहु। मधुकर कौं मालती मिलावहु।**
**गुरू कह्यौ ग्रहु मेरी बहियां। दहुंवनि कौं राषौं इक पहंया॥**

**अर्थ**—उसने गुरू से विनम्र निवेदन किया कि, ''मैं मालती की सुगन्ध पर रीझा हुआ मधुकर बन गया हूँ तथा उसके विरह में पीड़ित हूँ। आप कोई उपाय करके मुझे मालती से मिलवा दीजिए। गुरू ने मधुकर से कहा, ''मैं अपनी दोनों बाहें ऊंपर खड़ी करके सहायता की शपथ प्रकट करके विश्वास दिला रहा हूँ कि मैं तुमको और मालती को एक साथ रहने के लिए कोई उपाय अवश्य करूंगा॥

**मधुकर अति आनंदति भयौ। पीरौ वरुन अरुंन ह्वै गयौ।**
**बसतर पहरे भोजन लयौ। गुर कें संग पढ़ावन गयौ॥**

**अर्थ**—गुरू का आश्वासन प्राप्त करके मधुकर अत्यधिक आनंदित हुआ। उसका, विरह की पीड़ावश पीला (दुर्बल) तन मिलन का विश्वास होने से रक्तिम-वर्ण अर्थात् उत्तम स्वास्थ्य वाला हो गया। उसके तन में स्वस्थ रक्त का संचार हो गया।

फिर तो मधुकर ने वस्त्र बदले तथा भोजन ग्रहण किया और तत्पश्चात् गुरू के साथ मालती के घर पढ़ाने के लिए चल दिया।

**दोहा-9 :**

**मधुकर तंन न समातु है, भई मिलन की आस।**
**जांनत है अब पाइहौ, मालति पुहपु सुबास॥**

**अर्थ**—इस समय मधुकर का तन प्रफुल्लित हो गया तथा उसके हृदय में प्रिया से मिलने की प्रबल आशा हो गई थी। इस समय उसे ऐसा विश्वास हो गया था कि मैं चिर अभिलषित मालती के सुवास को ग्रहण कर पाऊँगा।

**पव़ंगम छन्द-4 :**

**मिंत मिलन की आस होत जब मिंत कौं।**
**तन मैं नाहिं समावै आनंद चित्त कौं।**
**ज्यों घंन आगम जानि, होइ सुष मोर कौं।**
**चकई चकवा चैंन होत लषि भोर कौं॥**

**अर्थ**—मीत से मिलने की आशा से मीत का हृदय प्रसन्न होता है, तब चित्त का आनंद तन में समा नहीं पाता है; अपितु वह उफन कर बाहर अभिव्यक्त होने लगता है। उसे उसी भाँति

आनन्द की प्राप्ति होती है, जिस भाँति कि घन के आगमन को जानकर मोर को सुख प्राप्त होता है। वह मयूर घनागमन पर प्रसन्नता से पुकार मचाने लगता है। मीत को अपने मीत के मिलन की आशा से जिस प्रकार का आनन्द मिलता है उसकी उपमा चकवी–चकवा (चक्रवाकी एवं चक्रवाक) को प्रातःकाल के दर्शन से प्राप्त होने वाले अमित सुख से भी उपमित की जा सकती है।

**चौपई–4 :**

**गुर तब मधुकर दय़ौ पठाइ। मालत कौं तूं जाइ पढ़ाइ।**

**सौदागर घर मधुकर आय़ौ। कह्यौ पढ़ावन गुरू पठाय़ौ।।**

**अर्थ**–गुरू ने तब मधुकर को यह निर्देश दिया कि तुम मालती को उसके घर जाकर पढ़ाया करो। ऐसा कहकर उसे मालती के घर भेज भी दिया। तब मधुकर मालती के पिता सौदागर के घर जा पहुँचा। उसने वहाँ जाकर यह कहा कि, ''मुझे, पढ़ाने के प्रयोजन से गुरू ने आज्ञा देकर यहाँ भेजा है।

**मालति आइ पढ़न तब लागी। मधुकर कौं देषत अनुरागी।**

**मधुकर बासु मालती पाई। कछु आनंद की कही न जाई।।**

**अर्थ**–मधुकर जब मालती के घर पर उसको पढ़ाने के लिए पहुँच गया, तब मालती आकर उससे पढ़ने लगी। मधुकर को समीप में देखकर वह अनुरक्त होने लगी। मधुकर ने अपनी अनुरक्त प्रिया का यौवन से सम्पूरित सुवास प्राप्त करके हृदय में अपार आनन्द प्राप्त किया।

**निसु बासुर ग़ेकै संग रहैं। देषि परसपर जुग सुष लहैं।**

**बढ़त सनेह दीप की जोति। त्यों सनेह दिन दिन बढ़ होत।।**

**अर्थ**–अब वे रात और दिन पढ़ाई के बहाने से अत्यधिक समय तक साथ–साथ रहते थे तथा परस्पर अवलोकन से सुख प्राप्त करते थे। जिस प्रकार तेल पूरी मात्रा में दीपक में भरा हो तो उसमें अच्छी ज्योति निकलती है। ठीक इसी रीति से मधुकर और मालती के हृदयों में स्नेह भरपूर था जिसके कारण से उनके तन–मन प्रेम के प्रकाश से दीप्त रहने लगे।

**दुरी रही केतक दिन बात। अंत सुनी मधुकर की मात।**

**माता कही पिता सौं बात। दहुव़नि कैं दुष उपज्य़ो गात।।**

**अर्थ**—मधुकर और मालती के प्रेम की बातें कितने ही दिनों तक तो छिपी रही किन्तु एक दिन प्रकट हो गई। तब मधुकर की माता ने उनके प्रेम की बात किसी से सुन ली। मधुकर की माता ने उसके पिता को वह बात कह सुनाई। माता और पिता के मन में उस कारण दुःख उत्पन्न हो गया।

**पिता कह्यौ ल्यौं मालति मोल। ज्यों व़ासौं अलि केरे किलोल।**
**माता कह्य़ौ न अैसी कीजै। चेरी ब्याही न अपजसु लीजै।।**

**अर्थ**—पिता ने माता के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि हम धन आदि देकर अपने पुत्र के लिए मालती को उसके पिता से प्राप्त कर लेंगे जिससे भँवरे के समान दीवाना बना हमारा बेटा मालती को पाकर उसके साथ कामकेलि करके प्रसन्न रह सकेगा। माता ने अपना ज्ञान प्रकाशित करते हुए मधुकर के पिता से कहा कि मालती तो सौदागर द्वारा रखैल (चेरी) के तौर पर रखी गई किसी माता से उत्पन्न होने के कारण चेरी है। एक चेरी के साथ विवाह करने से अपयश मिलेगा। इस कारण से आप मधुकर का विवाह उसके साथ नहीं कीजिए।

**चेरी की जो संतति होइ। उतिम साष करै नहीं कोइ।**
**बुरी ठौर जो उवत (उपजत) फूल। कोऊ हाथ न लाव़ै भूल।।**

**अर्थ**—मधुकर और चेरी का विवाह होने पर उनसे उत्पन्न सन्तान को समाज में उच्च स्तरीय 'साख' (वर्चस्व) नहीं मिल सकेगी। हमारा कुल अवनति की ओर ढलकर दुर्गति में पड़ेगा। बुरे स्थान यथा नाली, श्मशान और मल के स्थानों पर उगने वाले पुष्पों को लोग़ मंगलकारी कार्यों में उपयोगार्थ नहीं लाते हैं।

**तब सौदागर बोल्यौ अैसैं। य़ा मन फेरहिं जैसैं कैसैं।**
**याकौं कहूं संग लै जैहौं। नेह भुलाय तबहिं लै अैहौं ।।**

**अर्थ**—तब सौदागर ने मधुकर की माता से सहमत होकर इस प्रकार कहा, ''हम मधुकर का मन मालती के आकर्षण से दूर करने के लिए ऐसे उपायों का प्रयोग करेंगे जिससे वह उसे भूल जाए। मधुकर को अपने साथ में लेकर मैं कहीं परदेस में व्यापार करने के लिए चला जाऊँगा। वहाँ कुछ दिनों तक मैं इसके साथ ही रहूँगा। जब यह मालती से प्रेम की बात भूल जाएगा तब मैं इसको लेकर घर लौट आऊँगा।

**मधुप भुलाई कही यहु बात। सौदा करन कहूं हम जात।**
**तुमहूं ह्वैहौ संग हमारे। हम बदेस कौं चलहिं सकारै।।**

अर्थ—पिता ने मधुकर को भुलावे में रखकर कहा कि, ''हम व्यापार करने के लिए कहीं बाहर जायेंगे।'' हम, तुमको अपने साथ लेकर, कल प्रातः विदेश प्रस्थान करेंगे।

**सुनि यहु बात मधुप दुष पायौ। मुष तें कछु ऊतर ना आयौ।**

**उततें मालति कैं ढिंगु आयौ। पिता कह्यौ सो सब प्रगटायौ।।**

अर्थ—अपने पिता के वचनों को सुनकर मधुकर को अत्यधिक दुःख हुआ लेकिन अपने मुख से कुछ भी उत्तर नहीं दे सका। अपने घर से चलकर वह मालती के पास पहुँचा। उसने मालती को, पिता द्वारा विदेश उसको भी साथ लेकर प्रातः प्रस्थान करने के विषय में बात बताई।

**सुनत मालती रोवन लागी। मधुकर पुनि रोवत बैरागी।**

**बिछुरन लागे दोऊ मिंत। चित मैं बढ़ी चटपटी चिंत।।**

अर्थ—मालती उसकी (मधुकर) बात सुनकर रोने लगी। मालती में अनुरक्त तथा सांसारिक बातों से विरक्त हुआ मधुकर भी रोने लगा। दोनों 'प्रेमी युगल' जब बिछुड़ने लगे, तब उन्हें तीव्र चिन्ता होने लगी कि अब वे एक-दूसरे से कैसे मिल पायेंगे।

**जि(ज)ब बिछरहिं जुग मिंत सरीर। मनहुं करे द्वै करवत चीर।**

**दई न करहु मिंत द्वै न्यारे। हा हा बिछोरहु जिन द्वै प्यारे।।**

अर्थ—वे दोनों मींत बने जीव जब बिछुड़ने लगे तब इतने प्राणहीन हो गए मानो किसी ने उनके एक हुए शरीर को (करौती से) चीर डाला हो। जान कवि कहते हैं कि विधाता किन्हीं दो प्रेमियों को पृथक्-पृथक् रहने को विवश न करें। इस प्रकार एक-दूसरे से बिछुड़ने से प्यार करने वालों को अत्यन्त कष्ट सहना पड़ता है।

**दोहा-10 :**

**चलन सुन्यौ है मिंत कौ, कल न परी दिन रात।**

**पल न लगत पल पलन सौं, मलिन भयौ मनु जात।।**

अर्थ—प्रियतम के प्रस्थान की बात जानकर मालती के हृदय को न दिन में चैन रहा और न रात में ही आराम मिल सका। उसको एक पल के लिए भी सुख नहीं मिल सका; उसका मन निरन्तर उदास होता चला गया।

दोहा–11 :

प्रानपती ते जान कहि, बिछुर्यौ नांहि सुहात।
चल्यौ चल्यौ चितु फिरतु है, सुनि चलि चलि की बात।।

अर्थ–अपने प्राणों के स्वामी मधुकर के चले जाने की बात सुन करके मालती का चित्त भी अस्थिर हो गया। जान कवि कहते हैं कि प्रियतम का बिछुड़ना उसके लिए शोभाजनक नहीं रहा।

दोहा–12 :

चैन बिछोहा करतु है, सुनि बिछुरन की बात।
गव़न गव़न तें जान कहि, प्रांन प्रांन थहरात।।

अर्थ–जान कवि कहते हैं कि बिछुड़ने की बात सुनकर चैन विक्षुब्ध होने लगा। प्रस्थानार्थ–गमन से प्राणभूत–उत्तम गति वाले पवन के जाने से प्राण–पान वाली श्वास रुकने लगी थी।

दोहा–13 :

पव़न झकोरत बिरह कौं, सुनत गंव़न कौ नाव।
चित डोलत तर पत्र ज्यों, ना ठहराव़त ठांव।।

अर्थ–जाने का नाम सुनने से, विपरीत कार्य करने वाला पवन विरह की अग्नि को, झकोरों (झटकों की उद्दीप्त हवा) से प्रज्जवलित करने लगा था। चित्त भी, आशा के ठहराव के आश्रय–स्थल के कारण तरु के पत्तों के समान दोलायमान होने लगा।

दोहा–14 :

स्रव़न सुन्यों प्रीतम गव़न, चित सौं भाण्यैं सोइ।
मन की तरफनि देषि कैं, नैननि दीजै रोइ।।

अर्थ–श्रवणों ने प्रियतम के गमन (जाने) के विषय में सुना था। उन्होंने उसके विषय में चित्त को बता दिया। चित्त की चिन्ता से मन में छटपटाहट हुई। मन की छपटपटाहट के कारण वह अपनी पीड़ा को नयनों के द्वारा प्रकट करने लगी।

दोहा–15 :

मालत मधुकर आपु मैं, की करता की आंन।
दोऊ या सैंसार मैं, मिंत करैं ना आंन।।

**अर्थ**–विदाई के अवसर पर मालती और मधुकर ने अपने–अपने हृदय में विधाता में विश्वास करके शपथ ग्रहण की कि हम यह मर्यादा धारण करते हैं कि ''हम दोनों इस संसार में एक–दूसरे को छोड़कर अन्य किसी तीसरे किसी को भी (अपने मन का) मीत नहीं बनायेंगे।

**दोहा–16 :**

**बिदा भये जुग रोइ कैं, अति दुषु व्याप्यौ गात।**
**मालति अैसैं कहत है, दई होइ जिन प्रात॥**

**अर्थ**–दोनों ही रो–रोकर विदा हुए। उनके शरीरों में अत्यन्त दुःख व्याप्त हो गया। मालती तो ईश्वर से यह प्रार्थना करने लगी कि ईश ऐसी कृपा कर दें कि प्रातःकाल आवे ही नहीं, जिससे कि मधुकर सबेरा नहीं हो पाने की स्थिति में अन्यत्र प्रस्थान कर ही न सके।

**पव़ंगम छन्द–5 :**

**भोर सुन्यौ पिय़ गव़न भई तिन बाव़री।**
**कोट जतन करि चाहत रहै बिभाव़री।**
**सब उड़िगन धू हौंहि हौर ते ना हलैं।**
**सूरज नाहि प्रकासै तौ पति ना चलै॥**

**अर्थ**–मालती ने ऐसा सुना था कि सबेरा होने पर प्रियतम प्रस्थान करेगा। वह अपने आत्महित साधन के लिए, बावलों जैसी मूर्खतापूर्ण बातें सोचने लगी। वह स्त्री करोड़ों प्रार्थनाएँ करके भी अपनी चाह बनाए रखना चाहती है कि किसी प्रकार रात्रि ठहर जाये। समस्त तारे, ध्रुव तारे की भाँति, इस समय जहाँ है, जैसे हैं, उसी प्रकार अटल हो जाएँ, अपने स्थान से हिलें ही नहीं। सूरज यदि प्रातःकाल में प्रकाशित नहीं हो तो मेरा पति मधुकर (विदेश के) प्रवास के लिए प्रस्थान ही न कर सकेगा।

**दोहा–17 :**

**भोर भय़े मधुकर चल्यौ, मालति जान्यौ जीव़।**
**नैना बरसत मेह ज्यों, भीजत फाटत हीव॥**

**अर्थ**–प्रातःकाल होने पर मधुकर जब चल दिया तब मालती को ऐसी अनुभूति हुई जैसे कि मधुकर उससे बिछुड़कर नहीं जा रहा है अपितु उसका जीवन बिछुड़ रहा है। उसका हृदय विदीर्ण होने लगता है तथा नयनों से अश्रु–प्रवाह होने लगता है।

**चौपई–5 :**

**पिता गयौ संग मधुकर लाइ। सौदा करंन जितहिं चित चाइ।**

**वहु नित डोलत सौदा करत। मधुकर रोव़त मालत रटत।।**

**अर्थ**–इसके पश्चात् मधुकर का पिता उसे साथ लेकर विदेश चला गया। वह वहाँ व्यापार करने भी लगा था; साथ ही वह मधुकर का चित्त जीत लेने के लिए भी प्रवास के लिए गया था। वह मधुकर के चित्त से मालती की स्मृति को दूर करने के लिए ही–कुछ दिनों के लिए मधुकर को घर से दूर रखना चाहता था। पिता नित्य व्यापार करने के लिए घूमता–फिरता रहता था। मधुकर मालती को भूलता नहीं था।

**पिता लाज कछु ना प्रगटात। ढ़ुरि ढ़ुरि रोव़त बहु दुषु गात।**

**मधुकर कौं ऐसी विधि जात। सुनहुँ अबहिं मालति की बात।।**

**अर्थ**–वह लज्जावश पिता को अपनी इस विरहावस्था की पीड़ा के विषय में कुछ भी नहीं बताता था। वह छुप–छुप कर रोता था जिससे उसका शरीर बहुत पीड़ित होता था। मधुकर का समय तो इस प्रकार की स्थिति में व्यतीत हो रहा था। अब, मालती की स्थिति क्या थी? उसे सुनिए–मैं वर्णन करता हूँ–

**य़ेक बिलाइत कौ पतिसाहि। तिहि वज़ीर चेरनि की चाहि।**

**अव़ध नगर व़हु चेरी लैंन। आय़ौ सोधत मूरति मैंन।।**

**अर्थ**–एक विलायत (बाहरी देश) का बादशाह अयोध्या में आया हुआ था। उसकी आज्ञा की पालना में उसके वजीर (प्रधानमंत्री) को सुन्दर–सुन्दर युवतियों को चुनकर क्रय द्वारा दासियों के रूप में बनाकर बादशाह की सेवा में रखने की चाह थी। वह बादशाह के साथ अयोध्या नगर में अत्यन्त रूपवती अनेकानेक युवतियों को खोजते हुए आ पहुँचा था।

**चेरी बहुत मोल कौं आनी। पैं कोऊ मन माहिं न मानी।**

**काहू तब मालती बताई। मानस भेज वजीर मंगाई।।**

**अर्थ**–उसने धन देकर बहुत–सी दासी युवतियों को खरीद लिया था, किन्तु उनमें से कोई भी उसके मन को पूर्णतः आकर्षक नहीं लग रही थी। तब किसी ने मालती का पता बताया। वजीर ने उसके रूप का अवलोकन करने के लिए मालती को बुलवा लिया।

देषत गय़ौ वज़ीर बिकाइ। कह्यौ मोल कहु गहर न लाव़।
सौदागर वजीर मन लह्यौ। मुहर सहंस मोल उहिं कह्यौ।।

**अर्थ**—देखते ही वजीर को मालती का रूप बहुत पसन्द आ गया। उसने सौदागर से कहा कि, ''इसका मूल्य बताने में देर मत करो, हम इसको शीघ्र ही खरीद लेना चाहते हैं। सौदागर घाघ (बहुत चतुर) था, वह उस वजीर के मन की थाह प्राप्त कर चुका था। उसने मालती का विक्रय-मूल्य एक हजार सोने की मुद्राएँ बता दिया।

मुहर सहं दई प्रधांन। सौदागर लै गय़ौ अग्यांन।
मालति रूप कहा लौं कहिय़े। कोटि मुहर हूं नाहिं न लहिय़े।।

**अर्थ**—प्रधान मंत्री ने एक हजार स्वर्ण-मुद्राएँ मालती के मूल्य के रूप में चुका दी। सौदागर बिना वास्तविक मूल्य समझे अज्ञानवश उस अमूल्य मालती को विक्रय करके चला गया। जान कवि कहते हैं कि उस मालती का रूप-सौन्दर्य जिसकी विशद व्याख्या को प्रकाशित करना सहज में सम्भव नहीं है। इस कारण से उसका वास्तविक मूल्य एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ भी रखा जाए तो कम ही कहा जाएगा।

मालती भेदु मधुप पहिचान्यौं। ग्रब रौ राव परौ का जानैं।
मालति कह्यौ अग्या जो पाऊँ। तौ गुर कैं पईय़ां लगि आंऊ।।

**अर्थ**—मालती का वास्तविक मूल्य मधुकर तो बहुत दे सकता था। गर्व से भरा हुआ सौदागर और वजीर उसके मूल्य का आकलन कर ही नहीं सकते थे। मालती ने वजीर से प्रार्थना की कि, ''यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपने गुरू के चरणों का स्पर्श करके वापिस लौट आऊँ।

अग्या दई वजीर दय़ा य़ौ। इक मानस व़ा संग पठाय़ौ।
मालति गुर पग लागी आइ। अपनी बिपति कही बिललाई।।

अर्थ—वजीर को उस पर दया आ गई। उसने मालती को गुरू के चरणों का स्पर्श करने के लिए जाने की आज्ञा प्रदान कर दी और अपना एक आदमी मालती के साथ भेज दिया। मालती अपने गुरू के पास पहुँची। उसने गुरू के चरणों को स्पर्श किया तथा व्यथा की कथा विलाप के साथ कही।

जब मधुकर आव़ै तुम पास। कहिय़ौ य़है संदेसौ तासु।
जौ मालति तन तुम तैं न्यारौ। मन मैं तूं हीं बसू पिय़ारौ।।

**अर्थ**—उसने अपने गुरू से प्रार्थना की कि जब कभी मधुकर आपके पास आए, तब मेरी ओर से यह संदेश कह देना ''कि मालती का तन, तुमसे पृथक् कर दिया गया है, किन्तु मालती के मन में तो सदैव तुम ही प्रियतम के रूप में बसे रहोगे।''

**जो कोऊ मो डारै मारि। तौऊ और न करौं भतार।**

**संकट बहु तुव़ काजैं सहहौं। सील सत्त मैं निहचैं रहिहौं।।**

**अर्थ**—चाहे कोई मुझे विवश करते–करते अन्त में मार ही क्यों न डाले, किन्तु मैं किसी अन्य को अपने जीवन का भरण–पोषणकर्त्ता नहीं बनाऊंगी। मैं तुम्हारे लिए अनेक संकटों को सहन कर लूँगी। मैं अपने वचन की सत्यता के पालन के शील की निश्चित रूप से रक्षा करूँगी, भले ही शील की रक्षा में मेरे प्राण ही क्यों न निकल जाएँ।

**तुम सौं अव़ध करी मैं जोई। दई करै निरबाहौं सोई।**

**जाकौ नाहि न जीव़त बोल। ताकौ रंचक रहै न तोल।।**

**अर्थ**—मालती गुरू से कह रही है कि मैंने आपके समक्ष अपना 'प्रण' स्पष्ट बता दिया है कि मैं मरते दम तक मधुकर के सिवाय किसी अन्य व्यक्ति को जीवन का आधार स्वीकार नहीं करूँगी। इस प्रकार मरते दम तक की अवधि का वचन मैं निभाऊँगी और फिर ईश्वर से भी प्रार्थना है कि मैं अपने वचन का पूरी प्रकार से निर्वाह करने में सफल रहूँ। जिस व्यक्ति का दिया हुआ 'वचन' सत्य रूप में जीवन प्राप्त नहीं करता, ऐसे व्यक्ति का थोड़ा–सा भी मूल्य या वजन इस समाज में, संसार में, अस्तित्व में नहीं रहता है।

**दोहा–18 :**

**बचन अचल जहिं पुरष कौं, सो आयौ सैंसार।**

**बाहै बोल जाकौ चलैं, जानहु ताहि बय़ार।।**

**अर्थ**—इस संसार में ऐसे पुरुष का ही मानव के रूप में जन्म सफल है जिसके बचन कभी झूठे नहीं होते हैं। जिसका दिया हुआ बोल चालित हो जाए, जो वचन की परिपालना में स्थिर न रहकर, बहकर दूर चला जाए–उसे एक हवा के समान चंचल जाति का समझना चाहिए। उस मनुष्य का अस्तित्व शून्य समझा जाने योग्य होता है।

**पवंगम छन्द–6 :**

**मुष तें निकसै बोल सु तौ निरबाहिये।**
**ताहि बचंन की लाज जाहि यौ चाहिये।**
**चली फिरै जिह बात बात बात तिंह बात है।**
**कहत जांन कवि ताकौं कोन पत्यात है ॥**

**अर्थ**–मुख से निकले हुए स्वयं के बोल का आचरण में निर्बाह करना चाहिये। अपने बचन को निभाने के कार्य में कष्ट सहकर अपने स्वत्व की लाज बचाना आवश्यक है। जो बात–बात में झूठ बोलता है। उनकी 'बात' की साख कुछ भी अस्तित्व नहीं रखती है। वह तो हवा के समान अस्तित्वहीन होकर चाहे जिस दिशा में घूमने–फिरने वाला मनुष्य है। जान कवि कहते हैं कि ऐसे मनुष्य पर भला कौन बुद्धिमान् एवं श्रेष्ठ जाति का व्यक्ति विश्वास करेगा? अर्थात् कोई व्यक्ति उस हवा की तरह फिरने वाले का विश्वास नहीं करेगा।

**चौपई–6 :**

**मोकौं जिन करि जानहु चेरी। हौं ससि बंस जात है मेरी।**
**अैसी भई करमगति मेरी। जग मैं नांव भयौ मो चेरी॥**

**अर्थ**–वह गुरू के सामने मधुकर की माता द्वारा 'चेरी' कहकर उत्तम सन्तान उत्पन्न करने में अयोग्य कही जाने और त्यागने योग्य कही जाने के विषय में अपनी स्थिति प्रकाशित कर रही है कि, ''मुझे (चेरी) दासी जाति की मत समझिये। मैं चन्द्रवंशी क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हूँ। मैं अपने किन्हीं दुष्कर्मों के कारण जगत् में 'चेरी' कहलाती हूँ।

**जो मेरी है उत्तम जात। तौ मुहि बचन नहीं टरि जात।**
**चेरी की जानहुं यहु रीति। इत उत जित तित लावै पीति॥**

**अर्थ**–यदि मेरी उत्पत्ति उत्तम कुल में हुई है तो मैं अपने मुँह से निकले हुए वचन से–आचरण में डिग नहीं सकती हूँ।

**(नोट**–जान कवि के अनुसार उत्तम कुल की पहचान यही है कि उत्तम कुल का व्यक्ति अपने बचन से डिगता नहीं है। जो बचन से डिगता है उसे उत्तम कुल का नहीं मानना चाहिए।)

मालती कहती है कि चेरी (दासी जाति की स्त्रियाँ) ऐसे स्वभाव की होती है जो लाभ कमाने के

लिए अवसर के अनुसार प्रीति के सम्बन्ध को तत्काल बदल लेती है। दूसरों के प्रति झूठे वचनों से पुनः प्रेम जताना उचित नहीं है परन्तु चेरी जाति के लोगों को ऐसे निन्दनीय कार्य करने में लोभवश लज्जा नहीं होती है।

**य़ौं कहि रोइ डिगत उठि चली। मांनहु पव़न डुराव़त कली।**

**मालति जब वज़ीर पैं आई। उहु उठि चल्यौ संग यंह लाई।।**

**अर्थ**—इस प्रकार से आत्म—अभिव्यक्ति करती हुई वह बाला रोने के कारण से स्खलित पगों वाली होकर डगमगाती चाल से ऐसे चल पड़ी मानो पवन से कोई कली हिलाई—डुलाई जा रही हो। चलते—चलते मालती क्रेता वजीर के पास जा पहुँची। वह वजीर उसको साथ में लेकर चल पड़ा।

**देस आपुनै अग्याकारी। लै कैं आयौ मालति नारी।**

**मालति रैन दिना मुरझावै। मधुकर कहूं व़ा डिस्ट न आवै।।**

**अर्थ**—बादशाह की आज्ञा के अनुरूप वजीर मालती को लेकर अपने मूल देश में पहुँच गया। वहाँ मालती रात और दिन मुरझाती चली गई। उसको वहाँ मधुकर के सुखदायी दर्शनों का अभाव सहना पड़ रहा था।

**दुख मैं मालिति निस दिन जाति। अबहिं सुनहु मधुकर की बात।**

**सौदा करन गये हैं जहां। मधुकर पिता गयौ मरि जहां।।**

**अर्थ**—मालती के रात और दिन दुःख में व्यतीत हो रहे थे। अब, उसके प्रेमी मधुकर की अवस्था के विषय में सुनिए। मधुकर का पिता, उसको लेकर विदेश में जहाँ कहीं व्यापार करने के लिए ठहरा हुआ था, वहीं पर वह मर गया।

**बिछुर्‌यौ पिता भयौ दुषु पूत। रोव़त ज्यों पाव़स परहूत।**

**प्य़ारौं मरैं जु प्य़ारौं रोव़त। बहुरि मिलन तें से कर धोव़त।।**

**अर्थ**—पिता के मर जाने के कारण उससे बिछुड़ने पर पुत्र मधुकर को स्वाभाविक रूप से दुःख हुआ। वह उसी भांति रोने लगा जिस प्रकार पावस ऋतु में अत्यन्त दुःख से कोयल विलाप करती है। प्यारे के मरने से प्यार करने वाला प्राणी इसलिए रोता है, क्योंकि 'मरण' की अवस्था के पश्चात् वह उस मृत प्रिय से सदैव के लिए हाथ धो बैठता है।

**रोये़ हाथ कछु नहीं आवै़। कौन आपुनैं नैन गेवा़वै।**

**मधुकर उततें चल्यो उदास। आयौ़ रोव़त माता के पास।।**

**अर्थ**—मृत पिता के लिए बस रोते रहने से ही तो मनुष्य का कर्त्तव्य पूरा नहीं हो जाता। उसका कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। रोने में लगे रहने से व्यर्थ में आँखों की रोशनी भी चली जाती है। उपर्युक्त प्रकार से मन में विचार करके मधुकर विदेश से उदासी लिए हुए अपनी माता के पास (अयोध्या) में आ गया।

**मात पूत रोये़ गर लाइग (लाग)। दोऊ दूसत अपने भाग।**

**आये़ बहुत नगर के लोग। तीन द्यौंस लौं कीनौं सोग।।**

**अर्थ**—माता और पुत्र अब एक–दूसरे से गले से लगकर रोने लगे। इस समय वे दोनों अपने अपने भाग्य को दोष दे रहे थे कि, ''हमारे दुर्भाग्यवश, वे मृत हुए हैं।'' उनके घर पर सगे–सम्बन्धियों के अतिरिक्त नगर के विभिन्न समुदायों के बहुत से लोग आये। तीन दिन तक शोक के लिए बैठक रही।

**मधुकर गयौ़ गुरू कैं बार। गुर रोयौ़ इंहं बदन निहार।**

**मधुकर कहै गुरू कहि मोकौं। रोवत है सु कहा दुष तोकौं।।**

**अर्थ**—इसके बाद उठकर मधुकर गुरू के पास गया। गुरू भी इसके मुख का निरीक्षण कर रोने लगा। मधुकर ने रोते हुए गुरू से पूछा कि, ''आपको ऐसा कौन–सा दुःख सहन करना पड़ रहा है, जिसके कारण से आप रो रहे हैं? ऐसा दुःख यदि कोई है, तो आप मुझको बता दीजिए।

**भाषी गुरू मालती बात। सुनि उपज्यो दुषु मधुकर गात।**

**पर्‌यौ भौम पर षाइ पछार। बेसुधि भयौ़ कछु न संभार।।**

**अर्थ**—गरू ने मालती की पूरी बात बता दी। उसकी बात सुनकर मधुकर के तन–मन में, दुःख उत्पन्न हो गया। वह विषाद के कारण पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ा। उसे कोई चेतना न रही अर्थात् वह अपने आपको संभाल कर नहीं रख सका।

**चल्यौ तब ग़ुर कह्यौ संदेसौ। मधुकर मन बहु बढ़्यौ अंदेसौ।**

**मालत कीनौ हौ जु बषांन। सो सभ सुन्यौ मधुप दै कांन।।**

**अर्थ**—जब मधुकर कुछ समय पश्चात् चेतना प्राप्त करके अपने घर को वापिस जाने के लिए

तैयार हुआ, तब उसके गुरू ने मालती का उसके लिए दिया गया 'संदेश' कहकर सुनाया। मधुकर के मन में, मालती की कुशलता के लिए आशंका उत्पन्न होने लगी। मालती ने जो भी बातें गुरू को विस्तारपूर्वक बताई थी, उन सभी बातों को गुरू से मधुकर ने बड़े ध्यानपूर्वक सुना।

**दोहा–19 :**

**मधुकर माता पैं गयौ, कह्यौ विदा मुहि देहु।**
**मालति कौं सोधति फिरौं, बंन बंन उपज्यौ नेहु ।।**

**अर्थ**–मधुकर अपनी माता के पास पहुँचा। उसने कहा–''मुझे विदा दीजिए। मैं अब मालती को ढूँढता हुआ जाने कहाँ–कहाँ जाऊँगा। मेरे हृदय में मालती के लिए प्रीति उत्पन्न हुई थी, वह मूर्त्त रूप धारण कर सम्मुख आ गई है, अब मुझे उससे स्नेह है।

**पवंगम छन्द–7 :**

**जाकौ उपज्यौ नेहु सु बरज्यो ना रहै।**
**सिष न समावति स्रवन जितौ कोऊ कहै।।**
**नैनहि कौं बिन प्रीतम और न सूझि है।**
**मन फेर्‌यौ ना फिरै कितौ कोऊ जूझि है।।**

**अर्थ**–जिसको किसी के प्रति स्नेह हो जाता है, उसे यदि रोका जाये जो वह रूका नहीं रह सकता है। ऐसे प्रेमी के हृदय में 'शिक्षा' प्रभाव नहीं डालती है, भले ही उसके कानों में, कोई शिक्षा के कितने ही वचन सुनाये। उस प्रेमी के नयनों को अपने प्रियतम के बिना अन्य कोई वस्तु (रूचि व ध्यान के अभाव में) दिखाई नहीं पड़ती है। ऐसे अनुरक्त प्रेमी का मन फिर किसी के कितने ही उद्यम करने पर भी उस प्रिय से हटा कर अन्य किसी के प्रति लगाना असम्भव होता है।

**चौपई–7 :**

**जौ तुम मोकौ बिदा न देहु। मोहि मारि कैं हत्या लेहु।**
**अलि मालति बिनु जीवति नांहिं। यह निहचैं जानहुं जिय मांहिं।।**

**अर्थ**–मधुकर ने अपनी माता से कहा कि यदि तुम मुझको मालती की खोज करने के लिए

सहर्ष बिदाई नहीं दोगी तब फिर घर में रखकर मुझे प्राणों से रहित करने में हत्या का पाप तुमको प्राप्त होगा। मैं मालती को हृदय से प्यार करता हूँ। मालती के बिना मेरे जीवन की क्रियायें सहज रूप से चल नहीं सकेंगी, यह बात तुम अपने हृदय में निश्चित रूप से धारण कर लो।

**माता कह्यौ रहै ना केहूं। हौं याकौं बरजौं कत ये हूं।**
**बिदा रोइ कैं मधुकर कीनें। रतन अमोलक दस उहिं दीनें॥**

**अर्थ**—माता ने विवेकपूर्वक विचार किया कि यह किसी भी प्रकार से रोकने पर भी, यहाँ सामान्य रूप से रहेगा नहीं, तब फिर मैं इसको किसलिए रोकूँ। मैं व्यर्थ में कोई प्रयास क्यों करूँ। माता ने हँसी–खुशी के साथ मधुकर को घर से विदाई दी। माता ने विदाई के समय 10 (दस) मूल्यवान् रत्न मधुकर को आवश्यक खर्च के लिए प्रदान कर दिए।

**मधुकर चल्यौ न लाई गहर। आयौ देस मावरा बहर।**
**रहत हुती मालति जिहं गांव। आयौ मधुकर वाही ठांव॥**

**अर्थ**—घर से प्रस्थान करने के पश्चात, मधुकर अविलम्ब मावरा–बहर (बहरीन) देश में पहुँच गया। मालती जिस गाँव में रहती थी, उसी गाँव में मधुकर पहुँच गया।

**नीके कपरे अंग बनाइ। सभा उजीर मधुप नित जाइ।**
**उन लोगन सौं कीनी यारी। सबकौं लागै प्यारौ भारी॥**

**अर्थ**—मधुकर अपनी वेश–भूषा आदि अच्छी बनाकर उस मालती के क्रेता (स्वामी) वजीर (प्रधानमंत्री) की सभा में नित्य जाने लगा। मधुकर ने अपने सद्‌गुणों के प्रकाशन द्वारा वजीर की सभा में आने वाले अन्य बहुत से लोगों से मित्रता कर ली। वह सभी के लिए प्यारा मित्र बन गया।

**येक मास यह भांति बिहायौ। मालति भेदु कछू नहीं पायौ।**
**येक द्यौंस रोवति इक चेरौ। आयौ है मधुकर कैं नेरौ॥**

**अर्थ**—उसने एक मास तक का समय मेल–जोल बढ़ाने में उसी प्रकार से व्यतीत कर दिया; किन्तु उसे मालती के विषय में आवश्यक जानकारी प्राप्त नहीं हुई। एक दिन वजीर के महल में रहने वाला दास (चेरा) जो मधुकर का मित्र था, उसके पास आया।

**मधुकर पूछ्यौ कहि द्यौ भाई। कत रोवत मैं बात न पाई।**
**चेरै कह्यौ बात सुनि मेरी। मालति है उजीर कैं चेरी।।**

**अर्थ**–मधुकर ने उस दास से पूछा कि भाई! तुम मुझको वह सब कारण तो बता दो जिसकी वजह से तुम रोते हो। तुम्हारे रोने का कारण मैं प्रत्यक्ष रूप से समझ नहीं सका हूँ। तब चेला ने मधुकर से कहा कि मेरी कठिनाई सुनो इस वजीर की एक मालती नाम की चेरी (दासी) है।

**उहु वजीर कौ कह्यौ न करै। रसु की बात कहे तें लरै।**
**बहुत उजीर करै मनुहार। मालति रंचक करै न प्यार।।**

**अर्थ**–वह वजीर के अनुकूल रहकर सेवा–चाकरी नहीं करती है। वजीर जब मालती से प्यार भरी बातें करने के लिए कहता है तब वह उससे झगड़ा कर देती है। वजीर मालती को अनेक प्रकार से मनाता है, तब भी मालती उससे तनिक–सा भी प्यार करने को तैयार नहीं होती है।

**झुक्यो आज बहु आग्याकारी। कहत नारि हौं मालति नारी।**
**कह्यौ गरै में फांसी डारि। लटकांवहु अब डारहुं मारि।।**

**अर्थ**–आज वह बादशाह का आज्ञाकारी वजीर अपने मनोरथ के विफल रहने के कारण निराश हो गया और उसने यह आज्ञा दे दी है कि, ''यह मालती मेरा कहा नहीं मानती है इसलिए इसे मार डालूँगा।'' उसने आदेश दिया है कि इसके गले में रस्सी से फाँसी का फंदा (पाश) डाल कर व लटका कर मार डालो।

**सुनत बात मुहि प्रान दयाये। तातै नैना जल भरि आये।**
**मधुकर सुनत बहुत दुःख भयौ। गिरत परति उठि बन मैं गयौ।।**

**अर्थ**–चेला मधुकर से कह रहा है कि वजीर की वह बात सुनकर मुझे मालती के प्राणों को बचाने के लिए दया आ गई; इसी कारण से मेरे नेत्रों में आँसू भर आये। चेला के मुख से ऐसा सुनकर मधुकर बहुत दुःखी हो गया, जैसे–तैसे चलकर वह बन में पहुँचा।

**फांसी बांधि रूंष सौं लटक्यौ। टूटि पर्‌यौ धर कहूं न अटक्यौ।**
**होइ अचेत चेत फिरि भयौ। मधुकर रजरम (जनम) लह्यौ है नयौ।।**

**अर्थ**–वह गले में रस्सी बाँधकर अर्थात् 'फांसी' लगाकर पेड़ पर लटक गया। तभी फाँसी वाली रस्सी के टूटने से उसका समूचा शरीर धरा पर आकर गिर पड़ा और गिरने के समय वह

कुछ समय के लिए चेतना–शून्य होने के पश्चात् उसने पुनः चैतन्य प्राप्त कर लिया। इस प्रकार मधुकर ने एक बार तो मालती के प्रेम में प्राण त्यागकर, ऐसी विधि से पुनः नया जन्म प्राप्त कर लिया।

**जान्यों मालति ना मरि गई। ताही तैं हौं बाच्यौ दई।**
**उत तें उठि कै डेरै आयौ। पैं मन डोलत है भरमायौ।।**

**अर्थ**–उसे हृदय में ऐसा विश्वास हो गया कि मालती मरी नहीं है, इसी कारण से विधाता ने मुझे जीवित रखा है। उधर से उठकर वह मालती के उस गाँव में अपने निवास–स्थल पर आ गया; किन्तु उसका मन तर्क–वितर्क की ऊहापोह से भ्रमित हो रहा था।

**दोहा–20 :**

**मधुकर सभा उजीर की, गयौ लये चितु चिंत।**
**उहु चेरौ फिरि डिठ पर्‌यौ, पूछी बातैं मिंत।।**

**अर्थ**–वहाँ पहुँचकर मधुकर मालती के संबंध में चिन्ता करता हुआ वजीर की सभा में गया। उसे वही चेला वहाँ दिखाई पड़ गया। तब मधुकर ने अपनी प्रियतमा के विषय में उससे जानकारी ली।

**चौपई–8 :**

**चेरी जीवत आहि कि नाहिं। कहा होइ निबरी बा माहिं।**
**चेरै भाष्यौ जीवत आहि। चाहत है उजीर बहु ताहि।।**

**अर्थ**–मधुकर ने पूछा कि वह चेरी जीवित है अथवा नहीं ! उसके प्रति, अब वजीर का व्यवहार किस प्रकार का है। वह आपदाओं से मुक्त हुई अथवा नहीं! चेला ने बताया कि वह चेली जीवित है। उसको वजीर बहुत अधिक पसन्द करता है।

**सुनत बात मधुकर सुष भयौ। मन कौ दुष सबही मिटि गयौ।**
**पातसाह बतियां सुनि पाई। चेरी इक उजीर कैं आई।।**

**अर्थ**–मालती के जीवित बच जाने की बात चेला से सुनकर मधुकर के चित्त में सुख उत्पन्न हो गया। उसके अनिष्ट की आशंकाओं से त्रस्त मन का दुःख दूर हो गया। बादशाह के कान में भी यह बात पड़ गई कि वजीर के यहाँ कोई विशिष्ट प्रकार की चेली (चेरी) आ गई है।

**ताकौ मालति कहियत नांम। रूप बास प्रगटी अभिरांम।**
**निकट न आवन दै परधांन। बहुत रूप परषत है मान।।**

**अर्थ**—उसका नाम 'मालती' है तथा वह मनोहर है। उसका अंग-प्रत्यंग सुन्दर है। यह भी सुना है कि वह रूपवती प्रधानमंत्री को अपने पास नहीं आने देती है। सही ही है कि जो रूपवती होती हैं, वे अपने मान-मनुहार की परीक्षा इसी प्रकार किया करती हैं।

**पातसाहि परधांन बुलाइ। कह्यौ मालती देहु पठाइ।**

**वामैं रूप बहुत सुनि पायौ। तातैं मेरौ ज्यो ललिचायौ॥**

**अर्थ**—बादशाह ने प्रधानमंत्री (वजीर) को अपने पास बुलवाकर आज्ञा दी कि—''मालती को मेरे पास भेज दो।'' उस स्त्री में रूप-सौन्दर्य अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है, ऐसा मैंने सुना है। उसके अतिशय रूप की प्रशंसा सुनकर मेरा मन उसको प्राप्त करने के लिए ललचा उठा है।

**करि तसलीम कह्यौ परधांन। हौं तुम पर द्यौं बलि बलि प्रांन।**

**डेरैं आयौ अग्याकारी। बहुत भांति मालती संवारी॥**

**अर्थ**—प्रधान ने कहा—''जो भी आपकी आज्ञा हो, मैं सिर पर धारण करता हूँ। मैं आप पर अपना सब कुछ अर्थात् प्राणों का भी बलिदान करने को प्रस्तुत हूँ। वह आज्ञापालक वजीर अपने भवन में आया। उसने मालती को बादशाह की सेवा में भेजने के लिए, भली-भाँति शृंगार से युक्त कर दिया।

**पातसाह कैं पास पठाई। बन ठनिं कैं मंदिर मैं आई।**

**देषत मग्न भयौ पतिसाहि। उपजी बहुत मालती चाहि॥**

**अर्थ**—उसे (मालती को) वजीर ने बादशाह के पास भेज दिया। वह बन-ठन करके बादशाह के महल में आ गई। उसे देखते ही बादशाह उसके रूप-सौन्दर्य पर आसक्त हो गया। उसके हृदय में मालती के रूप रस का पान करने की चाह उत्पन्न हो गई।

**पातसाह पूछ्यौ सत भाषि। कछु मालती दुरी न राषि।**

**तैं काहू आलिंगन दयौ। काहू पुरष तेरौ रसुलयौ॥**

**अर्थ**—बादशाह ने उससे पूछा कि हे मालती! तुम मुझसे सही-सही अपने विषय में पूरा परिचय दे दो और कुछ भी छिपाकर मत रखो। ''क्या तुमने किसी भी पुरुष को आलिंगन किया है? क्या किसी पुरुष ने तेरे साथ सम्भोग किया है?''

**मालती कह्यौ दुहाई रांम। मोतें नाहिं भयौ यहु कांम।**
**हौं अपनौं रसु पुरष न देत। काहू लयौ न अब को लेत।।**

**अर्थ**–मालती ने कहा कि मैं भगवान् राम की शपथ खाकर यह सत्य बता रही हूँ कि–''मैं ऐसा कार्य नहीं कर सकी हूँ। मैं किसी पुरुष को अपने साथ संभोग कार्य नहीं करने देती हूँ। किसी भी पुरुष ने मेरे सम्भोग का रस अब तक प्राप्त नहीं किया है और अब भी कोई भी पुरुष मेरे संभोग का सुख प्राप्त नहीं कर सकेगा।

**हौं मालती मनुषन मैं नांहिं। अलि बिनु और बसु लै नांहिं।**
**सीत सत्त मैं ज्यो पग धरिहै। ना डरिहै ना लालचु करिहै।।**

**अर्थ**–मैं वह 'मालती' विशेष हूँ जिसको कोई भी अन्य पुरुष केवल एक सच्चे प्रियतम को छोड़कर, वश में नहीं ले सकता है। जो नारी 'शील' (मर्यादा) और श्रेष्ठ 'सत्त्व' की रक्षा के कर्त्तव्य–मार्ग पर प्राण–पण से चलने की अभ्यासिनी है, वह न तो किसी भी क्षुद्र कामना की पूर्ति के लोभ से विचलित हो सकती है और न ही वह किसी भी, मृत्यु आदि की घोर पीड़ा के डर से, अपने शील एवं शुद्ध सत्त्व के मार्ग से विचलित हो सकती है।

**सती न काहू बदै निसंक। जैसौ राजा तैसौ रंक।**
**चिता चिंता उपजी पतिसाहि। पैं कछु ऊतर दयौ न ताहि।।**

**अर्थ**–सती स्त्री किसी पर–पुरुष से बात करने में भी रूचि नहीं लेती है। वह बात करने में भी मर्यादा–त्याग के प्रति आशंकित रहती है। सती स्त्री के लिए अपना रंक प्रियतम भी राजा के समान मूल्य वाला होता है। बादशाह के मन में चिन्ता उत्पन्न हो गई किन्तु उसने मालती से कोई बातचीत नहीं की।

**सौंपी मालति धाइ बुलाइ। दै सयान वाकौं लै आइ।**
**सात द्यौं (स) दै बुधि या नारि। मेरै ढिंगु तब लाव संवारि।।**

**अर्थ**–बादशाह ने अपने रनिवास की एक धाय को बुलाया जो चेलियों को प्रेम–प्रीति एवं काम–कलाओं का प्रशिक्षण देने में प्रवीण थीं। फिर बादशाह ने कहा कि मैं तुन्हें मालती को सौंप रहा हूँ, इसको समझदारी की बातों का प्रशिक्षण देकर पुनः मेरी सेवा में, उपस्थित कर देना। बादशाह ने उस धाय को निर्देश दिया ,कि इस नारी को आवश्यक (कहानियां आदि सुनाकर, विभिन्न चित्र दिखाकर, पशु पक्षियों की काम–क्रीड़ाओं के प्रसंग दिखाकर) बुद्धि

देकर राजमहल में गोष्ठी आदि के अनुरूप सजावट के साथ, सात दिवस में पुनः सही, अनुकूल–रूप में मेरे सम्मुख लाकर उपस्थित कर देना।

**दोहा–21 :**

**धाइ मालती लै गई, मर्दन करी सनेह।**
**नीके आभूषन सजे, दमकनि लागी देह॥**

**अर्थ**–धाय मालती को अपने साथ ले गई। उसने उसके शरीर पर विविध प्रकार के उबटन आदि से मर्दन किया, तेल लगाया। इस प्रकार सुन्दर आभूषणों से मालती के समस्त अंगों की शोभा बढ़ गई।

**पवंगम छन्द–8 :**

**रूपवंति तिय तापर भूषन साजि है।**
**जोत जोत मै होत सु अधिक बिराज है।**
**कुंकुम अंबर चंद उजारी लाजि है।**
**नागनि लागी पंष कहा कोऊ भाजि है॥**

**अर्थ**–रूपवती नारी पर अलंकार और भी शोभा बढ़ाने वाले हो जाते हैं। शरीर के अंगों की ज्योति अलंकारों के रत्नों की ज्योति से मिलकर और अधिक चमकीली हो गई। कुंकुम माथे पर लगा हो तो नारी के माथे की शोभा अम्बर में उज्ज्वलता से परिपूर्ण चन्द्रमा से बढ़कर हो जाती है। रूपवंती नारी तो, वैसे ही रूप से मोहित कर देने वाली होती है। यदि वह श्रृंगार भी धारण कर ले तो वह द्विगुणित रूप–शोभा से, बेसुध बनाने की क्षमता धारण कर लेती है। इसी बात को 'जान कवि' अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि वह रूपवती नारी तो मान लीजिए कि कोई नागिन है जो पास आयेगी, तब कहीं डसने में सफल हो सकेगी, किन्तु विभिन्न अंगराग लगाये और अलंकारों को धारण किए हुए कोई सुन्दरी तो पंख लगी नागिन के समान शीघ्र पहुँचकर डसने में समर्थ हो जाती है।

**चौपई–9 :**

**मधुकर सुनि पाइ यहु बात। पातसाह परजै दिन रात।**
**उन लोगनि सौं कीनी यारी। जानत बात सुनौ कछु प्यारी॥**

**अर्थ**—मधुकर को जब यह पता लग गया कि अब मालती बादशाह के महल में रहती है, तब उसने बादशाह के यहाँ, रात–दिन जाना प्रारंभ कर दिया। तत्पश्चात्, उसने महल के ऐसे लोगों को अपना मित्र बना लिया जो मालती तथा बादशाह के विषय में आवश्यक जानकारी समय–समय पर लाकर दे सकते थे। उन लोगों से मालती के विषय में समाचार मिलने लग गए थे।

**धाइ मालती बहुत संवारी। बाढ़ी जोत जोत मैं भारी।**
**जबहि सातवी रैन लषाई। तबहिं धाइ मालति लै आई।।**

**अर्थ**—धाय ने मालती की ऐसी संभाल कर दी कि उसका रूप, सौन्दर्य एवम् शृंगार के साधनों के प्रभाव से और भी अधिक निखर गया। जब सातवीं रात्रि का समय आया तब धाय मालती को लेकर बादशाह के समक्ष उपस्थित हो गई।

**हेरत हीं रीझ्यौ छत्रपति। मालति चित मैं आई अति।**
**पातसाह बहु प्यार जनायौ। पैं मालति मन नाहिं मिलायौ।।**

**अर्थ**—मालती को सजे–सँवरे रूप वेश में देखकर बादशाह उस पर रीझ गया। उसके हृदय ने मालती को बहुत पसन्द किया। बादशाह ने मालती के प्रति अत्यधिक प्रीतिपूर्वक सुन्दर व्यवहार किया किन्तु मालती ने उससे मन नहीं मिलाया।

**गई निहोरत सिगरी रैंन। मालति ना देष्यौ भरि नैन।**
**येक बरष या भाँति बिहायौ। छत्रपती कौ मन न मनायौ।।**

**अर्थ**—बादशाह ने पूरी रात–भर अनुनय विनयपूर्वक प्रेमदान की याचना की किन्तु मालती ने उसकी तरफ प्यार से एक बार देखा तक नहीं। पूरे एक वर्ष तक मालती अपने ऐसे ही व्यवहार पर अडिग रही। उसने बादशाह के मन की इच्छा को पूरा नहीं किया।

**पातसाह बहु करे उपाइ। मालति केहूं हाथ न आइ।**
**जौ बल करिकैं केल रचाइ। तौ वहु जीभ षांडि मरि जाइ।।**

**अर्थ**—बादशाह ने अपने प्रति प्यार उत्पन्न करने के लिए बहुत से उपाय किये किन्तु मालती बादशाह के वश में नहीं हो सकी। बादशाह बलपूर्वक उसके साथ संभोग क्रिया नहीं कर रहा था। उसका कारण यही था कि यदि बादशाह उसके साथ बलपूर्वक काम–क्रीड़ा करता तो मालती अपने प्राणों को खण्डित कर देती अर्थात् वह मर जाती।

येक द्यौंस पतिसाहि रिसायौ। मालति कौं मारन कौं धायौ।
हाथ माहिं नागी करवार। चाहत काटौ नारी नार।।

**अर्थ–**एक दिन बादशाह को क्रोध आ गया। वह मालती को मार डालने के लिए दौड़ पड़ा। बादशाह के हाथ में म्यान से बाहर निकली हुई नंगी तलवार थी। वह इस नारी की गर्दन काट देना चाहता था।

धाइ आइ परि बीचि छिड़ाई। करि उपगार मारत उहुं ज्याई।
इक चेरौ हौ मधुकर यार। तिन यहु सगरौ दयौ बिचार।।

**अर्थ–**तब ही धाय आ गई। उसने बीच में प्रयत्न करके मालती की जान बचा ली। धाय ने बादशाह को समझाया कि पहले तो इस पर उपकार किया और अब मार डालना चाहते हो। क्या यह ईश्वर के द्वारा सृष्ट जीव नहीं है? उस भवन में एक चेरा आया–जाया करता था। जो मधुकर का मित्र था। उसी ने मधुकर को मालती के सम्बन्ध में घटित हुई ऐसी घटनाओं का पूर्ण विवरण बताया।

कहा भयौ जौ धाइ उबारी। आज काल्ह जानहु उंहु मारी।
बहुरि येक दिन देष्यौ मधुकर। चेरा वहै लये करवार।।

**अर्थ–**चेरा ने यह भी कहा कि उस धाय ने उस अवसर पर पहुँच कर जो बचा भी लिया तो इससे कोई प्रयोजन स्थायी रूप से तो हल हो नहीं गया है। अब फिर से बादशाह मालती को आज या कल कभी भी क्षुब्ध होकर मार डालेगा। इसके पश्चात् दुबारा कभी एक दिन मधुकर ने देखा कि उसका मित्र चेरा हाथ में तलवार लिए हुए है।

धांनक येक संग तिंह जात। निकटि होइ अलि पूछी बात।
कह्यौ आज पतिसाहि रिसाइयौ। धांनक मारंन काज बुलायौ।।

**अर्थ–**उसके साथ एक जल्लाद (धांनक) भी जा रहा था। मधुकर ने उसके समीप जाकर पूछा कि आज क्या खास बात है? तब चेरा ने बताया कि आज बादशाह मालती से कुपित हो गया है और मालती को मार डालने के लिए इस जल्लाद (धांनक) को बुलाया है।

मधुकर षाई सुनत पछार। घरी येक कौं भई संभार।
मालति बिपति सुरति चितु आवै। षिंन सु चेत षिंन चेत गंवावै।।

**अर्थ**–यह सुनकर मधुकर मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर एक मिनट में ही उसे चेत हो गया और अपने आपको संभाल लिया। मधुकर के चित्त में अब मालती की विपत्ति की स्मृति व्याप्त हो जाती थी, जिसके कारण से वह क्षण भर में तो अचेत और पुनः अगले ही क्षण अपने को संभाल लेता था।

**मिंत बिछोह सह्यौ नहीं जाइ। मधुकर भयौ मरन कैं चाई ।**
**कबहूँ कहै पहिलैं मरि जैंहौं। कबहुं कहै सुनि कैं जिय दैहौं ।।**

**अर्थ**–ऐसी अवस्था में प्रिय का बिछुड़ना उसके लिए असहनीय हो रहा था। मधुकर के मन में मरने की इच्छा होने लगी। अब स्थिति यह हुई कि मधुकर के मन में तर्क–वितर्क उठने लगे। कभी तो वह सोचता था कि मालती के मरने से पहले ही मैं मर जाऊँ और कभी वह ऐसा सोचता था कि यदि मैं मालती के मर जाने की खबर प्राप्त कर लूँगा, तब मैं भी प्राणों को त्याग दूँगा।

**दोहा–22 :**

**मधुकर बैठ्यौ रोइ है, हाथ लयें जमधारि।**
**मुई सुनौ जौ मालती, मरौं पेट मैं मार।।**

**अर्थ**–अब मधुकर बैठा हुआ रो रहा है। उसने अपने हाथ में जमधर (विशेष प्रकार की एक कटार) धारण कर ली है। वह ऐसा विचार कर चुका है कि यदि मैं मालती की मृत्यु के विषय में समाचार पाऊँगा, तब मैं भी अपने पेट में जमधर मार कर अपने प्राणों को त्याग दूँगा।

**चौपई–10 :**

**धानक चेरा घर मैं भये। मारन मालती नेरैं गये।**
**देषत ही तनया पतिसाह। वाकै चित दी दया इलाह।।**

**अर्थ**–वह वधिक (धांनक) एवं चेरा बादशाह के उस भवन में प्रविष्ट हो गए। तत्पश्चात् वे मालती को मारने के लिए उसके समीप गये। बादशाह की पुत्री यह सब देख रही थी। तुरन्त उसके चित्त में इलाही ने दया उत्पन्न कर दी।

**उन तब लीनी आइ छिड़ाइ। लई मांगि छत्रपति पैं जाइ।**
**पिता मालती तनिया दीनी। उन उहु बहुत प्यार करि लीनी।।**

**अर्थ**—दया करके उसने मालती को मारने वालों से मुक्त करवा लिया और बादशाह से मालती को अपने लिए माँग लिया। बादशाह ने अपनी पुत्री को वह मालती दे दी। पुत्री ने उसे बहुत प्रीति के भाव के साथ प्राप्त कर लिया।

**धांनक चेरा बाहर आये। मधुकर सौं सब भेदु जनाये।**
**मधुकर फूल्यौ अंग न माइ। करी बधाई डेरैं जाइ॥**

**अर्थ**—धांनक (वधिक) और चेरा जब राजभवन से बाहर आये तब उन्होंने मालती और बादशाह की पुत्री आदि की उपर्युक्त प्रकार की समस्त घटनाएं मधुकर को बता दीं। मधुकर इन आशाजनक समाचारों से अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने उनको अपने निवास पर भली प्रकार से बधाइयाँ दीं।

**उहीं रैन तनिया छत्रपति चली। साहु रै करि करि हित चितु भली।**
**ब्याही ही यह तुरकसतान। तितकौ चित सौं कर्‌यौ पयान॥**

**अर्थ**—उसी दिन रात्रि को ही बादशाह की पुत्री मायके से विदा होकर अपने सास–ससुर के घर के लिए चल दी। उसने मालती को भी भली रीति के साथ अपने संग में लिवा लिया। यह शहजादी तुर्किस्तान में ब्याही थी। उसने सीधे तुर्किस्तान पहुँचने का मानस बनाकर मावरा बहर से प्रस्थान किया।

**मालति पुनि संग लीनी लाइ। येक अंबारी बैठी जाइ।**
**मधुकर हूं सुनि पाई बात। उठि कै संग चल्यौ अधरात॥**

**अर्थ**—मालती को भी वह अपने साथ में लेकर चल दी। ऊँट की पीठ पर कसी एक सुंदर अंबारी में वे दोनों एक साथ बैठकर यात्रा करने लगीं। मधुकर ने अर्द्धरात्रि के समय उनके इस प्रकार प्रस्थान करने के समाचार को सुनकर स्वयं ने भी अनुसरण में प्रस्थान कर दिया।

**चेरौ वहै सुता संग दीनौं। मधुकर देषि बहुत हितु कीनौं।**
**पहुंचै देस आपुने आइ। करी बधाई घर मैं जाइ॥**

**अर्थ**—सौभाग्य से बादशाह ने मधुकर के मित्र उस दास को ही शहजादी के साथ भेज दिया था। उस दास ने मधुकर को साथ में चलते देखा तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और वह सभी प्रकार से मधुकर की सहायता करने लगा। शहजादी (राजकुमारी) अपने घर तुर्किस्तान पहुँच गई। घर पहुँच कर उसने विधाता की कृपा के लिए आभार व्यक्त करते हुए सबको बधाई दी।

**बहुत हेतु सौं मिल्यौ भतार। छिंन छिंन करिहै प्यार अपार।**
**येक द्यौंस मालति उनि हेरी। दिस्ट आपुनीं तिय सौं फेरी।।**

**अर्थ**—पति ने राजकुमारी का बहुत स्वागत सत्कार किया। वह उसे क्षण-क्षण प्यार करता रहा। एक दिन राजकुमारी के पति ने मालती को देखा। उसको ऊपर से नीचे तक निहारने के बाद वह मालती पर रीझ गया। अब उसने अपनी धर्मपत्नी के प्रति अनुराग समाप्त कर दिया और वह मालती को प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठा था।

**मालति कौं ताके जब आवै। अपनी तिय कौं मुषु न लगावै।**
**मधुकर येक द्यौंस अति गयौ। चेरौ तक्यौ सावकौ भयौ।।**

**अर्थ**—राजकुमारी का पति जब भी राजकुमारी के भवन में आता तो वह मालती को ही बड़े अनुराग के साथ देखता था। उसने अपनी धर्मपत्नी राजकुमारी से प्रेमालाप करना त्याग दिया। मधुकर एक दिन उधर गया जहाँ मालती राजकुमारी के भवन में रहती थी। तब उसे उसका मित्र मिला। उन दोनों का प्रत्यक्ष साथ-साथ मिलना हो गया।

**मधुकर कह्यौ कहा दुषु तोहि। अपनी बिपति सांचु कहु मोहि।**
**चेरै मालति बात बषांनी। दोऊ द्रिग भरि आये पानी।।**

**अर्थ**—मधुकर ने चेरा से पूछा कि अब तुम अपनी विपत्ति के विषय में सच-सच बताओ कि अब क्या दुःख तुम्हें सहन करना पड़ रहा है। तब चेरा ने राजकुमारी के पति के मालती पर आसक्त हो जाने की बात बताई और भावी संकट की गम्भीरता से दोनों की आँखों में आँसू भर आये।

**चेरी सौ करिहै उहु हेत। रांनी नांव न कबहूँ लेत।**
**रांनी अति पछितावत आहि। यहु मैं मारन दई न काहि।।**

**अर्थ**—अब रानी के पति को चेरी मालती से ही प्रयोजन है। अतः वह रानी से कोई भी प्रेमपूर्ण सम्बन्ध नहीं रखता है। अपने पति की इस अनीति को देखकर रानी अत्यन्त पछतावा करती है। वह कहती है कि मैंने दया क्यों की। मैंने इसे वधिक के हाथ से मर क्यों नहीं जाने दिया। दया के कारण इसको मैं अपने साथ स्वयं नहीं लाती तो आज मुझे पति की उपेक्षा का भारी कष्ट सहन नहीं करना पड़ता।

यहै कहत मो मोहि न ढंग। हौं याकौ कत लाई संग।

मै लै वन मैं आगि लगाई। बिछुरि गई अब जै न बुझाई।।

**अर्थ**–वह पछतावा करते समय यही कह रही थी कि मैंने ही अनुचित ढंग से कार्य चुन लिया। मैं इसको लेकर क्यों आई? मालती रूपी अग्नि से मैंने अपने घर रूपी वन में आग लगा ली है। अगर मैं इस आग को बुझा नहीं सकी तो अपने पति को खो दूंगी।

**दोहा–23 :**

मै यहु तब समुझी नहीं, अब पछतावति काहि।

करम रेषि नाहिन मिटै, दोस दीजिये काहि।।

**अर्थ**–राजकुमारी कह रही है कि अब पछतावा करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। मैंने पूर्व में ही अज्ञानता से विचार कर इसको बचाने और साथ में ले आने की गलती स्वयं की स्वतंत्र बुद्धि से की है। यह सब कर्मों के परिणाम स्वरूप फलित हुआ है। मैं दूसरे किसी को भी व्यर्थ में दोष (उत्तरदायित्व) क्यों दूँ।

**पवंगम छन्द :**

कोट जनत तें मिटत न रेषा करम की।

जो धोवत को पैठि तरंग न धरम की।

जीवत होइ न दूरि भई संग जरम की।

बात न पावै कोऊ करता करम की।।

**अर्थ**–कर्मों के परिणामस्वरूप फल मिलना अनिवार्य है। धर्म (व्यवहार) के शुभ फलों को एकत्रित करने वाली जल की तरंगों से पूर्व में किये गये अधर्मों (अनीतिपूर्ण व्यवहारों) की कालिमा के रंग वाले 'अशुभों' को धोया जा सकता है। जो विशेषताएँ जन्म के साथ प्राणी लेकर उत्पन्न होती है वह विशेष बातें उसमें रहती ही हैं। कर्म की गति को पहचानना सामान्यतः किसी भी व्यक्ति के लिए कर्मों के कार्य–परिणाम किस रूप में कब? कहाँ? कितने? कैसे? फलित होंगे, इसका आकलन करना दुष्कर कार्य है।

**चौपई–11 :**

येक द्यौस मधुकर फिरि आयौ। हर्षवंत फिरि चेरौ पायौ।

पूछी बात कही तब अैसैं। वहै भई हम चाहत जैसैं।।

**अर्थ**–एक दिन मधुकर पुनः राजभवन गया। उसे मित्र चेरा मिला जिससे वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। जब मधुकर ने मालती के विषय में समाचार पूछे तब उसने बताया कि सारा घटनाक्रम हमारी आशानुकूल है।

**मालति सौं बहु कीनौं हेत। पै उहु हाथ न लावन देत।**

**तब रांनी सौं कह्यौ रिसाइ। याकौ जल मैं देहु बहाइ।।**

**अर्थ**–वह मालती को अनुकूल बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहा किन्तु मालती ने उसे अपना स्पर्श तक नहीं करने दिया है। हम भी ऐसा ही चाहते थे। तब बादशाह (तुर्किस्तानी) ने कुपित होकर रानी से कहा कि इसको पानी में बहा दो।

**रानी के मन कौ दुषु गयौ। फिरि कैं भरता अपनौ भयौ।**

**आज अर्ध निस जबहिं बिहाइ। वाकौं डोबहिंगे जल जाइ।।**

**अर्थ**–यह आदेश सुनकर रानी के मन का दुःख दूर हो गया। उसे प्रसन्नता इस बात की हुई कि पति का मानस परिवर्तित होकर पुनः उसी में अनुरक्त हो गया है। इससे घर में सुख–चैन आएगा। चेरा ने भावी योजना के विषय में बताया कि आज जब अर्द्ध रात्रि व्यतीत हो जाएगी तब मालती को ले जाकर जल में डुबो देंगे।

**बहुत भयौ दुष मधुकर सुनि सुनि। रोवन लागौ सीसहि धुनि धुनि।**

**सगरी निसि जागत ही रह्यौ। तब आहट मनुषन कौ लह्यौ।।**

**अर्थ**–इन दुःखदायी समाचारों को सुनकर मधुकर को बहुत दुःख हुआ। वह सिर धुन–धुनकर विलाप करने लगा। वह उस रात को निरन्तर जागता ही रहा, तब बहुत समय के पश्चात् उसे मनुष्यों के चलने की ध्वनि सुनाई दी।

**मानस चार उदधि कौं चले। देषि प्रांन मधुकर हल (ल)हले।**

**येक सिंदूक लये सिर जांहिं। मालति बाही दैता मांहिं।।**

**अर्थ**–चार मनुष्य समुद्र की ओर जा रहे थे। उनको देखकर मधुकर के प्राण छटपटा (थरथरा) रहे थे। वे चारों मनुष्य अपने सिरों पर एक सन्दूक को रखकर ले जा रहे थे जिसमें मालती थी।

**मधुप चल्यौ दुरि इन कैं संग। चलत स्वेद मुषु पीरे रंग।**

**जाइ उदधि पर ठाढ़े भये। पाहंन चार सोधि कै लये।।**

**अर्थ**–मधुकर छुप–छुपकर, इन चारों मनुष्यों के पीछे–पीछे चलने लगा। उसका मुख भी भय–विषाद के कारण पीले रंग का पड़ गया था तथा उसको पसीना भी आ रहा था। वे चारों मनुष्य समुद्र के किनारे पर जाकर खड़े हो गए। फिर वे खोज–बीन करके चार बड़े–बड़े पत्थर इकट्ठे करके ले आए।

**पाहन पाइ सिंदूक बंधाइ। तत छिन जल मै दयौ बुड़ाय।**

**मालति बोडि जबहिं उठि गये। तब मधुकर जल नेरैं भये।।**

**अर्थ**–बड़े–बड़े चारों पत्थरों को उस सन्दूक के चारों कोनों के नीचे बाँध दिया, फिर तत्क्षण सन्दूक को समुद्र के जल में डुबो दिया। मालती को इस प्रकार समुद्र के जल में डुबो देने के पश्चात् वे चारों वहाँ से वापस चले गये। तत्पश्चात् मधुकर जल के समीप गया।

**यहु दुषु नाहिं न सक्यौ सहार। पर्थम रत्न दये जल डारि।**

**पाछैं आप पर्यौ जल मांहि। जिय कौ लोभ कर्यौ कछु नांहि।।**

**अर्थ**–इस समय मधुकर के मन में इस बात का दुःख था कि उसे माँ ने जो दस मूल्यवान रत्न दिये थे उनको उसने व्यर्थ ही में जल में डाल दिया। यदि वे रत्न आज इस समय उसके पास में होते तो वह उन रत्नों को इन चारों व्यक्तियों को देकर मालती को छुड़ा लेता। इसके पश्चात् मधुकर स्वयं जल में कूद पड़ा। उसने अपनी जान का भी लोभ त्याग दिया।

**भयौ मरन कौं बूड़क षात। झींवर की डिठि आयौ जाति।**

**उन यहु काढ्यौ जब डिठ आयौ। औंधौ करि तरवर लटकायौ।।**

**अर्थ**–वह जल में मरने के करीब हो गया। ऐसी अवस्था में वह पानी में डूब रहा था तभी मल्लाहों (झींवर) ने उसे देख लिया और मधुकर को जल से बाहर निकाल लिया, फिर उलटा करके एक पेड़ पर ''औंधे मुँह'' की स्थिति में लटका दिया (जिससे कि पेट के अन्दर का पानी बाहर निकाल जाय)।

**चेत्यौ घरी भई जब चार। फिरि आये चारौं वै यार।**

**मधुकर देषि दौरिवै आये। को हौ जिन तुम नीर बुड़ाये।।**

**अर्थ**–इसी दशा में चार घड़ी तक लटका रहने के बाद उसको चैतन्य प्राप्त हुआ। तभी वे चारों मनुष्य वापिस लौटकर आये। मधुकर को देखकर वे शीघ्रता से उसके पास आये और पूछने लगे ''तुम कौन हो जो कि पानी में डूब रहे थे।''

वाहि वतावहि तौ हम मारहि। तेरै सगरे रोस निकारहिं।
मधुकर कह्यौ डिग्यौ पग मेरौ। हौं ठाढ़ौ हौं पांनी नेरौ।।

**अर्थ**—फिर उन्होंने चेतावनी दी कि यदि तुम उस संदूक के विषय में किसी से कुछ भी बताओगे तो हम तुमको मार डालेंगे। तुम पर हम अपना सम्पूर्ण क्रोध प्रकट करके तुम्हें पूरा दण्ड देंगे। मधुकर ने कहा, ''मैं पानी के समीप खड़ा था और पैर फिसल जाने से पानी में गिर पड़ा था।

**दोहा–24 :**

पानी मैं मालति गई देषि मधुप धंस लीन।
ज्यौं मरजीया रतन कौ बूड़क लै आधीन।।

**अर्थ**—पानी में गिरी मालती को देखकर मधुकर समुद्र के पानी में प्रविष्ट हो गया था और उसने अपनी जान (प्राण) की भी परवाह न कर मरजीया की भांति रत्नों की खोज में प्राण जाने का खतरा भी सहन करके समुद्र के जल में डुबकी लगा ली। उसी प्रकार मालती को अपने लिए मूल्यवान् रत्न मानकर मधुकर ने प्राणों का मोह त्याग कर उसके लिए डुबकी लगाई थी।

**चौपई–12 :**

मधुकर उन सौं पूछ्यौ अैसैं। तुम इत आये कारन कैसै।
उनंनि कह्यौ हंम मालति बोड़ी। पाहन बांधि नीर मैं छोड़ी।।

**अर्थ**—मधुकर ने उन चारों व्यक्तियों से इस प्रकार पूछा की आप लोग यहाँ किस प्रयोजनवश आये हैं ? उन चारों ने उत्तर दिया–''कि हमने मालती को डुबो दिया है तथा उसे पत्थरों के साथ बाँधकर पानी में डाला है।

अब वाकौ हंम काढ़न धाये। मोल लेन सौदागर आये।
काहू परदेसी कौ देहि। वा पै याके दमका लेहि।।

**अर्थ**—अब हम उसको पानी से वापिस निकाल कर ले आने के लिए आये हैं। सौदागर ऐसी लड़कियों को मूल्य देकर खरीदने को आए हुए हैं। अब इस लड़की को निकालकर किसी परदेसी को मूल्य के बदले में दे देंगे। उससे हम इसके विक्रय मूल्य के रूप में स्वर्ण की मुद्राएँ प्राप्त कर लेंगे।

**उहु याकौं कहु वा लै जाहि। तब हम जानहिं गई बलाइ।**

**अलि रोवै यह बात बिचारि। काहे रत्न दये मैं डारि।।**

**अर्थ**—वह परदेसी क्रेता जब इस लड़की को लेकर दूर किसी देश को चला जाएगा तब हम आश्वस्त हो जायेंगे कि यह अब वापस यहाँ दिखाई नहीं देगी। इससे प्रयोजन भलीभाँति सिद्ध हो जाएगा। मधुकर इस समय पूर्व में किए गए मूर्खतापूर्ण कार्य के विषय में सोचकर प्रायश्चित कर रहा था कि मैंने व्यावहारिक बुद्धिमत्ता का त्याग करके माता द्वारा दिये गये रत्नों को व्यर्थ में जल में फेंक दिया था, ऐसे विचारों के साथ वह रोता रहा।

**अब जो रत्न होत मो साथ। निहचैं मालति आवत हाथ।**

**जिनकी गंठिया नांहीं दांम। तिनकें कैसै सुरिहैं कांम।।**

**अर्थ**—इस अवसर पर यदि वे दस लाल रत्न मेरे पास होते तो निश्चित रूप से मैं इन चारों को उन रत्नों से मूल्य चुका कर मालती को हस्तगत कर लेता। व्यावहारिक बात यह है कि जिन लोगों ने प्रयासपूर्वक अपनी गाँठ (जेब) को दामों से (शुभ कर्मों से) भरा ही नहीं है, तब फिर आवश्यकता होने पर राशि कहाँ से आये। और काम कैसे पूरे हों? कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को सोद्योगपूर्वक कमाई भी करनी ही चाहिए।

**चेरैं तबहिं मलाह बुलाये। काढ़ि सिंदूक बेगि लै आये।**

**येक अरमनी तिहं ठां आयौ। देषत ही सिंदूक लहिचायौ।।**

**अर्थ**—उन चारों चेरों ने मल्लाहों को बुलाकर संदूक को समुद्र के जल में से बाहर निकाल लाने के लिए कहा। वे मल्लाह शीघ्र ही उस संदूक को समुद्र के जल में से बाहर निकाल कर ले आए। एक अर्मीनियाई (अर्मीनिया देश का रहने वाला) सौदागर संदूक को देखकर आकर्षित हो गया।

**दई मुहर सौ मोल मियारी। देषैं बिनां मोलि ली नारी।**

**बैठ्यौ जाइ अरमनी पाइ। धर्‌यौ सिंदूक निकटि करि जाइ।।**

**अर्थ**—उसने बिना देखे परखे ही एक सौ सोने की मुहरें मूल्य के रूप में देकर नारी को खरीद लिया। अरमनी ने जब संदूक खरीद लिया तब उसने बड़े उत्साह से सन्दूक को निकट में रख लिया और बैठ गया।

**मधुकर गयौ अरमनी पास। कह्यौ संग चलिबे की आस।**

**कह्यौ अरमनी तूं हूं आव। मधुकर आनंद बैठ्यौ नाव।।**

**अर्थ–**मधुकर अरमनी व्यक्ति के पास गया और उसने विनम्र निवेदन किया कि ''मैं आपके साथ चलने की आशा लेकर आया हूँ। अरमनी ने कह दिया कि ''तुम भी आओ, मेरे साथ चलो।'' तब मधुकर आनंद के साथ नाव में बैठ गया।

**उततें चल्यौ लयें मन भरंम। लह्यौ न कछु संदूक कौ मर्म।**

**षोलि सिंदूक अरमनी तक्यौ। मालति कैं छबि मद मैं छक्यौ।।**

**अर्थ–**उस किनारे से नाव में बैठकर चलते समय उसके मन में एक भ्रमपूर्ण आशंका मालती के विषय में बनी हुई थी। इस विषय में उसने सची बात अभी तक देखी या समझी नहीं थी। अरमनी ने संदूक को खोलकर मालती का निरीक्षण किया तथा उसकी रूप शोभा देखकर वह मोहित हो गया।

**देषी मालति रूप अपार। मगन भयौ ना रही संभार।**

**अंक भरन कौं नेरैं आयौ। मालति भलौ तमाचौ लायौ।।**

**अर्थ–**मालती के अपरिमित सौन्दर्य को देखकर वह ऐसा मुग्ध हो गया कि उसे विवेक भी नहीं रहा। वह मालती को अपने अंक में भरने के लिए उसके समीप गया तब मालती ने उसके गाल पर भरपूर शक्ति से एक तमाचा मार दिया।

**उपरि उठी मुष अंगुरी पंच। मालति दया न कीनी रंच।**

**भयौ अरमनी बहुत षिसानौ। दौर्‌यौ हार जुवारी मानौ।।**

**अर्थ–**मालती ने तमाचा मारते समय रंच (तनिक) मात्र भी दया नहीं की थी। उसके हाथ की पाँचों उंगलियों के निशान उसके मुख पर अंकित हो गये थे। जैसे हारा हुआ जुआरी बहुत जल्दी रोष में भर कर असामान्य व्यवहार करने लगता है, उसी प्रकार अरमनी असामान्य हो गया। उसे महसूस हुआ कि इतना भारी मूल्य देने पर भी सुख की बजाय दुःख ही मिला है।

**मधुकर बहुत भयौ आनंद। देष्यौ मालति कौ मुष चंद।**

**मालति की डिठ मधुकर आयौ। दुरबल देषि बहुत दुष पायौ।।**

**अर्थ–**इस घटना के समय मधुकर ने अपनी जीवित प्रिया मालती का मुखरूपी चन्द्रमा देख

लिया–इससे उसे अतीव आनंद की प्राप्ति हुई। मालती ने भी अपने नेत्रों से मधुकर को देख लिया। मधुकर को क्षीण देखकर उसे बहुत दुःख हुआ।

**दोहा–25 :**

**मालति मधुकर देषि कैं, परी भौम मुरछाइ।**
**स्वास नासिका में रही, डोर तहा न पाई।।**

**अर्थ**–मालती मधुकर को देखते ही मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। उसकी श्वास नासिका में ही थम गई–श्वास चलती हुई हृदय तक नहीं पहुँच रही थी। नाड़ी भी चलना बंद हो गई।

**पवंगम छन्द–10 :**

**धंन धंन ताके नैन जु देषैं पीय दरस।**
**धंन ते स्रवनं जु बैन सुनै पि(य) के सरस।**
**धंन ते चरन जु पंथ पीय कैं डोलि हैं।**
**धंन ते रस्न जु हंसि हंसि पिय सौं बोलिहैं ।।**

**अर्थ**–धन्य है उस सतवंती नारी के नयन जो केवल अपने प्रियतम के ही दर्शन प्राप्त करते हैं, अन्य दूसरे के नहीं। धन्य हैं साध्वी नारी के वे श्रवण (श्रोत्र) जो केवल अपने प्रियतम के वचनों को सुनते हैं। धन्य है साध्वी की चाल–चलन के वे चरण जो केवल अपने प्रियतम के प्रिय पंथ को अंगीकार करके ही चलते हैं, अन्यथा ठहर जाते हैं। धन्य हैं साध्वी स्त्रियों की वे रसनायें जो केवल अपने वास्तविक प्रिय के लिए ही प्रसन्नतादायक वचन हँसकर बोलती हैं।

**चौपई–13 :**

**देषत सोचि अरमनी भयौ। मन कौ रोस सबै मिटि गयौ।**
**लै गुलाब सौं छिरकी नारि। घरी चार लौं भई संभार।।**

**अर्थ**–मालती को मूर्च्छित अवस्था में देखकर अरमनी को बड़ा शोक हुआ। उसके मन का समस्त रोष दूर हो गया। उसने गुलाब का इत्र आदि लेकर मालती के ऊपर छिड़क दिया, तब चार घड़ी के पश्चात् मालती को चैतन्य प्राप्त हो गया।

**पूछी तबहिं अरमनी बात। कत मुरछांनी मालति गात।**
**मालति भाष्यौ राजा राइ। मेरैं हाथ सके न हीलाइ।।**

**अर्थ**—तभी अरमनी ने मालती से पूछा कि तुम्हारे शरीर में मूर्च्छा किस कारण से आ गई थी। मालती ने उसे उत्तर दिया कि—''मैं इतनी सुदृढ़ हूँ कि राजा और उमराव भी मेरे हाथों तक को हिला नहीं सके हैं।''

**रही सत्त मैं जब तें जरमी। तू कत मोकौं छुवै अधरमी।**
**कहि धौं तेरी कहा मजाल। मोहि भर्‌यौ चाहत अंक माल॥**

**अर्थ**—''मैं जब से जन्मी हूँ, तब से 'सत्य' (शील सत्त्व) के साथ रही हूँ। तूं अधर्मी बनकर, मुझको बुरी नीयत से छू लेने की हिम्मत (दुस्साहस) करता है। तूं बता तो सही कि तेरी इतनी हिम्मत कैसे हो गई कि तूं मुझे अपने अंक में भर लेने की चाहत करके मेरे पास आ गया।

**तूं कू चील तेरौ भष सूकर। षात चौषरा कौं पुनि कूकर।**
**ना तू तुरक न हेंदु कहत। कोऊ पंथ न तोमैं लहियत॥**

**अर्थ**—तूं तो इतना गिर गया है कि तूं वह खा जो चील खाती है; तूं वह खा जो शूकर खाते हैं; तूं वह खाया कर जो कि गीदड़ खाते हैं और तूं उन फेंके गये रोटी या हड्डी के 'टूक' खाया कर जो कि कुत्ते खाते हैं।

मालती के कहने का तात्पर्य यह है कि नारी से विवाह आदि का समझौता किए बिना उसे छूने वाला सभ्य मानवीय समाज में रहने की योग्यता नहीं रखता है; अतः ऐसे अधम प्राणी की गणना लोभी, चील, शूकर, गीदड़ और कुत्ते की जाति में किया जाना उचित होगा।

मालती ने कहा कि तूं न तो तुर्क धर्म को मानने वाला है, न हिन्दू कहा जा सकता है, तेरा कोई भी मानवीय जाति का धर्म वाला पंथ होता तो ऐसा अनीतिपूर्ण व्यवहार मुझ नारी के साथ तूं नहीं करता।

**अनमिलि रीति कही तुम नई। तेरौ मुष न दिषावै दई।**
**सुनि वाकौ रिस उपजी भारी। उहीं सिंदूक मांहिं लै डारी॥**

**अर्थ**—जो किसी भी पंथ के मानने वाले व्यक्तियों में—ऐसी कोई रीति मान्य नहीं है जैसी कि बुरी और सर्वथा नई व्यवहार की नीति तूने, मेरे साथ आचरित की है। तूं ऐसा अधम व्यक्ति है कि विधाता तेरा मुख भी मुझे न दिखावे। मालती की बातें सुनकर अरमनी को अत्यधिक क्रोध आ गया। उसने मालती को लेकर उसी सन्दूक में डाल दिया।

**निकट अरमनी मधुकर आयौ। मन मैं सुभग उपाव उपायौ।**

**भया की भाषा हौं सब जानत। सिष दैहों जिनके हूं मानत।।**

**अर्थ**–अब मधुकर अरमनी के पास आया। उसने अरमनी को उपाय बताने के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया। अरमनी को उसकी सहायता की बात मन में पसन्द आ गई। इस स्त्री की सम्पूर्ण भाषा मैं (मधुकर) जानता हूँ। मैं इसको आपके अनुकूल आचरण करने की शिक्षा दूँगा। हो सकता है कि किसी प्रकार से यह आपके अनुकूल हो जावे।

**बात अरमनी कौं यहु भाई। कह्यौ जाइकैं सिष दै भाई।**

**जौ रह मोहि भरन दै अंक। मागहि सो तुव देहु निसंक।।**

**अर्थ**–उसकी यह बात अरमनी को पूरी तरह से ठीक लगी। उसने मधुकर से कहा कि ''तुम इसके पास जाकर इसे समझाओ।'' अरमनी ने कहा कि ''यदि तुम्हारे समझाने से यह मेरे अनुकूल आचरण करते हुए मुझे स्वयं को अंक में भर लेने दे, तब तो मैं जो कुछ आप मांगोगे वह सहर्ष दे दूँगा।

**मधुकर आयौ मालति पास। अपनौ छनु सब कर्‌यौ प्रकास।**

**मालति बिपति भाति जिहं भई। मधुकर आगैं कीनी नई।।**

**अर्थ**–मधुकर तब मालती के समीप पहुंचा और उसको अपनी चालाकी भरी युक्ति प्रकाशित करके बता दी। इसके पश्चात् एक नई भाँति की विपत्ति मालती के सम्बन्ध में अस्तित्व में आ गई। मधुकर को भी मालती द्वारा नई समस्या बताई गई।

**रोइ रोइ करिहैं जुगु बात। याही भाँति रैन दिन जाति।**

**जात जात आये संत्रांन। पातसाह पठ्यौ परधांन।।**

**अर्थ**–वह समस्या ऐसी आई थी कि दोनों रो–रोकर दिन और रात दुःखपूर्ण स्थिति में ही व्यतीत करते रहे। उस अरमनी के साथ वे चलते–चलते संत्रान (सिस्तान) स्थान पर पहुँचे। वहाँ बादशाह ने अपना प्रधान (वजीर) भेज दिया था।

**कह्यौ येक आयौ सौदागर। लावहु मुकतार तूं उजागर।**

**अग्याकारी इनमैं आयौ। सब कछु मोल लयौ सो भायौ।।**

**अर्थ**–बादशाह ने प्रधान को, वहाँ यह कहकर भेजा था कि एक सौदागर आया हुआ है जिससे

तुम मूल्यवान् प्रकाशित स्वरूप वाला मुक्ता खरीद कर ले आना। बादशाह की आज्ञा पालन करने वाला, उसका प्रधान यहाँ सिस्तान आया; उसे जो कुछ भी पसन्द आया, वह सब कुछ उचित मूल्य चुका कर खरीद लिया।

**पर्‌यौ सिंदूक डिस्ट प्रधांन। यामैं कहा सु करहु वषांन।**

**अर्थ**–प्रधान की दृष्टि अरमनी के उस सन्दूक पर पड़ी। उसने कहा कि ''इस सन्दूक में क्या है–इसके विषय में पूर्ण विवरण कहो।

**दोहा–26 :**

**तबहि अरमनी यौं कह्यौ, यामै बौरी नारि।**

**कह्यौ न काहू कौ करै, मुगधा बड़ी गंवार।।**

**अर्थ**–उस समय अरमनी ने इस प्रकार कहा कि, ''इसमें एक बावली नारी है जो बड़ी गँवार और मुग्धा है। यह किसी के कथनानुसार कोई भी कार्य नहीं करती है।

**चौपई–14 :**

**तब परधांन कह्यौ यहु बोल। येक बार याकौं तू षोल।**

**षोलत देषि अचंभै रह्यौ। अैसौ मानस तैं कत लह्यौ।।**

**अर्थ**–तब प्रधान ने कहा कि इस सन्दूक को खोल कर इसे एक बार मुझे दिखा दे। अरमनी ने सन्दूक को खोलकर उस नारी को जब दिखाया तब मालती को देखकर प्रधान आश्चर्य–चकित हो गया। उसने कहा, ऐसी सुन्दरी मनुष्य जाति में तूने कहाँ से प्राप्त कर ली।

**कह्यौ षैंचि उन भाष्यौ नाहीं। लै वहु दयौ भाकसी माहीं।**

**रह्यौ भाकसी मैं इस मास। तन पर तनक रह्यौ ना मांस।।**

**अर्थ**–प्रधान ने अरमनी को आदेश दिया कि इसको सन्दूक में से खींचकर बाहर निकाल। इस पर अरमनी ने वैसा कार्य नहीं किया और कुछ बोला भी नहीं। तब गुस्से में आकर प्रधान ने, उस अरमनी को भाकसी (कैदखाने की कोठरी) में बन्द कर दिया। वह अरमनी भाकसी में एक महीने तक बन्द रहा। भाकसी में बन्द रहकर दुःख उठाने के कारण उसके शरीर पर माँस नहीं रहा।

**सदा अरमनी कैं ढिंगु जाइ। मधुकर आवै कछू षवाइ।**

**पातसाह सुनि मालति टेरी। नष सिष लौं नीकैं करि हेरी।।**

**अर्थ**—मधुकर सदा अरमनी के पास आकर कुछ खाना खिला देता था। बादशाह ने इनके विषय में समाचार सुनकर मालती को अपने यहाँ बुलवा लिया। उसने मालती के सौन्दर्य का नख से लेकर चोटी तक अवलोकन किया।

**मालति देषि मग्न ह्वै गयौ। मधुकर नांई बौरा भयौ।**

**पातसाह के लागे नैन। तब अैसैं भाषे मुष बैंन।।**

**अर्थ**—बादशाह मालती को देखकर आसक्त हो गया। वह मधुकर के समान मुग्ध हो गया। बादशाह ने जब सौन्दर्य को ललचाई दृष्टि से देखा तब अपने मुख से इस प्रकार कहा।

**जो यहु बौरी होत न नारि। बौरा होत सकल सैंसार।**

**हौं बौरी कौ बौरा भयौ। देषत ग्यांन ध्यांन हरि लयौ।।**

**अर्थ**—यदि यह नारी बावली न होती तो सारा संसार इसको प्राप्त करने के लिए बावला हो जाता। बादशाह का कथन सत्य था क्योंकि मालती साध्वी होकर किसी भी पुरुष को लुभाने के लिए कोई श्रृंगार आदि चेष्टा नहीं करती थी। यदि वह श्रृंगार करके दूसरों को आकर्षित करने के लिए चेष्टायें करने लगती तो संसार के अनेक लोगों को वह मोहित कर सकती थी। बादशाह कहता है कि इस बावली को देखकर जब मैं स्वयं बावला हो गया हूँ। मेरी दशा ऐसी हो गई है कि दृष्टिपात मात्र से ही मेरा ज्ञान और ध्यान हर (छीन) लिया गया है।

**ढिंगु अपनैं अरमनी बुलायौ। तासौं सूधौ यहै कहायौ।**

**येक रतन यह मोकौं देहि। याके पांच रतन तूं लेहि।।**

**अर्थ**—बादशाह ने अरमनी को अपने पास बुला लिया और उससे यह बात स्पष्ट कह दी कि मालती नारी रूपी एक रत्न है, इसे मुझे देकर विनिमय के रूप में पाँच रत्न ले ले।

**जौ न देह तौं लेउं छिनाइ। कौंन जुइत तें इह लइ जाइ।**

**तबहि अरमनी राजी भयौ। पातसाह दोनौ सो लयौ।।**

**अर्थ**—यदि तुम मेरे प्रस्ताव को नहीं मानोगे, तो मैं इसे तुमसे छीन कर प्राप्त कर लूँगा। ऐसी स्थिति में तुममें ऐसी कौनसी शक्ति है जो तुम इसे अपने साथ ले जाने में सफल हो सकोगे।

तब अरमनी बादशाह के प्रस्ताव से (विवशता में) सहमत हो गया, उसने मालती के मूल्य के रूप में बादशाह ने जो भी मूल्य दे दिया, वह चुपचाप ग्रहण कर लिया।

**गयौ अरमनी अपनै देस। उतहिं रह्यौ अलि भिछुक भेस।**
**बहुत भांति पोषत पतिसाहि। पैं मालति राषत ना चाह॥**

**अर्थ**—अरमनी मूल्य प्राप्त करके अपने देश को चला गया। मधुकर भिक्षुक का भेष धारण करके उसी स्थान पर ठहर गया। बादशाह ने मालती को अनुकूल बनाने के लिए बहुत प्रकार से पुष्टिकारक वातावरण बनाया, परन्तु मालती ने प्रेम करने की चाह प्रकाशित नहीं की।

**पातिसाहि नित देष्यौ करै। पैं कछु मन की चाडि(हि) न सरै।**
**यहै कहत जौ बौरी होत न। पैंमु डिस्ट तौ देषत मो तन॥**

**अर्थ**—बादशाह नित्य मालती की ओर से आमंत्रण की प्रतीक्षा करता था किन्तु मनोरथ सफल नहीं हुआ। बादशाह यही कहता था कि यदि यह बावली नहीं होती तो मेरी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से अवश्य देखने लगती।

**पैं बौरी सौं कछु न बसाइ। समंझत नाहिं रह्यौ समझाइ।**
**मालति, यहै बात धरि लई। ज़ांन बूझि कैं बौरी भई॥**

**अर्थ**—यह तो वास्तव में बावली है, इस पर मेरा वश नहीं चलता है। मैं समस्त उपायों से इसे समझाने की चेष्टा करता रहा हूँ किन्तु यह तो समझती ही नहीं है। मालती ने सोच–समझकर बावलेपन के व्यवहार को ग्रहण कर लिया। वह जान–बूझकर बावली ही बनी रही।

**पातिसाहि यहु कर्‌यौ उपाइ। कह्यौ सयांनी करौ डराइ।**
**हाथी आगैं डारी जूरि। मालति कौं डरू भयौ न भूरि॥**

**अर्थ**—बादशाह ने भी सोच लिया कि मैं इस सुन्दरी को सुधारने के उपाय के अन्तर्गत उसे डरा कर बुद्धिमान बनाऊँगा। बादशाह ने उसे हाथी के सम्मुख डाल दिया किन्तु मालती किसी प्रकार से नहीं डरी।

**दोहा–27 :**

**ताकौं डरू कछु ना रहै, जिहं तन उपज्यौ नेह।**
**ज्यो की हानि न ग्यांन मैं, कहा बदै दुषु देह॥**

**अर्थ**—उसको किसी का भी डर नहीं रहता है जिसके तन में नेह उत्पन्न हो जाता है। प्रेमार्थ अपने प्राणों को देते समय जिसे किसी हानि को बोध नहीं होता है, वह शरीर के कष्ट को तो कुछ कहे बिना ही सह लेता है।

**पवंगम छन्द–11 :**

**जिह घट उपजै नेहु सु बदै न देह कौं।**
**तब कछु सूझे नैंन राषे षेह कौं।**
**जबहिं जमन का तन की बिचु तैं जाइहै।**
**रहे जीव ही जीववत न पाइहै ।।**

**अर्थ**—जिसके तन में 'नेह' उत्पन्न हो जाता है वह देह के कष्ट को तुच्छ समझकर उसका कुछ भी कथन नहीं करता है। उसे अपने दैहिक सुख की लालसा नहीं होती है। उसे तभी कुछ कहना ठीक लगता है जब नयनों को अप्रिय देखकर खेद (दुःख) हो रहा हो। जब यवनिका (पर्दा या द्वैत) अर्थात् तन से तन के बीच की दूर हो जाएगी। उस स्थिति में जीव की अनुभूति, दूसरे प्रत्येक जीव की शुद्ध अनूभूति के समान हो जाएगी, वहाँ समात्मभाव की स्थिति हो जायेगी। आत्मा–आत्मा में अद्वैत हो जाएगा और माया–आविष्ट (राग–द्वेष से युक्त) जीव की दशा के समान–उस दशा में स्थित नहीं रह जायेगी।

**चौपई–15 :**

**पातिसाहि परधांन बुलाइ। कह्यौ अरमनी कौं ले आइ।**
**षोटौ रतन आपुनौ लेइ। मेरे षरे फेरि मुहि देह।।**

**अर्थ**—बादशाह के जब समस्त प्रयास विफल हो गए तब उसने प्रधान को बुलाकर आदेश दिया कि, ''अरमनी को बुला कर ले आओ और उससे कहो कि अपने खोटे रत्न को फिर से वापस ले ले तथा मेरे खरे मूल्य के रत्न मुझे वापिस दे दें।

**तब परधांन लोग दौराये। मधुकर पायौ लै कैं आये।**
**कह्यौ आपुनी चेरी लेहि। पांचौ रतन हमारे देहि।।**

**अर्थ**—तब प्रधान ने अपने सेवक लोग अरमनी को ढूँढने हेतु भेजे। उन लोगों को अरमनी के साथ मधुकर मिल गया, उसे लेकर वे बादशाह के पास आए। बादशाह ने आदेश दिया कि अपनी चेरी तुम वापिस लो और हमारे पांचों रत्न वापिस दे दो।

मधुकर दयौ भाकसी मांहिं। यहु कछु बोल न पायौ नांहिं।
मधुकर कौ झींवर हौ यार। सो वहु निस दिन लेत संभार।।

**अर्थ**—मधुकर कोई उत्तर न दे सका। तब बादशाह ने उसे 'भाकसी' (बन्दी खाने) में बन्द कर दिया। मधुकर का वहाँ एक मल्लाह मित्र बन गया था। वह रात–दिन भाकसी में बन्द मधुकर की कुशलता पूछने के लिए आया करता था।

येक मीन–नित की दै जाइ। सो पकाइ कैं मधुकर षाइ।
इक दिन येक मीन दै गयौ। ताहि संवारत अलि सुष भयौ।।

**अर्थ**—वह मल्लाह मधुकर को उस बंदीगृह की भाकसी (जमीन की कोठरी) में एक मछली प्रतिदिन दे जाया करता था जिसे मधुकर पका कर खा लिया करता था। एक दिन मल्लाह एक मछली को देकर चला गया। उसके चले जाने के बाद जब मधुकर उस मछली को संभालकर चीड़–फाड़ करके साफ कर रहा था, तब उसके पेट से निकले माल को देखकर मधुकर को अपार सुख मिल गया।

रतन जु दीने हे जल डारि। ते दस निकसे धन करतार।
उपज्यौ चैन मधुप कैं चितु। जान्यौ मिलन मालती मितु।।

**अर्थ**—उस समय मछली के पेट से मधुकर को वे दस रत्न मिल गये जो उसे उसकी माता ने विदाई के समय दिये थे और जिन्हें अज्ञानतावश मधुकर ने व्यर्थ समझकर जल में डाल दिये थे। ईश्वर की कृपा से वे पूरे रत्न मधुकर को सही अवसर पर मिल गये। रत्नों की प्राप्ति से मधुकर के चित्त में चैन उत्पन्न हो गया। अब उसने प्रिया मालती को प्राप्त करना आसान समझ लिया।

मधुकर लयौ उजीर बुलाइ। कह्यौ मालती देहु मंगाइ।
पांच रतन दीने परधांन। कह्यौ लेहु जब छांड़हु प्रांन।।

**अर्थ**—मधुकर ने प्रधान (वजीर) को बुलवा लिया और उससे कहा कि मालती को बादशाह के यहाँ से मँगवा कर मुझे दे दो। पाँच रत्न प्रधान को दिये और कहा—लीजिए अपने रत्न और अब मेरे प्राण बख्श दो।

लै उजीर छत्रपति ढिंग गयौ। पातसाहि कौं लालचु भयौ।
कह्यौ रतन ये पांचौ लेहु। चेरी पुनि वाकौं जिन देहु।।

**अर्थ**–प्रधान पाँचों रत्न लेकर बादशाह के पास गया। बादशाह को लालच हो गया। बादशाह ने प्रधान से कहा–''पाँचों रत्न ले लो। पुनः चेरी भी उसको मत दो।''

**कह्यौ उजीर लागि कैं पाव। ऐसौ ना कीजै अन्याव।**
**राजा जौ अन्याई होइ। जग मैं भलौ कहत ना कोइ॥**

**अर्थ**–वजीर ने बादशाह के पैर पकड़कर उसे विनम्रता के साथ समझाया कि, ''ऐसा अन्याय मत कीजिए।'' राजा यदि अनीति का आचरण करता है तो संसार भर में कोई भी उसे भला (नेक या श्रेष्ठ स्तर का) नहीं कहता है।

**तबहिं छत्रपति बौल्यौ ऐसैं। ऐसी चेरी दीजत कैसैं।**
**तब परधांन कह्यौ सुनि लेहु। येक बार चेरी उहिं देहु॥**

**अर्थ**–तब बादशाह इस प्रकार कहने लगे कि ऐसी सुन्दरी चेरी को कैसे दे दिया जाये? तब प्रधान ने बादशाह से कहा कि आप मेरी बात को ध्यान से सुन लीजिए कि एक बार तो यह चेली उसे वापिस दे ही दीजिए।

**यह बौरी उहु सकत न राष। ह्वै न सयानी जतननि लाष।**
**करि मनुहार बहुरि हम दैहैं। जो हम दैहैं सोई लैहैं॥**

**अर्थ**–यह लड़की बावली है जिसे वह अपने साथ रखने में समर्थ नहीं हो सकेगा। यह लाख यत्न करने पर भी बुद्धिमति नहीं हो सकेगी। वह जब उसे संभाल ही नहीं सकेगा तब प्रार्थना और मिन्नतें करके हमें मनाकर इसको देना चाहेगा। तब हम इसे जिस प्रकार आसानी से दे रहे हैं उसी प्रकार हम इससे लड़की को वापस भी लेने की उम्मीद कर सकते हैं।

**सौंपी मालति मधुकर टेरि। लै कैं चल्यौ न लाई बेर।**
**मालति फारे मधुकर बसंन। देषि लोग लागे सब हसन॥**

**अर्थ**–मधुकर को बुलाकर उन्होंने मालती को सौंप दिया। मधुकर ने तनिक भी विलम्ब नहीं किया। वह उसे लेकर वहाँ से तुरन्त चल दिया। मालती ने युक्तिपूर्वक विचार कर मधुकर के कपड़े फाड़ डाले, जिससे सब लोग समझें कि यह तो बावली ही है। उसके इस व्यवहार को देखकर सभी उपस्थित जन हँसने लगे।

दोहा–28 :

जगत लाज कीजत नहीं, कत दुषि दीजे चिंत।
हौंसनि हूजै बावरे, जौ कर आवै मिंत।।

**अर्थ**–सच्चा मींत (प्रिय) प्राप्त करने में जगत् की लाज त्यागनी पड़े तो इसे सहन कर लीजिए। जगत् की दृष्टि में यदि आपकी रीति–नीति बावले की जैसी भी बताई जाये तब भी 'प्रिय' को प्राप्त करने के लिए, ऐसी रीति को उमंग के साथ अपनाइये।

पवंगम छन्द–12 :

जानि बूझि कैं बौरा नाव कहाईयै।
भेष धरैं ग़हु जौ मनमोहन पाईय़े।
लाष न कीजै हौंसनि जगत हंसाईय़ै.।
अप गये पीय़ पईयै आपु गव़ाईयै।।

**अर्थ**–अपना वास्तविक मूल्यवान् प्रयोजन प्राप्त करने के लिए बावला नाम भी कहलवा लीजिए। ऐसा करने से यदि मन का मीत मिल जाए तो बावलापन ग्रहण करना भी ग्राह्य है। बड़ी उमंग रखकर प्रियतम की प्राप्ति के लिए किसी भी ऐसे व्यवहार मार्ग का सहारा ले लीजिए जिसके करने से जगत् के लोग भले ही मूर्ख समझकर हँसी बनायें। स्वयं के रूप–रंग, अहं, जाति एवं किसी भी बाह्य पहचान को भुलाकर प्रियतम के 'लक्ष्य' को प्राप्त कर लेना चाहिए। अपने सर्वाधिक मूल्यवान् प्रियतम को प्राप्त करने के लिए अपना सब कुछ समर्पित करना ही कर्त्तव्य है।

चौपई–16 :

उत तें झींवर कैं घर गय़ौ। दहुव़नि कै मन आनंद भय़ौ।
मालति कह्यौ चलहु कहूं जाहिं। पातिसाहि इत छांडत नांहिं।।

**अर्थ**–उधर से वह मल्लाह के घर पहुँच गया। मालती और मधुकर दोनों के मन में आनन्द उत्पन्न हो गया। मालती ने मधुकर से कहा कि यदि हम यहीं ठहरे रहे तो बादशाह पुनः मुझे पकड़ लेगा। अतः अन्यत्र किसी सुरक्षित स्थान के लिए प्रस्थान कर लेना श्रेयस्कर है।

य़ेक रतन झींवर कौ दय़ौ। मालति लै मधुकर कहूं गयौ।
बैठे नौका मैं ये नाइ। भाषी बिपति जु गई बिहाइ।।

**अर्थ**—मधुकर ने मल्लाह को सहायता करने के बदले में एक रत्न दे दिया। तत्पश्चात् वह मालती को लेकर अन्यत्र चला गया। इन दोनों ने जलमार्ग से यात्रा प्रारम्भ की। ये नौका में बैठकर यात्रा कर रहे थे तथा व्यतीत हुई विपत्तियों के विषय में बातचीत करते रहे।

**करत जाहिं दुष सुषु की बात। छसै कोस चले दिन रात।**
**रतन दोइ मालति कौं दीनें। दोइ बाँधि अपने कर लीनें।।**

**अर्थ**—वे नाव में बैठकर रात दिन निरंतर यात्रा करते रहे। छह सौ कोस दूरी की इस यात्रा में वे परस्पर सुख–दुःख की बातें करते रहे। अब मधुकर ने दो रत्न मालती को दिए तथा दो रत्न अपने पास रख लिए।

**दई चरित ना जानै कोइ। जिन कबहूं फिरि बिछुरनि होइ।**
**तब य़े रतन आइहैं काज। होहिं कि नांहिं सदा दिन आज।।**

**अर्थ**—मधुक़र ने विचार किया कि विधाता कैसी भी परिस्थिति उत्पन्न कर सकते हैं। हो सकता है कि संयोगवश, पुनः भविष्य में यात्रा में वे परस्पर वियुक्त (बिछुड़) भी सकते हैं। उस परिस्थति में ये रत्न काम में आ सकते हैं। भविष्य का पता पहले से नहीं चलता है। आज की परिस्थिति कल बदल भी सकती है।

**पातिसाहि पाछै पछितायौ। सोधि रह्यौ मधुकर ना पायौ।**
**तबहिं उजीर मारि कैं डार्‌यौ। वाकैं घर मैं कछू न छांड्यौ।।**

**अर्थ**—बादशाह मालती को देने के पश्चात् मलाल करने लगा। उसने खोज की किन्तु मधुकर को ढूँढ नहीं पाया। तत्पश्चात् उसने वजीर को मार डाला और उसके घर में कुछ भी शेष नहीं छोड़ा। उसका समस्त धन जब्त कर लिया।

**दिन चालीस नाव़ मैं भये। मधुकर मालति सुष मैं गय़े।**
**पाछैं इनकी नाव़ डुरांनीं। भौंरा लागि कैं फाटि बुडानी।।**

**अर्थ**—मधुकर और मालती चालीस दिन में सुखपूर्वक नाव में बैठकर यात्रा पूरी कर चुके थे। इसके पश्चात् इनकी नाव एक जल–भँवर में फँसकर डगमगाई एवम् चक्कर खाने लगी। इसी दशा में नाव टूटकर डूब गई।

**अलि मालती टूकि द्वै रहे। पैं जुग न्यारे न्यारे बहे।**
**मालति अैसैं कह्यौ पुकार। जो मोकौ ज्वावे करतार।।**

**अर्थ**—मालती और मधुकर जिस आधारभूत नाव पर बैठे थे, वह नाव टूटकर अलग हुई, इस कारणवश वे दोनों भी पृथक्–पृथक् हो गए और बह गये । उस समय मालती ने तेज स्वर में मधुकर से कहा कि यदि भविष्य में भी संयोगवश (विधाता के विधान से) जीवन बच गया।

**तौ हौं तुमहि सोधिहौं कहां। ठौर बतावहु आऊं तहां।**
**मधुकर कह्यौ जान जो पैहौं। निहचैं अवध नग्र है जैहौं।।**

**अर्थ**—तब मैं तुमको किस स्थान पर जाकर ढूँढूँ, उस स्थान का निश्चय मुझे बता दो, ताकि मैं उस स्थान पर पहुँच सकूँ। मधुकर ने उससे कहा कि यदि मेरा जीवन बचा रहेगा तो मैं निश्चित रूप से अयोध्या नगर को पहुँच जाऊँगा।

**बहे जुगल ठहराये नांहिं। रोवत नदी बहावत जांहिं।**
**सांझ भये ज्यों चकवा चकई। बिछुरि चलैं मुष लावैं बकई।।**

**अर्थ**—वे दोनों जल में बहते ही गए, कहीं भी ठहर नहीं सके, वे बहते जा रहे थे और वे रोते भी जा रहे थे, क्योंकि विवश थे। जैसे संध्या के समय चकवा और चकवी बिछुड़ते समय बोल–बोलकर विलाप करते हैं उसी प्रकार अपना बिछुड़ना देखकर मधुकर और मालती भी विलाप कर रहे थे।

**चलत चलत मालती ढिंगु लागी। देषि भौंम उतर ऊति भागी।**
**आयौ हौ पतिसाहि अहेरैं। देषि मालती आयौ नेरैं।।**

**अर्थ**—पानी में बहकर मालती किसी स्थान पर भूमि के किनारे जा पहुँची। उसने जब भूमि को देखा तब वह उस आधारभूत नाव के टूटे हिस्से (लकड़ी के पट्टे) से उतर कर तीव्र गति से चल पड़ी। वहाँ उस स्थान पर एक बादशाह आखेट के लिए आ पहुँचा था। सुन्दरी मालती को देखकर बादशाह उसके समीप आ गया।

**देषत रूप रह्यौ भरमाइ। पूछत अपनी जात जनाइ।**
**मानस किधौं अपछरा आहि। यां बन मैं डोलत है काहि।।**

**अर्थ**—मालती को देखकर बादशाह उसके रूप के कारण मोहित हो गया। उसने मालती से

कहा कि अपनी जाति बताओ। तुम अप्सरा हो? अथवा मनुष्य जाति की हो? इस वन में किस प्रयोजन से भ्रमण कर रही हो?

**दोहा–29 :**

**मानस इत नाहिन रहैं, है अपछिर की ठांव।**
**तूं को जो इत फिरति है कहि द्यौं अपनौं नांव।।**

**अर्थ**–बादशाह ने मालती से कहा, ''इस वन में मनुष्य तो रहते नहीं हैं। यहाँ तो अप्सराएँ रहती हैं। तू कौन है? जो कि इधर भ्रमण कर रही है। तुम अपना नाम बताओ।''

**चौपई–17 :**

**मालति अपनी बिपति बषानी। सुनत सभाव़ह सकल दय़ानी।**
**पातिसाहि अपछर यौं कह्य़ौ। तेरी बिथा अंग मो दह्यौ।।**

**अर्थ**–उस समय बादशाह की उस सभा के समक्ष मालती ने अपनी सम्पूर्ण व्यथा कह कर सुना दी। उसकी करूण कहानी सुनकर सभा में उपस्थित सभी लोगों के हृदय में उसके प्रति दया भर गई। बादशाह ने उससे इस प्रकार कहा–''हे अप्सरा! तुम्हारी व्यथा (पीड़ा) को सुनने से मेरा अंग–अंग बेचैन हो गया है।

**मानस इत तैं छ सै कोस। ना पुहचाऊ तौ मुहि दोस।**
**मालति कौं अपनै घर लाय़ौ। नीकौ भोजन आंनि षुव़ायौ।।**

**अर्थ**–मनुष्य तो इस निर्जन वन से छःसौ कोस की दूरी पर रहते हैं। यदि मैं तुमको मनुष्यों के निवास तक सुरक्षित नहीं पहुँचाऊँगा तो मुझ पर कर्त्तव्य की पालना नहीं करने का दोष लगेगा। एतत्पश्चात्, वह मालती को अपने घर ले आया और उसे भली प्रकार से भोजन करवाया।

**दस सेव़क दीने वा साथ। मालति पकराई उनि हाथ।**
**कह्यौ रहत हैं मानस जहाँ। य़ाकौं लै पुहचाव़हु तहां।।**

**अर्थ**–उसने मालती का हाथ पकड़कर दस सेवकों को सुरक्षा की जिम्मेदारी के साथ पकड़ा दिया। बादशाह ने अपने उन सेवकों को यह निर्देश दिए कि इसको उस स्थान पर ले जाकर पहुँचा दो, जहां पर मनुष्यों का निवास हो।

मालति कौं नौका मैं बाहि। चले दसौं पुहचाव़नि वाहि।
चौथे दिन रेती मैं आय़े। मारि मारि करते कोऊ धाये।।

**अर्थ**–वहाँ से नौका में मालती को बैठाकर वे दसों सेवक उसे पहुँचाने के लिए चल दिए। चौथे दिन वे नौका की यात्रा पूरी करके किनारे की रेती में पहुँचकर चलने लगे, तब कुछ लोग मारो–मारो कहते हुए इनकी ओर दौड़े।

भाजि बर्‌यौ जु लै इनकौ साथ। मालति आई उनि कैं हाथ।
व़ै लै गय़े अपछरा पास। देषत व़ाकौं बढ़्यौ हुलास।।

**अर्थ**--वे ऐसे भी कह रहे थे कि जो मुकाबला करे उसको दौड़कर पकड़ लो और जला दो। तब मालती वहाँ उनके हाथ में आ गई। सेवक सभी भाग गए। वे लोग मालती को लेकर एक अप्सरा के पास पहुँच गये। अप्सरा मालती को देखकर अत्यन्त हर्षित हुई।

राषत संग लगी जिय प्यारी। पल हूँ कियौ न चाहत न्यारी।
हुतौ येक अपछिर कैं पूत। ताकी देह मनौ कलधूत।।

**अर्थ**–अप्सरा के मन को मालती इतनी (भा गई) प्रिय लगी कि वह उसको सदैव अपने साथ में रखने लगी और उसे एक पल भी दूर करना नहीं चाहती थी। अप्सरा के एक पुत्र था जिसका शरीर ऐसे रूप–रंग का था जैसे शुद्ध स्वर्ण का बना हो।

सब अपछर कौ हौ पतिसाहि। ताकौं भई मालती चाहि।
वहु माता तें होत न न्यारी। वाकौं नेहु देतु दुष भारी।।

**अर्थ**–वह समस्त अप्सरा–कुल का बादशाह था। उसके मन में मालती की चाह उत्पन्न हो गई। मालती पल भर को भी माता अप्सरा से पृथक् नहीं होती थी। अतः अप्सरा–पुत्र को प्रिय मालती से मिल नहीं पाने का दुःख रहता था।

इस दिन गई अहेरैं परी। यह धुंनि सुत कैं कांनन परी।
नीकौ अंबर तनहिं बनाइ। मालति कैं ढिंगु बैठ्यौ आइ।।

**अर्थ**–एक दिन परी (अप्सरा) आखेट (शिकार खेलने) के लिए राजभवन से बाहर गई थी। उसके जाने की बात उसके पुत्र ने कानों से सुनी। परी के पुत्र ने बहुत अच्छे–अच्छे वस्त्र धारण कर लिए। तत्पश्चात् वह (सज–धजकर) मालती के पास जाकर बैठ गया।

**मालति व़ाकी तकति न व़ोर। वहु आयौ गर लागन जोर।**

**मुष पर भलौ तमाचौ मार। केस सीस के लय़े उतार।।**

**अर्थ**—वह राजकुमार बलपूर्वक मालती को अपने गले से लगाना चाहता था लेकिन मालती उसकी ओर देखना भी पसन्द नहीं कर रही थी। इसके बाद जब परी पुत्र ने बल पूर्वक उसको गले लगाने का यत्न किया तो मालती ने उसके मुख पर पूरी शक्ति से एक तमाचा मारा और उसके बाल सिर से खींच कर उखाड़ लिए।

**उनकौ करि डरि चली पराइ। डिग कैं परी टूटि गौ पाइ।**

**चेरनि मालति लई उचाइ। परी नंद घर गय़ौ लजाइ।।**

**अर्थ**—मालती भी उनसे डर कर वहाँ से हटकर चल दी तभी उसका पैर स्खलित हो गया तथा वह गिर पड़ी जिसके परिणामस्वरूप पैर टूट भी गया। अन्य सेविकाओं (चेलियों) ने मालती को उठाया। वह परी पुत्र बड़ी लज्जा के साथ अपने निवास के भवन को चला गया।

**षेल अहेरैं अछिरा आई। तब य़ह ब़ात परी सुनि पाई।**

**सुन्‍त अपछिरा अति तैं धाई। आइ मालती गरैं लगाई।।**

**अर्थ**—शिकार (आखेट) खेलने के पश्चात् जब परी अपने राजभवन में वापस लौटी तब उसने ये समस्त बातें सुनीं। सुनते ही वह अप्सरा तीव्रगति से शीघ्र चलकर मालती के पास आई और उसने मालती को अपने गले से लगा लिया।

**दोहा–30 :**

**तबहिं मालती रोइ कैं, कह्यौ हहा सुनि मात।**

**बरजहु अपनैं पूत कौं, फिर न करै य़े बात।।**

**अर्थ**—मालती ने तब उससे रोते हुए कहा, ''हाय, मेरी माता! सुनिये, मेरी आपसे विनती है कि आप अपने पुत्र को डाँटकर रोक दीजिए ताकि इस प्रकार का दुष्ट आचरण फिर कभी न करे।''

**चौपई–18 :**

**सुनत बात अपछरा दय़ाई। सीष दैंन कौं सुत पै ज्य़ाई।**

**पांचौ अंगुरी मालत नारी। उपटी सुत कैं बदन निहारी।।**

**अर्थ**–मालती की विनती सुनकर अप्सरा ने उस पर दया की तथा अपने पुत्र को शिक्षा देने जा पहुँची। मालती के तमाचे की पाँचों उंगलियों के चिह्न परी माता ने अपने पुत्र के मुख (गाल) पर देखे।

**सिर के उपरे देषे बार। कह्यौ पूत डरू करि करतार।**
**व़ह तौ परदेसनि दुषिय़ारी। दुष मैं दुष तैं दीनौ भारी।।**

**अर्थ**–इसके अलावा उसने पुत्र के केशों के लोचन (उच्छेदन) को भी देखा। परी ने पुत्र से कहा, ''हे पुत्र! विधाता से डरा कर। वह नारी दुःखों से ग्रस्त परदेशिनी है। तूने पहले से ही दुःखी उस नारी को और भी अधिक दुःख दिया है।

**तूं जु गय़ौ उत करन बिगार। कहा नाहिं तेरै घर नारि।**
**नंद अपछरा बहुत लजाय़ौ। मुष ते कछु ऊतर न आय़ौ।।**

**अर्थ**–नारी मर्यादा भंग करने की कार्यवाही तूने क्यों की? क्या तेरे घर में धर्मपत्नी नहीं है? अप्सरा का पुत्र बहुत लज्जित हुआ और उसके मुख से उत्तर भी नहीं निकल सका।

**दै उराहनौ अछरा आई। बहुरि मालती गेरे लगाई।**
**जल भोजनि लै आगैं दीनौं। सुठ उपचार चरन कौ कीनौ।।**

**अर्थ**–परी ने पुत्र को उलाहना देकर मालती के समीप पहुँचकर उसे फिर से गले से लगा लिया। अपने सामने ही भोजन मँगवाकर उसे जल एवं भोजन प्रदान किया। उसके टूटे हुए पैर का सुष्ठु प्रकार से उपचार किया।

**परी कह्यौ मालति दै आनि। करहु आपनी बिपति बषांनि।**
**मालति ऊपर होइ बिहांनी। सो अछिरा कौं कही कहांनी।।**

**अर्थ**–परी ने मालती को शपथ देकर समस्त विपत्तियों के विषय में सत्य-सत्य विवरण बताने के लिए कहा। मालती के साथ जो विपत्तियों वाली घटनाएँ घटित हुई थीं उन सबकी कहानी उसने परी को कहकर सुना दी।

**सुनि य़हु ब़ात परी पुनि चेरी। रोव़त भई पढ़न कैं नेरी।**
**कह्यौ परी तू मन डिंढ राषि। हूं पूजहुं मन की अभिलाषि।।**

**अर्थ**–उसके दुःख की कहानी को सुनकर रानी और चेरियां रो-रोकर उसके समीप में जाकर

सान्त्वना देने लगीं। परी ने मालती से कहा, तूं अपने मन की दृढ़ता को सम्भाले रख। मैं तेरे मन की (मधुकर से मिलने की) अभिलाषा को पूरा करवाने में पूरी सहायता करूंगी।

**भलौ होइगो तेरौ पाइ। द्यौं तब मनुषन मैं पुहचाइ।**

**हरषवंत सुनि मालति भई। बहुत असीस परी कौं देई।।**

**अर्थ**–''जब तेरा पैर ठीक हो जाएगा तब मैं तुझको मनुष्यों के रहने के स्थान पर पहुँचा दूँगी। यह सब (दिलासा) सुन कर मालती हर्ष से भर गई तथा उसने परी को बहुत आशीषें दीं।

**नीकौ पाव भयौ जब बांम। लागे करन चलावंन काम।**

**परी नंद तकत है घात। केहू मिलै मिलन की बात।।**

**अर्थ**–कुछ समय में मालती के दोनों पैर स्वस्थ होकर ठीक से कार्य करने लगे। परी का पुत्र प्रायः मौके की तलाश में रहता था कि कब उसकी घात (मालती को बलपूर्वक गले से लगाने के कार्य के यत्न) सफल हो सके। वह किसी भी प्रकार से उसे अपने गले लगाना चाहता था।

**चेरी सब आपुन मैं लीनी। दै दै दमका अपनी कीनी।**

**य़है कह्यौ मैय़ा कहूँ जाइ। तब तुम मोकौं लेहु बुलाइ।।**

**अर्थ**–उसने अपनी सहायता के लिए स्वर्ण के रुपये महल की सेविकाओं को दे दिए, इस कारण से वे सेविकाएँ, इस कार्य में परी–पुत्र की सहायता करने के लिए तत्पर रहने लगी थीं। परी–पुत्र ने सेविकाओं से यह कह दिया था कि कभी, किसी समय माता कहीं अन्यत्र जाये, उस समय मुझको उस महल में मालती के पास बुला लेना।

**इक दिन माता कहुंव़ा गई। जो नंदन चाहत सो भई।**

**चेरनि आइ सुरति ग़्रह दीनी। आव़त नंदन ढील न कीनी।।**

**अर्थ**–उसकी माता एक दिन कहीं अन्यत्र चली गई थी। परी–पुत्र की चाहत पूरी हो गई। चेरियों ने आकर उसे समाचार बता दिए। तब परी–पुत्र ने भी शिथिलता नहीं बरती और वह तुरन्त वहाँ जा पहुँचा।

**चेरी परीनंद मिलि आय़े। तब मालति कूं हाथ चलाए।**

**मालती लागी मुष पर दैन। इक दासी के फूटे नैन।।**

**अर्थ**–चेरियाँ और परी का पुत्र आदि मिलकर एवम् एक राय होकर मालती के रहने के स्थान

पर पहुँचे। सभी ने मालती को मारा–पीटा। मालती ने भी सामना किया। वह भी इन सबके मुख पर हाथों से प्रहार करने लगी। इससे एक दासी के दोनों नयन फूट गये।

**दोहा–31 :**

**भाजि गईं चेरी सकल, रह्यौ अकेलौ साहि।**
**मार्‌यौ तबहिं पछार करि, पूजी मालति चाहि॥**

**अर्थ**–स्थिति ऐसी बनी कि समस्त चेरियाँ तो डर कर वहाँ से पलायन कर गईं मात्र राजकुमार (परीपुत्र) वहाँ अकेला रह गया। मालती को मनचाहा अवसर मिल गया और उसने परीपुत्र को पराजित करके नीचे गिरा दिया तथा उसको मारा।

**चौपई–19 :**

**चेरनि बात जनाई जाइ। आय़े तबहिं तिय़ा पुनि माइ।**
**दहुनि छिड़ाय़ौ मालति पास। अधिक लजान्यौ भय़ौ उदास॥**

**अर्थ**–चेरियों ने राजभवन में जाकर इस घटना का सम्पूर्ण विवरण दिया। उसी समय परीपुत्र की वधू तथा माता वहाँ आ गईं। उन दोनों ने मालती के पास पहुँचकर उसे मुक्त करवाया। वह परीपुत्र बहुत लज्जित और उदास हो गया।

**अपने सेव़क तबहिं बुलाइ। दासी उनकौं सौंपी माइ।**
**व़ैई य़े रेती मैं आय़े। आगैं वै दस मानस पाये॥**

अर्थ–परी ने तभी अपने सेवकों को बुलाकर मालती (दासी) को उसके (मालती के घर) गन्तव्य तक पहुँचाने के लिए सेवकों को सौंप दिया। वे सेवक मालती को लेकर रेती (किनारे) में पहुँचे। आगे चलने पर उन्हें पूर्व वाले बादशाह के भेजे हुए दस सेवक मिल गये।

**कियौ जुहार मालती आइ। कह्यौ देह जू हम पुंहचाइ।**
**लागी बात मालती भली। उनि कै संगि लागि उठि चली॥**

**अर्थ**–उन सेवकों ने आकर मालती को आदरपूर्वक प्रणाम किया तथा विनम्र निवेदन किया कि आपको हम पहुँचा देंगे। मालती को उनकी बात जँच (ठीक लगी) गई। वह उठकर उनके साथ चल पड़ी।

**चलत चलत केतक दिन भय़े। मनुषन माझ छाड़िव़ै गय़े।**
**इन तब भेष कौ कर्‌यौ। अव़ध पंथ ही कौं पग धर्‌यौ॥**

**अर्थ**—प्रस्थान करने के पश्चात् यात्रा में अनेक दिन व्यतीत हो गए और वे मनुष्यों की बस्ती में पहुँच गए। उन्होंने मालती को मनुष्य समाज में छोड़ दिया, एतत्पश्चात् वे लोग वहाँ से लौटकर चले गये। तब मालती ने पुरूष का भेष धारण करके अवध (अयोध्या) की ओर पहुँचाने वाले मार्ग पर पग बढ़ाये (प्रस्थान किया)।

**पुहची है बगदाद पिय़ारी। उत मसीत इक देषी भारी।**
**ता मधि रही रैंन कौं सोइ। जित भिक्षक सोवत सब कोइ॥**

**अर्थ**—वह सुन्दरी मार्ग पर चलकर बगदाद (ईराक) पहुँच गई जहाँ उसने वहाँ एक विशाल मस्जिद देखी। उस मस्जिद में अनेक भिक्षुक सो रहे थे जहाँ उनके मध्य में मालती रात को सो गई।

**अबहिं सुनहु मधुकर की बात। जल मैं रह्यौ तीन दिन राति।**
**आई नाव़ य़ेक तिहि बार। ता मधि बैठे लोग अपार॥**

**अर्थ**—अब मधुकर के विषय सुनिये—वह तीन दिन तक टूटी नाव की लकड़ी पर बैठा यात्रा करता रहा। वहीं पर एक नाव आ गई जिसमें अपार संख्या में व्यक्ति बैठे हुए थे।

**उननि पूछि पकरि य़हु नाव़ बिठाय़ौ। बिपति पूछि बहु प्यार जनाय़ौ।**
**कह्य़ौ अव़ध हंम दैं पुंहचाइ। सुनि मधुकर चितु उपज्यौ चाइ॥**

**अर्थ**—उन लोगों ने इससे पूछताछ की और सहायता देते हुए पकड़ कर नाव पर बैठा लिया। उसकी विपत्तियों को पूछा और शिष्ट मानवीय संवेदना रखकर सहानुभूति से बहुत प्यार जताया। उन्होंने कहा कि—''हम तुमको अयोध्या पहुँचा देंगे। उनकी ऐसी कृपापूर्ण वाणी सुनकर मधुकर के मन में अवध जाने के प्रति उल्लास भर गया।

**सात द्यौंस इन चलत बिहाय़े। तब लूटनि कौं जंगी आय़े।**
**जुधु मच्यौ इन उन मैं भारी। अलि करव़ार भली तब मारी॥**

**अर्थ**—अवध (अयोध्या) नगर की ओर प्रस्थान कर देने के पश्चात् यात्रा में इनको सात दिन व्यतीत हो गए। इसके बाद आगे कुछ लुटेरे (डाकू) इनको लूटने आ गए। तब मधुकर के साथ वाले व्यक्तियों और डाकुओं के बीच में भारी लड़ाई हुई। मधुकर (अलि) ने भी कुशलता से तलवार चलाई।

**मानस तीन मधुप व़ै मारे। अंत भंवर के संगी हारे।**
**जंगी जीते य़े सब मारे। मधुकर जंगी य़ेक उबारे॥**

**अर्थ**–युद्ध में मधुकर ने तीन डाकुओं को मार डाला लेकिन अन्त में मधुकर के साथ वाले व्यक्ति हार गए। लड़ने आए डाकुओं ने मधुकर के साथ वाले व्यक्तियों का वध कर दिया। एक डाकू ने मधुकर को (किसी प्रकार से) बचा लिया।

**उन सब सुनी मधुप की बात। सुनत दया उपजी उहिं ग़ात।**

**जंगी और कहैं य़ेह मारैं। कौन काज कौं य़ाहि उबारैं।।**

**अर्थ**–उन सभी व्यक्तियों ने जब मधुकर की व्यथा–कथा सुनी तब उनके मन में दया उत्पन्न हो गई। अन्य डाकू (जंगी) ऐसे भी थे जो यह कह रहे थे कि इस (मधुकर) को मारेंगे। ऐसा क्या प्रयोजन है जिसके लिए हम इसको बचाकर रखें।

**मारे तीन हमारे य़ार। य़ाकौ छांडिहिं कौन बिचार।**

**जंगी कहै मरौ इह साथ। य़ाकौं लाव़न देउ न हाथ।।**

**अर्थ**–वे कह रहे थे कि इसने हमारे तीन साथियों को मारा है अतः इसके प्रति दयापूर्ण विचार हम क्यों करें? जिस डाकू ने मधुकर के प्राणों को बचाया था, वह करने लगा कि मैं इसकी प्राण–रक्षा में, अपने प्राणों की बाजी लगा दूँगा। मैं तुम लोगों को इसका स्पर्श तक नहीं करने दूँगा।

**दोहा–32 :**

**य़ाकौ मारन द्यौं नहीं, गही वोर मुहि आनि।**
**जाकौं लाज न सरन की, तांहि न मानस जांन।।**

**अर्थ**–मधुकर के प्राणों की रक्षा करने वाला वह जंगी व्यक्ति कहने लगा कि, ''मैं इसको मारने नहीं दूँगा। मैंने इसके प्राणों की रक्षा करने के लिए शपथ ग्रहण कर ली है। मैं उस व्यक्ति को यथार्थ में मानव जाति का नहीं मानता हूँ जो एक बार शरण में ले लिए गए प्राणी की रक्षा की लाज स्थिर न रखता हो।

**पव़ंगम छन्द–13 :**

**सरन आपुनी आव़े सु तौ उबारिय़े।**
**दुर्जन डरिकैं बांधि न डारिय़े।**
**जाकौं दीजै बांधिहिं सु व़ोर निबाहिय़े।**
**बूड़त कौ गहि हाथ न छाड़ि बुड़ाइये।।**

**अर्थ**–शरणागत को पूर्ण प्रकार से संरक्षण देना एक श्रेष्ठ मानवीय कर्त्तव्य है। शरणागत को किसी भी लालच या भय के कारण दुर्जन–शक्ति के दुष्प्रभाववश बँधे हुए विवश के रूप में निरीह दशा में नहीं सौंपना चाहिए। शरणागत पूर्ण रूप से शरणदाता के ऊपर विश्वास के कारण, उसके बंधन में होता है; अतः शरणदाता का यह मानवीय कर्त्तव्य (फर्ज) है कि शरणागत की रक्षा का निर्वहन प्राण–पण से पूरा करे। जो डूब रहा है उसका हाथ बचाने के लिए पकड़ लेने के पश्चात् अपना हाथ छुड़ाकर (प्राण बचाकर) पलायन करना–मानवीय अपेक्षाओं के विपरीत कर्म है।

''कर्म, अकर्म और विकर्म क्या है? इसका विवेकपूर्ण निर्धारण करने में बड़े–बड़े बुद्धिमान् असमर्थ हो जाते हैं। जान कवि ने कर्म और अकर्म–दोनों का यहाँ उल्लेख किया है।

**चौपई–20 :**

**जंगी अलि पर बहुत दय़ाये। लै बगदाद मांहिं पुहचाय़े।**
**जिहिं मसीत सोव़त ही प्य़ारी। सूतौ आइ मधुप उहिं बारी।।**

**अर्थ**–जंगी डाकुओं ने मधुकर पर बहुत दया की और उसको भली प्रकार से बगदाद (ईराक) तक पहुँचा दिया। जिस मस्जिद में रात को अन्य भिक्षुओं के बीच में पुरूष भेष में मालती सो रही थी उसी मस्जिद में मधुकर ने भी शरण ली।

**मालति मधुकर जान्यौ नाहीं। ना मालति सुधि अलि मन मांही।**
**संग रहे ऩा भय़ौ मिलाप। औषध पाय़े गई न ताप।।**

**अर्थ**–मालती ने मधुकर को पहचाना ही नहीं और मधुकर भी मालती को पहचान ही नहीं सका। मधुकर और मालती उपर्युक्त मस्जिद में साथ–साथ थे तथापि उनका मिलाप नहीं हुआ। वे दोनों दुःखी ही थे। एक–दूसरे के लिए औषधिवत् औषधि का उपयोग नहीं हो सका। इस कारण से उनका (विरह का) 'ताप' दूर नहीं हो सका।

**निकट रहत पैं दरस न देत। तातें अंग जराव़त हेत।**
**सगरी निस रोव़ति हीं गई। निकटि रहे पैं सांति न भई।।**

**अर्थ**–वे दोनों निकट रहकर भी एक–दूसरे को दिखाई नहीं पड़े थे। अतः वे विरह की पीड़ा से दुःखी शरीर वाले बने रहे। दोनों अपने पृथक्–पृथक् स्थानों पर मस्जिद में रात में अवस्थित रहे। रोते–रोते उन दोनों ने वह रात्रि व्यतीत की। वे समीप थे किन्तु दर्शन–स्पर्श, साक्षात् न होने के कारण मन में शान्ति नहीं पा सके।

पाछिलि राति चली उठि नारी। गई पौरि पाईन उधारी।

पकरि पौरिया लै कैं गय़े। पातसाह जू कैं ढिंगु भये॥

**अर्थ**–रात्रि के (उत्तरकाल) पश्चाद्वर्ती समय में मालती उठकर चल पड़ी लेकिन उसे नगर का द्वार खुला नहीं मिला। बहिर्गमन की चेष्टा देखकर द्वार के प्रहरियों ने मालती को पकड़ लिया तथा उसको लेकर बादशाह के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

पातसाह हारून रसीद। .वोर मालती की बतदीद।

पूछ्यौ को है तू सति भाषि। बात दुरी मन माहि न राषि॥

**अर्थ**–वहाँ बादशाह हारून रशीद बिराज रहे थे। उन्होंने मालती पर दृष्टि डालकर–उसका अवलोकन किया। बादशाह ने मालती से पूछा, ''तू कौन है? सच–सच बता कोई भी बात, मन में छुपा कर मत रख।

सकल भेद मालति तब कह्यौ। सुनि हारूंन अचंभै रह्यौ।

लाग्यौ बहुरि लैन पति यार। छल के वचन करे उच्चार॥

**अर्थ**–मालती ने बादशाह को अपना सम्पूर्ण परिचय प्रकट कर दिया। उसकी समस्त बातों को जानकर बादशाह हारून रशीद को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। बादशाह ने उसे विश्वास में लेने के लिए प्रयत्न किया; ऐसे–ऐसे लालच दिए ताकि वह उसके छलावे में आकर 'मधुकर' को छोड़ दे।

तोहि आपने सुत कौं ब्याहूं। हौं तेरे जिय़ कौं सुष चाहूँ।

मालति अैसै बोली रोइ। मो तें अैसी बात न होइ॥

**अर्थ**–बादशाह ने मालती से कहा, ''मैं तेरे साथ अपने पुत्र का विवाह कर दूँगा और मैं तुझे सुख–चैन दूंगा। बादशाह के कथन को सुनकर मालती रोने लगी और इस प्रकार बोली, ''मुझसे ऐसा बुरा कार्य (सती धर्म के विपरीत) ग्रहण नहीं हो सकेगा।

मधुकर बिनु सब राम दुहाई। हौं जानत हौं मेरे भाई।

बोल्यौ पातिसाहि तब अैसै। हौं करिहौं तुम भाषति अैसै॥

**अर्थ**–मैं राम की शपथ खाकर यह संकल्प सच–सच प्रकट कर रही हूँ कि मधुकर को ही मैं अपना प्रियतम मान चुकी हूँ। हे मेरे भाई ! मैं किसी भी लालच से भौतिक–सुखों की चाह के

वशीभूत होकर प्रियतम को नहीं छोड़ सकती हूँ। तब बादशाह ने इस प्रकार कहा, तुम जिस प्रकार से कह रही हो उसी के अनुसार मैं कार्य पूरे करूँगा।''

**तूं तौ मैं बेटी करि जानी। और बात जिन मन मैं आनी।**
**य़ौ कहि घर मैं दई पठाइ। हितु कीनौ छत्रपति की माइ।।**

**अर्थ**—तुझे मैंने अपने हृदय में बेटी का स्थान दिया है, किसी अन्य प्रकार का विचार मेरे मन में नहीं आ सकता, ऐसा तुम भरोसा रखो।

ऐसा कहकर बादशाह ने मालती को अपने परिवार (घर) में भेज दिया। बादशाह की माता ने मालती को प्यार से रख लिया।

**मधुकर चल्यौ भय़ौ जब भोर। आयौ जबहिं पौर की व़ोर।**
**पकरि पौरिय़ा लै कैं गय़े। पातसाहि ज़ू कौं लै दय़े।।**

**अर्थ**—जब सबेरा हुआ तब मधुकर नगर के द्वार पर पहुँचा और बहिर्गमन की चेष्टा करने लगा। उस समय द्वार पर प्रहरियों ने उसे पकड़ लिया और उसको लेकर बादशाह के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

**पातिसाहि पूछत है बात। कौन आहि तू कित कौं जाति।**
**मधुकर अपनौ सब दुष गायौ। पातसाह मंन सुष उपजाय़ौ।।**

**अर्थ**—बादशाह ने उससे पूछा– ''तूं कौन है और किस स्थान पर जाना चाहता है? मधुकर ने बादशाह को अपने समस्त दुःखों की गाथा सुनाई। तब बादशाह ने उसको सांत्वना प्रदान की जिससे उसके मन में चैन (सुख) उत्पन्न हुआ।

**दोहा–33 :**

**पातसाह जीय़ हौंस ही, इनकौं देउं मिलाइ।**
**आनि दय़े करतार ही, फूल्यौ अंग न माइ।।**

**अर्थ**—बादशाह के मन में इस प्रकार की उत्कट (उत्कृष्ट) अभिलाषा भर गई कि किसी प्रकार की भी सहायता देकर मैं इनको (मधुकर और मालती) मिला दूँ। जगत् की सृष्टि करने वाले ने इन दोनों को मेरे पास लाकर मुझे सौंप दिया है। बादशाह प्रसन्नता से फूला नहीं समा रहा था।

पवंगम छन्द–14 :

वहु मानस ना जामै दया न पाईयै।
मानस सोई जो पर पीर पिराइयै।
वन मैं लगी है आगि सु दौरि बुझाईयै।
मरत होइ बिन मिंत, सु पकरि मिलाईयै।।

अर्थ–जान कवि कहते हैं कि बादशाह में मानवोचित शिष्टता एवं दया थी जिससे वह दूसरों की पीड़ा की अनुभूति संवेदनापूर्वक कर रहा था। हम उसे मनुष्य जाति का नहीं मान सकते जिसके व्यवहार में दया न हो। मनुष्य–जाति में उत्पन्न हुआ कोई व्यक्ति है तो उसे सच्चे अर्थों में पूर्ण व्यक्ति (या मानव) हम तब ही मान सकेंगे जब उसके व्यवहार में दूसरे के दुःख–दर्द के लिए सहानुभूति हो तथा दूसरों के दुःख से वह दुःख का अनुभव करता हो। वन में आग लगी हो तो शीघ्रता से बुझाना हम–सबका कर्त्तव्य होता है। अतः दया के संस्कारों को हम संसार में फैलायेंगे तब आवश्यकता होने पर हम पर भी अन्य जीव दया करेंगे। कोई व्यक्ति यदि अपने मीत के बिना (वियोग में) मर रहा हो तो उसको प्रियतम से मिलाना कर्त्तव्य है।

चौपई–21 :

जान्यौ अैंन उही अलि आहि। जाकी ही मालति कौं चाहि।
लग्यौ लैन तबहिं पति य़ार। देषौ य़ाकौ कैसौ प्य़ार।।

अर्थ–बादशाह ने सही प्रकार से समझा लिया था कि यह वही मधुकर है जिसको प्राप्त करने की चाहत मालती ने अभिव्यक्त की थी। बादशाह ने उस समय उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि ''देखो! इसका प्यार कैसा अद्भुत है।'' बादशाह ने उसे फुसलाने का यत्न भी किया।

पातसाह सरपाव़ पिन्हाय़ौ। लै कै अपनैं निकट बिठायौ।
य़है कह्यौ तुहि तनय़ा दैहौं। तोहि आपुनौ करिकै लैहौं।।

अर्थ–बादशाह ने उसका आदर कर उसे 'सिरोपाव' दिया तथा हाथ पकड़कर अपने पास बैठाकर, ऊँचा स्तर (मनसब) प्रदान किया। उसको पटाने के लिए उसे सुखों के मोह–जाल में बाँधने का भारी यत्न किया। बादशाह ने मधुकर से कहा, ''मैं अपनी पुत्री तुझे दे दूँगा और तुझे अपना सगा सम्बन्धी बना लूँगा।

**दैहौं बहुत बिलाइत तोकौं। यहै बात भाई है मोकौं।**

**मधुकर कह्यौ न अैसैं कहौ। बिरहै दह्यौ कहा तुम दहौ।।**

**अर्थ**–पुनः कहा, '' मेरे मन में यह अभिरूचि उत्पन्न हुई है कि तुमको अन्य प्रदेशों का राजपाट सौंप दूँ।'' मधुकर ने बादशाह से निवेदन किया कि ''आपके द्वारा जो 'प्रस्ताव' दिया गया है, वह मेरे लिए प्रसन्नतादायक नहीं है। कृपया आप मुझसे ऐसे बचन नहीं कहिए। मैं मालती के विरह में पीड़ा सह रहा हूँ अतः आप प्रियतमा के प्रति–विपरीत कार्य को करने के लिए मुझसे कहेंगे तो इसे सुनने मात्र से भी मुझे अपार पीड़ा प्राप्त होगी।

**मि(बि)ना मालती जेती नारि। मेरी माता बहंन बिचार।**

**पातसाह बोल्यौ सुनि भाई। जिंहं काजैं तैं देह जराई।।**

**अर्थ**–मालती एकमात्र मेरी (धर्मपत्नी) प्रियतमा हो सकती है और उसके अतिरिक्त संसार भर की जितनी भी नारियाँ हैं, वे मेरी दृष्टि में मेरी माताएँ और बहिनें हैं। यही मेरे विचार हैं। बादशाह ने कहा, ''हे भाई! मेरी बात को ध्यान से सुनो। जिस प्रियतमा के लिए तुमने वियोग रूपी अग्नि से अपनी देह जलाई है....

**कहा जानिय़ें मरी कि जीव़त। तूं य़ेहूं विष कौ दुष पीवत।**

**सुनि य़हु बात मधुप गिरि गय़ौ। बेसुधि मनहु मिर्तक भय़ौ।।**

**अर्थ**–तुझे क्या पता कि वह इस समय जीवित भी अथवा मर चुकी है? हो सकता है कि वह मर चुकी हो और तूं व्यर्थ में ही वियोग के दुःख से दुःखी हो रहा है। तूं यथार्थतः विष पीने की ओर बढ़ रहा है। बादशाह की निराश कर देने वाली बात को सुनकर मधुकर का धैर्य समाप्त हो गया और वह गिर कर बेसुध हो गया।

**पातसाह लै जल छिरकाय़ौ। तऊ चेत पर नाहिंन आय़ौ।**

**तबहिं होइ स्रव़नंनि कैं पास। मालति मालति कह्यौ प्रकास।।**

**अर्थ**–बादशाह ने मधुकर पर जल छिड़का फिर भी (तऊ) उसे चैतन्य (चेत) प्राप्त नहीं हुआ। तब बादशाह ने उसकी श्रवणेन्द्रिय के समीप पहुँचकर 'मालती–मालती' तीव्र स्वर में कहा।

**भई भाव़ मालति सुनि चेत। बैठौ भय़ौ मालती हेत।**

**पातसाह लै गरैं लगाय़ौ। मधुकर मन बहु भांति मनायौ।।**

**अर्थ**—इस 'शब्द' से पुनः चेतना उत्पन्न हो गई। नाम का भी महात्म्य है और वह मालती से मिलने हेतु उमंग से बैठ गया। बादशाह ने आगे बढ़कर उसे अपने गले से लगा लिया। उसने मधुकर के मन को अनेक प्रकार से सान्त्वना देकर प्रसन्न किया।

**कह्यौ अव़ध तोकौं पुहचाऊं। मालति जिह तिहिं भांति मिलाऊं।**
**भोजन मधुकर आनि षुवायौ। पुनि मद दै कैं बहुत छकाय़ौ।।**

**अर्थ**—बादशाह ने कहा मैं तुझे अयोध्या पहुँचा दूँगा। मालती से तुझे किसी न किसी प्रकार से अवश्य ही मिला दूँगा। उसने मधुकर को भोजन कराया। यथेच्छ मात्रा में मद्य—पान भी उसे कराया जिससे वह नशे में चूर हो गया।

**पातसाह मंदिर मैं आइ। मालति आप ढिंगु लई बुलाइ।**
**तोकौं अव़ध दे उं पहुँचाइ। पैं मधुकर कैसैं कर आइ।।**

**अर्थ**—इसके पश्चात् बादशाह अपने राजभवन में पहुँचा और मालती को अपने समीप बुला लिया। बादशाह ने मालती से कहा, ''मैं तुझे अयोध्या में पहुँचा दूँगा किन्तु मधुकर कैसे मिल सकेगा।?''

**यहै सोच आव़त मन मांहि। व़हु धौं जीव़त आहि कि नांहिं।**
**सुनित बात मालती मुरझाई। परी भौम म्रिगी सी आई।।**

**अर्थ**—मेरे मन में यही विचार उठते हैं कि मधुकर जीवित है अथवा नहीं। बादशाह की इन बातों को सुनकर मालती का धैर्य समाप्त हो गया और वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी तथा उसे मिरगी सी आ गई।

**केतक छिरकी सीतल नीर। रंचक चेत न भइ सरीर।।**

**अर्थ**—बादशाह ने अनेक बार जल छिड़क कर उसके शरीर में चैतन्य को वापिस लाने की चेष्टाएँ कीं किन्तु उसमें तनिक सा भी ''चैतन्य'' नहीं आ सका।

**दोहा—34 :**

**तब मालति कै कांन मैं, लीनौ मधुकर नाव़।**
**तबहिं चेत मालति भई, जिय़रा आयौ ठांव।।**

**अर्थ**—तब बादशाह ने मालती के कान में मधुकर का नाम लेकर 'शब्द' उच्चारित किया। तुरन्त ही मालती को चैतन्य प्राप्त हो गया और हृदय की क्रियाएँ भी सहज रूप से संचालित हो गईं।

**पव़ंगम छन्द–15 :**

**पीति मगन है जाइ परै मुरझाइ कौं।**
**रंचक चेत न रहै जाइ मुरछाइ कैं।**
**कीजै तबहिं सुचेत उपाइ उपाइ कैं।**
**नाव़ मिंत कौ लै मुष स्रवंन लगाइ कैं।।**

**अर्थ**–जो प्रीति में मग्न (आनंदित) हो जाते हैं, वे भला मुरझा कैसे सकते हैं। जब तनिक सा भी चैतन्य अवशिष्ट नहीं रहता है तब प्राणी मूर्च्छित हो जाता है। अतः मूर्च्छाग्रस्त को उपाय करके चैतन्य युक्त करना चाहिए। सच्चे प्रियतम का नाम उस मूर्च्छित के कान में मुख से उच्चारित करना चाहिए। अभीष्ट शब्द–कथन से, बोध रहित को उपायपूर्वक बोधयुक्त किया जा सकता है।

**चौपई–22 :**

**पातसाह अति कीनौं प्यार। भांति भांति कीनी ज्यौं नारि।**
**छलु कर मालती सुरा पिव़ाइ। बेसुधि कीनी बहुत छकाइ।।**

**अर्थ**–बादशाह ने उस पर अनेक प्रकार से प्रेम प्रकाशित किया। उसे भांति–भांति के सुस्वादु भोजन खाने को दिए। उसने किसी प्रकार से (बहाने से) धोखे से मालती को सुरा पिलाई। अत्यधिक सुरा पिलाकर उसे नशे में चूर कर दिया।

**लै मधुकर कैं स्व़ाइ संग। मिले दहूं मीतन के अंग।**
**पैं दहुव़न कौं कछु सुधि नाहि। सूते रहे नींद हीं मांहि।।**

**अर्थ**–इसके अनन्तर मालती को ले जाकर मधुकर के साथ सुला दिया। उस अवस्था में दोनों (प्रेमी और प्रेमिका) के अंग आपस में मिल गए। परन्तु दोनों को नशे की बेहोशी रही अर्थात् वे नींद में ही सोते रहे।

**देषै दुर्‌यौ दुर्‌यौ पतिसाह। कौतिक कौ मन माहिं उमाह।**
**थोरी आइ रही जब रैंन। जागी मालति मूरति मैंन।।**

**अर्थ**–बादशाह छुप–छुपकर देखता रहा। उसके मन में उमंग भरी जिज्ञासा यह जानने की थी कि–इन दोनों का व्यवहार इस स्थिति में किस प्रकार का हो सकता है? जब थोड़ी–थोड़ी रात्रि का समय प्रारंभ हो चुका था उस समय मालती नशे की नींद से कुछ जागृत हुई तब–

**संग सौवतौ मधुकर पाय़ौ। सुपनौं जानि जीव़ भरमायौ।**
**ऐसौ प्रबल भय़ौ तन हेत। कबहूं चेतत कभूं अचेत।।**

**अर्थ**—उसने कामदेव के समान सुन्दर रूप वाले मधुकर को अपने साथ समीप में सोते हुए प्राप्त किया। उस यथार्थ को देखकर भी उसका जी माया से आच्छन्न बोध वाला हो गया। उसे यथार्थ भी स्वप्नवत् मिथ्या और अस्थिर लगा। उसके तन में ''चैतन्य'' इतना सचेत हो गया कि कभी तो वह मधुकर को यथार्थ और कभी अयथार्थ (स्वप्नवत् मिथ्या) समझने लगी।

**वाही मैं मधुकर हूं जाग्यौ। देषि मालती कौं अनुराग्यौ।**
**प्रान वाहि निस प्रबलि जांहिं। प्य़ारी पाई सुपनैं भांहि।।**

**अर्थ**—उसी समय मधुकर भी जाग गया। मालती को देखकर उसे अनुराग उत्पन्न हो गया। वह कहने लगा कि इसी की चाह में इस निशा में इस पर मेरे प्राण कुर्बान हो रहे थे। अब यह प्यारी मैंने स्वप्न में प्राप्त कर ली है।

**आज दई जिन करहु बिहांन। संग रहै ज्यौ पोषंन प्रांन।**
**मालति कह्य प्रगट तुम आय़ो कै सुपनैं ही दरस दिषाय़े।।**

**अर्थ**—हे विधाता! आज की रात समाप्त ही नहीं करना। काश! आज सबेरा उदित न हो, ऐसी कृपा करना। आपकी ऐसी कृपा से यह प्राणों का पोषण करने वाली प्यारी मुझे प्राप्त कर सकेगी। मालती पूछने लगी, ''बताओ क्या वास्तव में तुम यथार्थ में प्रकट होकर वापस आ गए हो अथवा तुम स्वप्न में दर्शन दे रहे हो?

**बोले तब उपज्यौ सुष गात। जान्यौ य़ह प्रगट है बात।**
**गौ लागि कैं रोये दोइ। बहुरि इंसे आनंद मैं होइ।।**

**अर्थ**—जब वे दोनों ही बोले तब उनके शरीर में सुख उत्पन्न हुआ। बोलने से ही विदित हुआ कि यह यथार्थ मिलन प्रकट में उपस्थित हुआ है।

**पातिसाह कौं दई असीस। करता ज्य़ाव़हु को रब रीस।**
**सगरी अपनी बात बषांनी। ज्यों ज्यों उन पर होइ बिहांनी।।**

**अर्थ**—इन दोनों ने मिलन कराने वाले इस बादशाह को यह आशीष दी कि, ''हे परमात्मा! इनको करोड़ों वर्षों का जीवन दो।'' उन दोनों ने अपनी–अपनी सम्पूर्ण कहानी को विस्तार से बताया कि उन्होंने क्या क्या देखा व क्या क्या सहा?

**भोर भय़ौ हित सौं पतिसाहि। इन दहुव़नि कौ कीनौ ब्याह।**
**किरपा बहुत दहुनि सौं कीनी। अमित लच्छिमी इनकौं दीनी।।**

**अर्थ**–प्रातः वेला के आगमन के समय बादशाह ने इन दोनों का विवाह सम्पन्न किया। इन दोनों पर बादशाह ने बहुत कृपा की और इनको अपार धन सम्पदा भेंट की।

**भली भांति सौं मान बढ़ाइ। अव़ध मांहिं दीनें पुंहचाइ।**
**माता के पग पासे जाइ। अति फूली तन मै न समाइ।।**

**अर्थ**–बहुत शिष्ट विधिपूर्वक स्वागत सत्कार करके इनका सम्मान बढ़ाया तथा इन्हें अयोध्या पहुंचा दिया। वहां पहुंचकर इन्होंने माता के चरणों को छुआ। वह इतनी प्रसन्न हुई कि फूले नहीं समा रही थी।

**निस बासुर य़े करहिं कलोल। गहरी पीति भई रंग चोल।**
**जौ लौं जीय़े या जग मांहिं। मधुकर मालति बिछुरे नांहिं।।**

**अर्थ**–मधुकर और मालती रात और दिन प्रीति से (खेल) क्रीड़ा करते थे। इनकी प्रगाढ़ प्रीति में उमंग भरी क्रीड़ाओं से उत्सव की धूम (चमक) व्याप्त हो गई। एतत्पश्चात् मधुकर और मालती इस जगत् में जब तक जीवित रहे, वे कभी भी बिछुड़े ही नहीं।

**दोहा–35 :**

**सोरह सै इक्यानुवौं ही फागन व़दि य़ेक।**
**जांनि कबि कीनी कथा, करि कैं ग्यांन विवेक।।**

**अर्थ**–जान कवि कहते हैं कि यह मधुकर–मालती की कथा विवेकपूर्वक संवत् सोलह सौ इक्यानवै अर्थात् सन् 1634 ई. फागुन बदी (कृष्णा) 1 अमावस तिथि को काव्य में रचकर प्रकाशित की है।

**पुष्पिका :**

**इति मधुकर मालती की कथा संपूरन भई कबि जान की बांधी संवत् १७७८ मिती पोह सुदी ३ अदीतवार।। दस्तषत फतेहचंद।।**
**श्री श्री श्री श्री श्री श्री**

**अर्थ**–इस प्रकार कवि जान के द्वारा काव्य में ग्रयित यह रचना 'मुधकर–मालती' की कथा, संवत् 1778 अर्थात् सन् 1721 ई. में पौष मास शुक्ला–तृतीया दिन–रविवार को (मेरे द्वारा प्रतिलिपि में) संपूर्ण रूप से लिखी गई है। हस्ताक्षर–फतेहचन्द।

**श्री श्री श्री श्री श्री श्री**

कथाकौतूहलीकी चौपई १

परथमनिरंजनकेगुनगाऊं। हौनिरंजनजनपरनपाऊं॥ वा। कौथ
नअनगनअनलेषौंमोसेनिरंजनकहापरेषौंअबिनासीहम
तादयालातलघुदीरघसबकौ प्रतपालाजोवाकौंकबहूनहीताने
ताहकौंअपनौकरिमानै॥ सवईया॥१॥ मोसेअपराधीजगमाहि
तेरचैविरंचछाडिदयेविरददयालपाहिचाहिये॥ सेवककूंसेवा
फलाइहाहूकेचूपदेतवाकूंकहूंजानैनाहियोकहूंजानिये
सुंदरसरूपगुनीकौनकैनमानेमनानिरगुनानिरूपनिरंजनहीकै
मानिये॥ कहैकाबिजांनजेमरियेंजैसारगतिअनरनवनकरता
हीबखानीये॥ दोहा॥ दूसरसुमिरौंनबीकौंबिचितेंदूसरगवंजौं
लौंघटजोरसनमुषवाहीकेगुनगाव॥ काबितछपैअछिरचा
रिबिचारिबिघिरच्योमहंमददुषदरन॥ मैमुहरकहिमिनरू
जागकागराप्रितिहिसोघगाहतैसेजलकानाहसींचियौसोऊ
हीबागमैमेदनीमानिसबेनाबियनकोमुकुटनादपदैदुरवनअ
पराधनामतावौतिहूंबैकनाकाहितुमनहूजगहूसरोकमनाबिन
औरनकोसोरन॥ दोहा॥ अवबावकरहूसरकमरतीसरहैकस
मानाअलीमितदसवनबीचतुरजामकाहिजामाचौपई॥ बा
पाहिलैंकथाकयीकंवलावती॥ पाछैकहीपुरैसरावतीनाबीचु
कुरुबातकनकावतीमअनकिसुनअकौकहूसगावतीअनभै
छंदरेषकैतीनायामैबाहुसमगोपदबीनाकौंकूहलकपजौ
चितजानावौकूहलकौकियेबषंनाजतजरेसोचितलैजोरि
लेहुसंपारिजहतैबोरिदोहकबितामौमनजनकहिजो

कथाकौतूहलीकी चौपई१

प्रथम निरञ्जनके गुनगाऊं। हौं निरञ्जन जन पावन पाऊं।। ३।। कौ
नअन्नगननअन्तलेषैं। मोसे निरञ्जन कहा परेषैं।। अबिनासी है म
हादयाला। लघुदीरघ सबकौ प्रतपाला। जो वाकौं करत्त न नहिताने
ताहुकौ आपनौ करि माने।। सवईया १।। मोसे अपराधी जग माहि
तेरचे बिरंच छाडि दये बिरदयाल पाहि चाहिये।। सेवक कूं सेवा
फल दाइहा हाह केहू पदेत वाकूं कनू जानै नाहि यौ ... जानिये
सुंदर सरूप गुनी कौन कौन माने मन निग्रा निरूप निरञ्जन हीकै
प्रानिये।। कहै कबि ... ज्यौं सार गति ... नर ... करता
हीं बखानीये।। दोहा।। दूसर सुमिरौं नबीकौं बिचितें दू सरगवंडौ
लौं ... रससन सुख वाही के गुन गाव।। कबित छपै।। आछिर चा
रि बिचारि बिचिर च्यौं महि ... मैं सुहर ... सिपि ...
आगकागर ... सीचियौ सोकर
हौ ... मैं मेदनी मानि सबै नबियनकौं ... दै सुरवन अ
पराधनाम ताकौ तिहूं कनाम ... जग ... सरौ ... नाबि नं
औरनको सोरन।। दोहा।। अबबावकरहूं सरकमर तीसर है अस
मानाअलीभिति ... चतुर जगमाहि जामा।। चौपई।। वा
पाहि लैं कथा कही ... पाछैं ... पुरी ... नाभी
हरु बात ... नाम ... कौ ... गाव ... नये
छंददोहकै तीना यामैं ... पव ... वीनाकौ ... हलक पज्यौ
चितजानाकौ कूतहलकौ कियौ वषं ... जतजरै सो चितमैं जोरि
लेहु संभारि आत ... हो ... तानी ... कहिजो